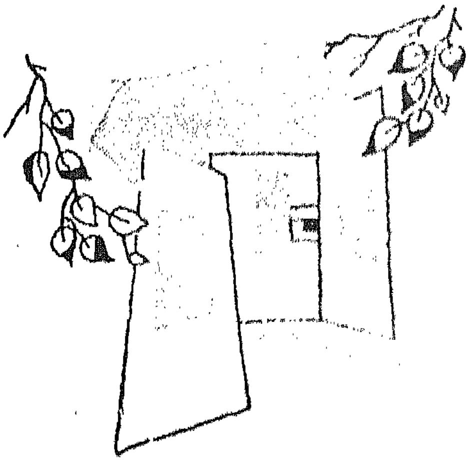


बाहर भीतर

चतुरसेन

पण्ड
, दिल्ली

5004

मूल्य :
प्रथम संस्करण : दि
प्रकाशक : राजपाल एण्ड
मुद्रक : हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस, क्वी

प्रकाशकीय

आचार्य चतुरसेन का कहानी-साहित्य में जो विशिष्ट स्थान है उससे हिन्दी पाठक भलीभांति परिचित हैं। उन्होंने १६०६ से लिखना आरम्भ किया और अन्त तक लिखते रहे। आधी सदी के अपने दीर्घकाल में उन्होंने लगभग चार सौ कहानियां लिखीं, जिनमें अधिकांश अपने कला-वैशिष्टय के लिए विख्यात हो गईं। शैली की दृष्टि से तो आपका नाम हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कहानीकारों में आदर से लिया जाता है।

आचार्य जी की कहानियों के दो-तीन संग्रह बहुत पहले निकले थे, परन्तु उनका कहानी-साहित्य एक जगह संकलित नहीं हो पाया था। यह एक बहुत बड़ा अभाव था, जिसकी पूर्ति के लिए आचार्य जी के ही जीवन-काल में उनके समग्र कहानी-साहित्य को पुस्तक-माला के रूप में प्रकाशित करने की एक रूपरेखा हमने बनाई थी। इतना ही नहीं, कहानियों का संकलन-सम्पादन भी उनकी देख-रेख में शुरू हो गया था और इस माला के लिए उन्होंने स्वयं 'कहानीकार का वक्तव्य' भी लिखा था (जो इस संग्रह के प्रारम्भ में दिया गया है), किन्तु दुर्भाग्यवश इस बीच उनका देहावसान हो गया।

सम्प्रति, हमारे सामने पहली आवश्यकता यह थी कि लेखक का सम्पूर्ण कहानी-साहित्य प्रामाणिक रूप से एक जगह उपलब्ध हो सके, जिससे हिन्दी कथा-साहित्य के पाठक आचार्य जी की कहानी-कला का रसास्वादन और यथेष्ट अध्ययन कर सकें। इसके लिए आचार्य जी के निर्देशों के अनुसार, उनके छोटे भाई श्री चन्द्रसेन ने अथक परिश्रम से इस महान् लेखक की, पत्र-पत्रिकाओं व पाण्डुलिपियों में बिखरी हुई, सामग्री को संकलित तथा सम्पादित किया है, जिसे हम क्रमशः पुस्तक-माला के रूप में प्रकाशित करने जा रहे हैं।

हरेक कहानी के ऊपर संक्षिप्त टिप्पणी दी गई है, आशा है इससे पाठकों को कहानी की पृष्ठिभूमि जानने में सुविधा होगी।

आचार्य जी की कहानियों को साधारणतया निम्न विषयानुसार वर्गीकृत किया जा सकता है—मुगल, बौद्ध, ऐतिहासिक, राजपूती, सामाजिक, समस्या

राजनीतिक, वीरता, भाव, प्रेम, कौतुक और पारिवारिक।

हमारा विश्वास है कि यह पुस्तक-माला हिन्दी-साहित्य के एक अभाव की पूरक होगी एवं विद्वानों, कथा-साहित्य के विद्यार्थियों तथा रस के इच्छुक पाठकों के लिए समान रूप से उपयोगी सिद्ध होगी।

—प्रकाशक

क्रम

कहानीकार का वक्तव्य—

अपनी कहानियों के सम्बन्ध में

मेरी कहानियों की हिन्दी-साहित्य में बहुत कम चर्चा हुई है। शूरवीर समालोचकों ने एक प्रकार से मेरा बायकाट-सा ही कर रखा है। लुत्फ यह है कि ये समालोचक न तो कहानियां पढ़ते हैं, न पढ़ना जानते हैं। इधर-उधर दूसरे आलोचकों की नकल अपने श्री-मुख से भी कर देते हैं। मैं एक ढीठ लेखक हूं और इन समालोचकों की योग्यता से खूब वाकिफ हूं। अतः मैं इनकी ओर आंख उठाकर देखता तक नहीं। न इनकी राय की कानी कौड़ी के बराबर मैं परवाह करता हूं। कहानियां मैं अपने पाठकों के लिए लिखता हूं। और मेरे पाठक मेरी कहानियों से बहुत खुश हैं, यह मुझे पता लगता रहता है। बहुत दिन हुए एक समालोचक-पुङ्गव ने मेरी किसी कहानी को चोरी का माल शिनाख्त किया था, और मुझपर यह मुकद्दमा खड़ा किया था कि मूल कहानी का अंग-भंग करके मैंने उसे कुत्सित कर दिया है। यों तो मैं आक्षेपों का उत्तर देने का आदी नहीं हूं, पर उस बार मौज में आकर मैंने इन आक्षेपक महोदय का आरोप बिना सबूत के ही स्वीकार कर लिया था, और स्वेच्छा से मृत्यु-दण्ड की मांग की थी। परन्तु मेरी एक शर्त थी कि कहानी के अंग-भंग करने के अपराध में सजाए मौत को मैं तभी स्वीकार करूंगा जबकि सुयोग्य समालोचक मेरी विधवा लेखनी का पाणि-ग्रहण कर उसका सौभाग्य सलामत रखें। अफसोस है, फिर वे मैदान में आए ही नहीं, और मैं अभी तक कागजों की बर्बादी करने के लिए जिन्दा हूं।

सन् १९१७ की बात होगी। उन दिनों मैं बम्बई में प्रैक्टिस करता था। तभी

मैंने अपनी कहानी 'दुखवा मैं कासे कहूं' लिखकर दुलारेलाल भार्गव को लखनऊ भेजी, जो आगे चलकर बहुत प्रसिद्ध हुई। 'सुधा' उन्होंने तब निकाली ही थी। एक दिन मुझे उनका पोस्टकार्ड मिला। लिखा था, 'आपको यदि नागवार न गुज़रे तो हम कहानी का पारिश्रमिक आपको देना चाहते हैं।' पाठक मेरी खुशी का अनुमान न लगा सकेंगे। यह एक ऐसी आमदनी का सीग़ा खुल रहा था जिसकी मैंने कल्पना भी नहीं की थी। अब तक तो मैं इसीमें खुश था कि मेरी रचनाएं छप रही हैं। तब मैं 'प्रताप', कानपुर में ही लेख भेजता था, पर उसने कभी एक धेला भी पारिश्रमिक नहीं दिया था। अतः कार्ड का मैंने तुरन्त उत्तर दिया कि 'पुरस्कार यदि मुझे काट न खाए तो मुझे किसी हालत में उसका भेजा जाना नागवार न गुज़रेगा।' कुछ दिन बाद ही पांच रुपये का मनीआर्डर मिला। उस दिन मैंने सपत्नीक जशन मनाया और कई दिन उन पांच रुपयों का हम लोगों को नशा रहा। उसके बाद श्री सहगल ने पहले दो रुपये, फिर चार रुपये, पृष्ठ का निर्ख मुकर्रिर कर दिया। और मेरी कहानियां मेरी एक आंशिक आमदनी का जरिया बन गईं। मैंने भी अब कहानी ही लिखने की ओर ध्यान दिया।

सन् १९०६ और ७ के बीच जब मैंने लेखनी को छुआ, तो वह काल आज के काल से सर्वथा भिन्न था। देश नींद से जागकर चौकन्ना हो रहा था। बंग-भंग पर बंगाली तरुणों ने पहली हुंकार भरी थी—और पंजाब-केसरी लाला लाजपतराय और सरदार अजीतसिंह को मांडले में देश-निकाला दे दिया गया था। मुझे याद है, लाला जी के देश-निकाले पर मेरी पहली कविता बम्बई के श्री वेंकटेश्वर समाचार में छपी थी। उन दिनों मैं पांचवीं या छठी कक्षा में पढ़ता था। बंगवासी और भारतमित्र में बंग-विप्लव की कथा मैं तब बड़े चाव से पढ़ता था। बहुधा मैं उन विषयों पर कविता लिखता रहता था। इन्हीं दिनों मेरे हाथ मेवाड़ के इतिहास की एक पोथी आ लगी थी। उसका तो मैं नित्य पाठ करता था। इससे मेवाड़ की वीरगाथा की छाप मेरे हृदय में घर कर बैठी। और मैं वीररस की कविता कर-कर के मित्रों को भेजने लगा। पिताजी आर्यसमाजी और समाज सुधारक थे। उनके काम करने के ढंग बड़े ओजस्वी और प्रभावशाली होते थे। उनका मेरे मन पर जो प्रभाव पड़ा उससे मैंने कुरीतियों के विरुद्ध कलम उठाई। मेरा ख्याल है, सबसे पहले मैंने 'हिन्दुओं की छाती पर जहरीली छुरी' नाम की एक छोटी-सी पुस्तिका लिखी, जिसमें विधवाओं की हिमायत थी, पीछे यह पुस्तिका चालीस-

पचास हज़ार की संख्या में छपी। बहुत सुधारकों ने उसे छापकर मुफ्त बांटा। इससे मेरा उत्साह बढ़ा और मैंने पहिली कहानी 'सच्चा गहना' लिखी। जो प्रयाग की गृहलक्ष्मी में छपी। इसके बाद सामाजिक कुरीतियों पर मैं बराबर लिखता रहा। कविता मेरी छूट गई और गद्य मेरा सतेज हो गया। राजपूत-जीवन से मैं अधिक प्रभावित रहा, इससे मैं जब-तब राजपूत-जीवन और कुरीति-निवारणमूलक छोटे-छोटे गद्यकाव्य और कहानियां लिखने लगा। सन् १२ के बाद 'प्रताप', कानपुर; 'कर्मवीर', खंडवा; 'प्रभा', कानपुर; 'शारदा', नागपुर; 'सुधा', 'माधुरी', लखनऊ में तथा इलाहाबाद के 'चांद' में तेज़ी से लिखना शुरू किया। और अब अपनी रचनाओं को इन पत्रों में छपी देखने को मैं बेचैन रहने लगा। 'प्रताप' खास तौर पर मेरे वीररस भरे गद्यकाव्यों को छापता था। 'चांद' कुरीति-निवारणमूलक कहानियां और लेख छापना पसन्द करता था। इस समय तक मुझे न तो अपनी रचनाओं का कुछ साहित्यिक मूल्य ही ज्ञात था, न मैं कला के सम्बन्ध में कुछ समझता था। लिखने की परिपाटी भी मेरी आप ही विकसित होती जा रही थी। यह तो मुझे बहुत बाद में पता चला कि उस काल की लिखी गई कुछ चीजें साहित्यिक दृष्टि से काफी वजनी मानी गईं।

मैं नहीं जानता कि दूसरे लोग कहानियां लिखने की प्रेरणा कहां से पाते थे, परन्तु मैं तो कहानी की टोह में आसपास चारों ओर जासूसी नजर से देखने लगा। बहुधा मित्रों और परिचितों के चरित्रों पर ध्यान करता। प्लाटों की टोह में चौपाटी के चक्कर लगाता, परन्तु यह बात मेरे ध्यान में भी न आई कि मुझे अन्य लेखकों की कहानियां पढ़कर कुछ प्रेरणा लेनी चाहिए। जब-तब कोई कहानी मिली तो पढ़ ज़रूर लेता था। पर उसपर मैंने ध्यान कभी नहीं दिया। मेरी आसक्ति इतिहास की ओर जरूर थी। मैं बचपन ही से प्राचीन गौरवमय चरित्रों को चाव से पढ़ता रहा हूं। अतः मैं तुरन्त ही राजपूत-चरित्र पर कलम चलाने लगा और गम्भीर होने पर बौद्ध युग तक जा पहुंचा।

राजपूत-चरित्र पर मेरी कहानियों में मेरा तरुण रक्त है। पहिले जब मैं अपने को जन्मतः क्षत्रिय समझता था, तब ऐसा प्रतीत होता था जैसे मैं अपनी ही गुण-गरिमा गा रहा हूं। वास्तव में राजपूत-जीवन पर जो मेरा मन केन्द्रित हुआ, वह केवल इसलिए नहीं कि राजपूत पीड़ित और व्यथित थे, अपितु मेरा मन राजपूत-जीवन के प्रति कुछ ममता से भर गया था। ऐसा कुछ लगता था कि

जैसे ये हमारी पूर्वजों की गाथाएं हैं। इसीसे राजपूत-जीवन पर मेरी कलम काफी तीखी चली।

जीवन एक ज्योति है, उसमें ऊष्मा कम है और प्रकाश अधिक। जहां प्रकाश कम और ऊष्मा अधिक है, वह ज्योति नहीं ज्वाला है जो जीवन को भस्म कर देती है। वीरत्व उस ज्योति की लौ है। जीवन का सच्चा सुख वीरत्व में है। वीरत्व में अमरता ओतप्रोत है। नश्वरता देह में है। देहाभिमान ही आत्मा को नश्वर बनाता है। देहाभिमान ही भौतिक है, क्षणभंगुर है। जो कोई देहाभिमान को त्याग देता है वही अमर होता है। देहाभिमान को त्यागने के अनेक रूप हैं। परन्तु क्षत्रियगण जो युद्धक्षेत्र में देह-त्याग करते हैं, वह सबसे महान् है। त्याग श्रेष्ठ है, पर सर्वश्रेष्ठ त्याग शरीर का त्याग है, जिसे राजधर्म में युक्त क्षत्रियगण नित्य करते हैं। शरीर का त्याग बिना देहाभिमान को त्याग किए नहीं होता। शरीर-त्याग से ऊंचा त्याग बहुत दुर्लभ है। उसका रूप है—शरीर के भीतर आत्मा को बद्ध रहने पर भी आत्मा शुद्ध-बुद्ध-मुक्तस्वरूप हो जाए। ऐसा बहुत कम होता है और जहां होता है, वह पुरुष विदेह या जीवन्मुक्त हो जाता है।

परन्तु वीरत्व की रूपरेखा भिन्न-भिन्न हैं। युद्धक्षेत्र में शस्त्र लेकर शत्रु को मारते हुए मरना निकृष्ट कोटि का वीरत्व है। ऊंची कोटि की वीरता और ओज तो वह है कि शत्रु को क्षमा करते हुए पापों की शान्ति और धैर्य से आहुति देना। धैर्य और उदात्त रीति से सहिष्णुतापूर्वक प्राण-त्याग ही सर्वाधिक शौर्य और वीरता समझा जाएगा। राजपूतों का जीवन पृथ्वी के सब योद्धाओं से अद्भुत रहा है। उनके ओज और तेजपूर्ण जीवन में राजपूत स्त्रियों का जितना सहयोग रहा है, उतना कदाचित् ही पृथ्वी की किसी जाति की स्त्रियों का रहा हो। स्त्रियों के ये असाधारण साहसिक कार्य केवल उनके आत्मसम्मान की भावना के आधार पर होते थे। कर्तव्य, स्थैर्य, आत्मगौरव और अप्रतिम ओज ही उनका मार्ग रहा। राजपूत मृत्यु के व्यवसायी जीवित नर-नाहर थे। उन्होंने अमर जीवन के सिद्धान्तों को समझ लिया था, वे मृत्यु से कभी नहीं डरे, वृद्ध होने पर कभी पुराने नहीं हुए। क्रोध और हास्य के वे अधिष्ठाता थे। दैन्य और रुदन उनके पास न था।

'जैसलमेर की राजकुमारी', 'कुम्भा की तलवार', 'हठी हम्मीर', 'सिंहगढ़-विजय' ऐसी ही कहानियां हैं। 'राजपूत बच्चे', 'स्त्रियों का ओज', और 'मरी खाल की हाय', में जो छोटे-बड़े स्केच राजपूती जीवन के इतने सजीव बन गए— वह केवल

अन्तर्वेग के ही कारण। इनमें मैंने परिश्रम कुछ ऐसा नहीं किया।

मुगल-चरित्र पर मेरी कलम अपने आप ही रपट पड़ी। राजपूतों का वर्णन करते-करते मैं उधर झांकने लगा था। वास्तव में यह एक प्रतिक्रिया ही कहना चाहिए। परन्तु मेरा उद्देश्य इसी समय प्रचार-भावना से हट गया। मानव-मन के अन्तर्द्वन्द्व के रेखाचित्रों पर मेरा ध्यान गया। यही कारण मेरे साहित्यिक जीवन में आने का हुआ। सन् १९१७ में मैंने अपनी प्रसिद्ध मुगलकालीन कहानी 'दुखवा मैं कासो कहूं' लिखी। इसके बाद 'दे खुदा की राह पर', 'सोया हुआ शहर', 'लालारुख', 'नवाब कुदसिया बेगम', 'बावर्चिन' आदि कहानियां जो मैंने लिखीं, उनमें मैंने शुद्ध सात्विक भावदर्शन और चरित्र-चित्रण के साथ मानव-मन के अन्तर्द्वन्द्व का प्रदर्शन किया। मुस्लिम संस्कृति के प्रति क्षोभ का कुछ भी अंश उसमें न रहा।

इस समय तक भी मेरे रक्त में आर्यसमाजी प्रचारवाद था, इसलिए सामाजिक प्रश्नों पर जहां व्यंग्य दरकार होता, मैं कहानी लिख डालता। मेरी कहानी के पीछे कला न होती। रूढ़िवाद के विपरीत क्रोध और बेहद असन्तोष होता। इससे मेरी कलम आप ही आग उगलने लगी। उसके लिए मुझे जरा भी प्रयास नहीं करना पड़ा और लोगों ने मुझे अनायास ही 'लौह लेखनी का धनी' की उपाधि दे डाली। याद आता है, इस नाम से सबसे प्रथम मुझे श्री सहगल ने पुकारा। उन दिनों राजपूती ओज पर छोटे-छोटे गद्यकाव्य मैं 'प्रताप' में लिखता था। पता नहीं—कहां से वे हीरे, मोती, जवाहर पाताल फोड़कर निकल आते थे। उनमें ऐसी ज्वाला और तड़प होती थी कि उधर मेरी कलम का प्रवाह चलता रहता था, इधर आंखों में सावन-भादों की झड़ी लगी रहती थी। यह गन्दी जनानी आदत अभी तक मुझमें है। इसलिए तभी से मेरी यह आदत पड़ गई है कि मैं कहानियां किसीके सामने दिन में नहीं लिखता। या तो बन्द कमरे में लिखता हूं या रात को दो बजे; जब मेरी दुर्दशा का अकेला मैं ही दर्शक होता हूं।

इतिहास में अभिरुचि मेरी प्रथम ही से थी। अब ज्यों-ज्यों मेरा अध्ययन गम्भीर होता गया—मैं भारत की प्राचीन संस्कृति का पुजारी होता गया। इसी समय बौद्ध ग्रन्थों में मुझे अम्बपाली की एक छोटी-सी चर्चा मिली। जब बुद्ध उसकी बाड़ी में ठहरे थे। और मैंने बौद्ध जीवन पर पहिली कहानी 'अम्बपाली' लिखी। जो 'चांद' में शायद सन् १९२४-२५ में छपी। इसके बाद अम्बपाली पर

हिन्दी में कई कहानियां लिखी गईं। और उपन्यास भी एक-दो लिखे गए। अम्बपाली हिन्दी साहित्य की एक चर्चा का विषय बन गई। फिर वह काल भी आया जब मैंने अम्बपाली के चरित्र को लेकर 'वैशाली की नगरवधू' लिखी। यह मेरे हाथों साहित्य का शृंगार था, जैसा मैं कर सकता था, जैसा सजा सकता था, वैसा मैंने वैशाली की नगरवधू के रूप में साहित्य-शृंगार किया।

नगरवधू को जब मैंने समाप्त किया, तभी मैं समझ गया था कि साहित्यकार का काम इतिहास की विवेचना करना नहीं है। साहित्य का सत्य जीवन के सत्य से पृथक् है। इतिहास जीवन का सत्य है। इसलिए साहित्य के सत्य में और इतिहास के सत्य में तादात्म्य नहीं हो सकता। इतिहास का सत्य चिर सत्य है। इसका अभिप्राय है कि अमुक काल में ऐसा हुआ, परन्तु साहित्य का सत्य स्थिर सत्य है। उसका अभिप्राय यह है कि अमुक काल में ऐसा होता था। इसीपर से मैंने नौ निर्दिष्ट रसों के बाद एक अनिर्दिष्ट रस 'इतिहास रस' की स्थापना की। इसका अभिप्राय यह है कि साहित्यकार इतिहास के तथ्यों को यथावत् वर्णन करने के लिए बाधित नहीं है। वह अपनी कल्पना और भावनाओं का पूरा विकास कर सकता है। बिना इसके साहित्य का सत्य स्थिर नहीं रह सकता। नगरवधू में मैंने काफी कल्पना की उड़ानें भरी हैं। कहना चाहिए, उसमें इतिहास का केवल रस ही रस है, स्वाद ही स्वाद है, शेष तो सब कुछ कल्पना है, भावना है, शृंगार है, और जीवन की विविध व्यापक व्यंजनाएं हैं, धारणाएं हैं। 'सोमनाथ' में आकर और भी यह भाव व्यक्त हो उठा है। ग़जनी के महमूद ने सोमनाथ पर अभियान किया था। उपन्यास में यह तथ्य तथा कुछ नाम ही ऐतिहासिक हैं, शेष सब कुछ कल्पना है। परन्तु उस कल्पना का आधार मनोरंजन नहीं है; जीवन की गम्भीर व्याख्याएं हैं। शोभना, फतहमुहम्मद, दामो महता, महमूद और अन्य पात्र गहन मानवीय तत्त्वों की अभिव्यक्ति करते हैं। उनमें त्याग है, तप है, शौर्य है, राजनीति, धर्मनीति और कूटनीति के भारी-भारी यन्त्र हैं। जातियों के उत्थान-पतन, विनाश और विलय के रेखाचित्र हैं। मैंने चेष्टा की है कि पाठकों के मन पर इन चरित्रों की गहरी छाप पड़े और पाठक तनिक भी कलुष मन में यहां से न लेने पाएं।

मेरे मन में क्रोध बहुत है, तीव्रता भी कम नहीं। कलुष का भी अन्त नहीं। परन्तु साहित्य-सृजन में तो मैं केवल दो ही वस्तुएं काम में लेता हूं—धैर्य और न्याय। किसी भी दशा में मैं इनसे इधर-उधर नहीं होता। अपनी सम्पूर्ण चेतना

से मैं शक्ति भर सावधान रहकर ही कलम चलाता हूं।

अब यद्यपि मैंने अपनी शैली बदल दी है और लिखने से प्रथम में अध्ययन करने लगा हूं; तब लिखने से प्रथम में अध्ययन बन्द कर देता था। मुझे भय रहता था कि कहीं दूसरों की भावना मेरी लेखनी में न आ जाए। मेरी इस आदत के कारण ही कहानी लिखना मेरे लिए दुरूह हो उठा। क्योंकि अपने मस्तिष्क की कहानी लिखने के लिए चरित्र, जीवन, स्वभाव, मानसिक घात-प्रतिघात के कोमल दांव-पेच और भाव-विभावों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करना पड़ता था। मुझे स्वीकार करना चाहिए कि मेरे वैद्यक पेशे ने भी मुझे इस काम में बहुत मदद की। इस पेशे के कारण सर्वसाधारण के गोपनीय और रहस्यपूर्ण चरित्र तो मेरे सामने आते ही थे, राजा-महाराजाओं और करोड़पति सेठों के घरों के बड़े-बड़े छिद्र भी मुझे मालूम होने लगे। बम्बई जैसी महानगरी। वहां मैं रहता था श्रीमन्तों के शीर्ष-स्थल पर। मकान का किराया ही पौने चार सौ रुपया मासिक देता था। यह आज की बात नहीं; चालीस वर्ष पुरानी बात है। सौ नित नये शिगूफे मेरे सामने खुलते थे। एक तरुणी रानी साहेबा ने तो मुझे अपनी कोठी पर बुलाकर कमरे में बन्द कर दिया और कहा, 'छुट्टी तब मिलेगी, जब मेरी सौत को अन्धी या पागल कर दोगे।'

एक श्रीमन्त करोड़पति ने पचीस हज़ार की गड्डी मेरी आंखों के सामने रख दी थी—इसलिए कि मैं उनकी सौतेली मां को विष दे दूं, जिसकी चिकित्सा बड़े ही यत्न से उन्होंने मेरे सुपुर्द की थी। एक छत्रपति राजा ने तो अपनी पत्नी और पुत्र को ही साफ कराना चाहा था, जिससे वे अपनी उपपत्नी के पुत्र को वैध उत्तराधिकारी बना सकें। एक राजा साहब ने अपने छोटे पुत्र को, जो दूसरी रियासत पर गोद गया था, उस रियासत का झटपट स्वामी बनाने के लिए—गोद लेने वाले रुग्ण राजा और उसकी पत्नी को ही साफ कराना चाहा था और इन कामों के लिए कितनी भारी-भारी रकमें पेश की गई थीं; आप इसकी कल्पना भी नहीं कर सकते।

उस वक्त बुद्धि ने साथ नहीं दिया, नहीं तो आज के दिन न देखने पड़ते—जब लेखों के पारिश्रमिक की प्रतीक्षा करनी पड़ती है। लाखों की सम्पत्ति हो चुकी होती। परन्तु मुझे तो ऐसा कोई शिगूफा मिलते ही रुपया झांसने की नहीं, उसपर एक कहानी लिख मारने की तलाबेली उठ खड़ी होती थी। यह कहना

व्यर्थ है कि ऐसी भण्डाफोड़ करने वाली कई कहानियां लिखने के कारण मेरे अनेक श्रीमन्त ग्राहकों ने नाराज़ होकर मुझे अपने यहां बुलाना ही बन्द कर दिया। पाठक यदि ऐसी दो-चार कहानियों का मजा लूटना चाहते हैं तो मेरी 'ठकुराइन', 'अकस्मात्', 'कन्यादान', 'मुहब्बत', 'जैन्टिलमैन' आदि कहानियां पढ़ देखें। सबसे अधिक कहानियां मैंने 'चांद' में लिखीं। फिर भी उनकी संख्या बीस-पचीस से अधिक नहीं होगी।

इन कहानियों में मैंने बहुत परिश्रम किया। मैं नहीं जानता कि चोटी के लेखकों की क्या शैली है, परन्तु अपनी एक कमज़ोरी तो मैं कहूंगा ही कि अपनी कहानी के साथ मैं बहुत काल तक रहता हूं। मैं उसमें डूबता हूं। उसे घिल-मुल कर डालता हूं। फिर उसे रस्सी की भांति उमेठ डालता हूं। इसके बाद उसे रुई की तरह धुनता हूं। कहानी के साथ ही अपने हृदय और मस्तिष्क की भी मैं यही गत बना डालता हूं। फिर कहानी और मैं एक हो जाते हैं। तब मैं उनके साथ रोता, हंसता, गाता और नाचता हूं। कहानी के पात्रों को जब इच्छा होती है, मुझसे सलाह लेते हैं और कहीं मेरी गाड़ी अटकती है, तो मैं उनकी सलाह लेता हूं।

इस प्रकार मेरी कहानी तैयार होती है और मैं उसके नीचे दस्तखत करके सम्पादक के पास भेज देता हूं। प्रायः पत्रकार आंधी की भांति तकाजा करते रहते हैं; खास करके जो मजदूरी नकद देते हैं या पेशगी भेजते हैं, परन्तु इनके तकाजों का मेरे अन्धेर दरबार में कोई मूल्य नहीं। कभी-कभी मुझे एक कहानी लिखने में एक-एक वर्ष लग जाता है। 'चांद' में प्रकाशित 'जीवनमृत' कहानी एक वर्ष में पूर्ण हुई थी। उसी पत्र में प्रकाशित 'पतिता' ने आठ महीने लिए थे, 'अम्बपाली' ने छः मास खर्च कराए थे। और 'उपगुप्त' तथा 'प्रबुद्ध' ने आठ-नौ मास लिए थे। 'तन्मय' मेरी चार-पांच पृष्ठों की छोटी-सी कहानी है। वह सात-आठ बार लिखी गई और चार मास में पूर्ण हुई। 'माधुरी' की 'जीजा जी' दो मास में खत्म हुई थीं। 'द्वितीया' ने पांच मास, और 'नवाब ननकू' ने ढाई मास लिए थे।

तब क्या इतना समय खोने का कारण आलस्य है? मेरे अतिघनिष्ठ मित्र तक यही विश्वास करते हैं, पर मैं कहानी के अतिरिक्त अन्य सब विषयों पर, जिनमें मेरी गति है, अपने नित्य के सब काम करते हुए, फुलिसकेप के पचास पृष्ठ दैनिक लिख सकता हूं और प्रायः लिखता ही हूं।

यद्यपि अपनी कहानियों के साथ चिरकाल तक रहना मैंने अपना दोष माना

है, परन्तु जब मैं इस सुख का, जिसका अनुभव अपनी कहानी के पात्रों के साथ रहते करता हूं तथा जो भावी प्लाट के सम्बन्ध में उनसे सलाह-मशवरा करने, उनके साथ रोने और हंसने में आनन्द आता है वह वर्णनातीत है।

कभी-कभी अत्यन्त साधारण-सी बात पर उत्कृष्ट कहानी तैयार हो जाती है। 'नवाब ननकू' मेरी उत्कृष्ट कहानी है, परन्तु उसकी मूल छाया मुझे एक मोटर ड्राइवर से मिली जब उसका-मेरा कुछ घण्टों का सहवास हुआ था। 'तिकड़म', 'ठाकुर साहब की घड़ी', 'प्राइवेट सेक्रेटरी' और 'मरम्मत', 'अकस्मात्' एक जरा-सा सूत्र मिलते ही एक ही सिटिंग में लिखी गई हैं। एक-दो कहानियां कुछ स्त्रियों को देखकर ही एकाएक प्रेरणा पाकर लिखी गई हैं। 'पानवाली' और 'दे खुदा की राह पर' ऐसी ही कहानियां हैं।

कुछ कहानियों के साथ मेरे अपने जीवन की मार्मिक पीड़ाओं का भी समावेश है, पर ऐसी कहानियां कम हैं।

इधर मैंने कुछ नये ढंग की कहानियां लिखने की चेष्टा की हैं। इन कहानियों में न कथा है न घटनाएं हैं। न आदि है, न अन्त। न संयोग है, न वियोग, न चरित्र-चित्रण। केवल भावना का अन्तर्वेग है। 'दूध की धार', 'धरती और आसमान', 'नहीं', 'युगलांगुलीय' ऐसी ही कहानियां हैं। इन कहानियों में सोद्देश्य भावना की सर्वथा समाप्ति हो जाती है और कलापक्ष ही निखर जाता है। परन्तु चाहे मेरी कथा में कोई उद्देश्य हो या केवल कला का ही विकास हो, उनमें जीवन की व्याख्या अवश्य रहती है। मेरी यह निश्चित धारणा है कि जीवन की व्याख्या का नाम ही साहित्य है। साहित्य को जीवन के इतिवृत्त से बचाकर उसकी व्याख्या में ही केन्द्रीभूत करने से साहित्य का, सच्ची कला का रूप निखरता है।

आरम्भ में मैंने समालोचकों की शूरवीरता और बहुज्ञता का संकेत किया है। ये समालोचकगण अधिकांश में साहित्यिक नहीं, अध्यापक हैं। इनमें से बहुतों की साहित्य-सामर्थ्य प्रायः नगण्य है। परन्तु विद्यार्थियों को पढ़ाते-पढ़ाते वे समालोचना करने का दुस्साहस कर बैठते हैं। वे नहीं जानते कि लेखक किस मनोभाव में मग्न होकर जीवन के रेखाचित्रों को उभारता है। उनकी समालोचना की टेकनिक एक प्रकार से निर्जीव यान्त्रिक-सी होती है। इनमें बहुत-से तो ऐसे हैं जिनका साहित्य में भी बड़ा नाम है, पर जिस विषय की वे समालोचना करते हैं, उस विषय पर उनका अध्ययन नगण्य ही है। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी और

अध्यापक गुलाबराय जैसे पुराने प्रकाण्ड अध्यापकों तक को समालोचना-क्षेत्र में में दयनीय समझता हूं। तब नये आलोचकों की बात तो मैं क्या कहूं। डा० हजारी-प्रसाद द्विवेदी का 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' पढ़कर मैंने उन्हें लिखा था, 'या तो आप 'बाणभट्ट की आत्मकथा' के लेखक हैं या इस 'हिन्दी साहित्य के इतिहास' के। ये दोनों रचनाएं एक ही पुरुष की नहीं हो सकतीं।' 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में जितनी विलक्षण साहित्य-गरिमा है, उनका 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' उतना ही बोगस है।

यहां दो बातों की ओर मैं पाठकों का ध्यान और आकर्षित करूंगा। एक तो यह कि समालोचकगण नये साहित्य को न पढ़ते हैं, न उसकी खोज-जांच की तकलीफ उठाते हैं। खास कर अध्यापकवर्ग में यह आलस्यभाव अधिक रूढ़िबद्ध है। अपने परिश्रम से बचने के लिए वे पुरानी लकीर ही पीटते रहते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि वे नई पीढ़ी को साहित्य के आधुनिकतम विकास से वंचित रख रहे हैं, तथा साहित्य और साहित्यकार के वास्तविक स्वरूप से पृथक् एक कृत्रिम और मनमाना अप्रामाणिक स्वरूप उनके सम्मुख रख रहे हैं। मैं तो इसे अक्षम्य अपराध समझता हूं। उदाहरणस्वरूप मैं अपनी ही कहानी की चर्चा करूंगा। 'दुखवा मैं कासो कहूं' कहानी मैंने सन् १७ के लगभग लिखी थी जिसे आज तैंतालीस वर्ष बीतते हैं। परन्तु मेरी सर्वश्रेष्ठ कहानी कहकर आज भी वही कहानी कालेजों के पाठ्य कहानी-संग्रहों में ली जाती रही है। आज के तरुण इसे मेरी प्रातिनिधिक सर्वश्रेष्ठ कहानी समझकर पढ़ते हैं। इनके पिताओं ने भी पढ़ी थी और शायद इनकी सन्तति भी पढ़ेगी। तब क्या मैं चालीस साल, अब तक घास छीलता रहा? आज मेरी कहानियों की संख्या साढ़े चार सौ से ऊपर पहुंच चुकी है। अब जो कोई मेरी इस कहानी को, जो उस समय मैंने लिखी थी, जब हकीकत में मेरे साहित्य का बाल काल था, मेरी सर्वश्रेष्ठ प्रतिनिधि कहानी कहता है, वह निश्चय ही मूढ़ पुरुष है। कहानियों के चुनाव में चयनकर्ताओं और आलोचकों का अज्ञान तो खैर है ही, इससे भी खराब बात गुटबन्दी है। गुटबन्दी की प्रचारात्मक प्रवृत्ति ने हमारे साहित्य के भावी विकास को बहुत अंधेरे में डाल दिया है। आवश्यकता इस बात की है कि एक निष्पक्ष विद्वन्मण्डल हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ कुछ कहानियों का चुनाव करे और वे ही व्याख्या सहित नये पाठकों और विद्यार्थियों को पढ़ाई जाएं, तथा पाठकों के समक्ष उन्हें सही रूप में उपस्थित

किया जाए।

जैसा कि मैं कह चुका हूं, मैं अपना कथा-साहित्य अपने पाठकों के लिए लिखता हूं। उन्हें पेशेवर समालोचक से अधिक विज्ञ और सहृदय समझता हूं। मेरा कथा-साहित्य युग के साथ अपने उद्देश्यों की दिशाएं बदलता चला जा रहा है। उसका सबसे बड़ा उद्देश्य आधुनिकता का प्रतिनिधित्व करना रहा है।

मुझे प्रसन्नता है कि अब तक बिखरी हुई मेरी कहानियों की पहिली किश्त हिन्दी के प्रतिनिधि प्रकाशक सर्वश्री राजपाल एण्ड सन्ज़ आपके सम्मुख उपस्थित कर रहे हैं, जिसमें कुछ चुनी हुई कहानियां हैं। साथ ही आपके सम्मुख अगली किश्तें भी आएंगी। मैं चाहता हूं कि विज्ञ पाठकों की दृष्टि में कभी कोई त्रुटि नज़र पड़े तो अवश्य सूचित करें जिससे दूसरे संस्करण में वह सुधारी जा सके।

ज्ञानधाम-प्रतिष्ठान
२६ जनवरी, १९५९

—चतुरसेन

लालारुख

इस कहानी में एक कोमल भावुक प्रेम का मोहक रेखा-चित्र है। मुगल-कालीन ऐश्वर्य की एक सजीव झांकी भी इस कहानी में दिखाई देती है। कथोपकथन की समर्थ पद्धति और भाषा की ललक इस कहानी में देखे ही बनती है। कहानी पढ़ने के समय पाठकों को एक ऐसे भाव-समुद्र में तुरन्त डूब जाना पड़ता है जो अतिशय सुखद है। प्यार की एक उदग्र मूर्ति इस कहानी में लालारुख के रूप में व्यक्त हुई है।

उस दिन दिल्ली के बाजार में बड़ी धूम थी। चारों तरफ चहल-पहल ही नजर आती थी। घर-घर में जलसे हो रहे थे, और जशन मनाया जा रहा था, बाज़ार सजाए गए थे। खासकर चांदनी चौक की सजावट आंखों में चकाचौंध उत्पन्न करती थी। असल बात यह थी कि बादशाह आलमगीर की दुलारी छोटी शाहज़ादी लालारुख का ब्याह बुखारे के शाहज़ादे से होना तय पा गया था। इसके साथ ही यह बात भी तमाम दरबारियों और बुखारा के एलचियों से सलाह-मशविरा करके तय पा गई थी, खास तौर से बुखारा के शाहज़ादे ने इस बात पर पूरा जोर दिया था कि उसे कश्मीर के दौलतखाने में शाहज़ादी का इस्तकबाल करने की इजाज़त दी जाए, और बादशाह ने इस बात को मंजूर कर लिया था। उस दिन लालारुख की सवारी दिल्ली के बाज़ारों में होकर कश्मीर जा रही थी, और दिल्ली शहर की यह सब तैयारियां इसी सिलसिले में थीं। जिन सड़कों से सवारी जाने वाली थी, उनपर गुलाब और केवड़े के अर्क का छिड़काव किया गया था। दूकानों की सब कतारें फूलों से सजाई गई थीं। जगह-जगह पर मौलसरी और बेले के गजरों से बन्दनवार बनाए गए थे। बजाज़ों ने कमख्वाब और ज़रबफ्त के थानों को लटकाकर खूबसूरत दरवाज़े तैयार किए थे, जौहरी और सुनारों ने सोने-चांदी के ज़ेवरों और जवाहरात के कीमती जिंसों से अपनी दूकान के बाहरी हिस्से को सजाया था। इन्तिज़ाम के दारोगा और बरकंदाज़ लाल-लाल वरदियां पहने

और ज़री की पगड़ियां डाटे घोड़ों पर और पैदल इन्तिज़ाम के लिए दौड़-धूप कर रहे थे। छज्जों और छतों पर लालारुख की सवारी देखने के लिए ठठ की ठठ औरतें आ जुटी थीं। परदानशीन बड़े घर की औरतें चिलमनों की आड़ में खड़ी होकर लालारुख की सवारी देखने का इन्तिज़ार कर रही थीं। नजूमियों और ज्योतिषियों से लालारुख की विदाई का मुहूरत दिखा लिया गया था। ठीक मुहूरत पर लालारुख की सवारी लालकिले से रवाना हुई। सबसे आगे शाही सवारों का एक दस्ता हाथ में नंगी तलवारें लिए चल रहा था। उसके बाद ज़र्क बर्क पोशाक पहने हाथ में बड़े-बड़े भाले लिए, बरकंदाजों का एक झुंड था। इसके बाद तातारी बांदियां तीर-कमान कसे और नंगी तलवार हाथ में लिए, जड़ाऊ कमरपेटी में खंजर खोंसे, तीखी निगाहों से चारों तरफ देखती हुई आगे बढ़ रही थीं। इसके बाद झूमते हुए शाही हाथी थे, जिनपर ज़रदोज़ी की सुनहरी झूलें पड़ी हुई थीं, और जिनकी सोने की अम्बारियां सुनहरी धूप में चमचमा रही थीं। इनमें महीन रेशमी जाली के पर्दे पड़े हुए थे, जिनमें शाहज़ादी लालारुख की सहेलियां, उस्तानियां, मुगलानियां और रिश्ते की दूसरी शाही औरतें थीं। इनके पीछे नकीबों की एक फौज थी, जो चिल्ला-चिल्लाकर हुज़ूर शाहज़ादी की सवारी की आमद लोगों पर ज़ाहिर कर रही थी। इसके बाद खास बांदियों और महरियों के पैदल झुरमुट में कीमती, जड़ाऊ सुखपाल में शाहज़ादी लालारुख बैठी थी। एक विश्वासपात्री बांदी पीछे खड़ी शाहज़ादी पर धीरे-धीरे पंखा झल रही थी। सुखपाल पर गुलाबी रंग के निहायत खूबसूरत, मकड़ी के जाले की तरह महीन पर्दे पड़े हुए थे। इनके पीछे घोड़े पर सवार एक सरदार खोजा फिदाहुसेन था, और उसके पीछे मुगल सरदारों का एक मज़बूत दस्ता। इसके बाद रसद, डेरे, तम्बू और बल्लियों से लदे हुए बहुत-से ऊंट, खच्चर, हाथी तथा बेलदार मजदूर चल रहे थे।

लालारुख का सौन्दर्य अप्रतिम था, और उसके कोमल तथा भावुक ख्यालातों की ख्याति देश-देशान्तरों तक फैल गई थी। देश-देशान्तरों के शाहज़ादे उसे एक बार देखने को तरसते थे। उसका रंग मोतियों के समान था। उसकी आभा और शरीर की कोमलता केले के नये पत्ते के समान थी। उसके दांत हीरे के-से, और आंखें कच्चे दूध के समान उज्ज्वल और निर्दोष थीं। उसका भोलापन और सुकुमारता अप्रतिम थी, और निर्मम आलमगीर, जो प्रेम की कोमलता से दूर रहा,

इस अपनी नन्ही और भोली बेटी को सचमुच प्यार करता था। उसने अपने हाथों से सहारा देकर उसे सुखपाल में सवार कराया, और आंखों में आंसू भरकर विदा कराया।

सवारी जब दिल्ली की सीमा पार करके लहलहाते खेतों, जंगलों और पहाड़ियों पर पहुंची तो लालारुख ने अपने नाजुक हाथों से पर्दा हटाकर एक नज़र दूर तक फैली हुई हरियाली पर डाली, और जो कुछ भी उसने देखा उससे बहुत खुश हुई। आज तक उसे जंगल की हरियाली देखने का मौका नहीं मिला था। शाही महल के झरोखों से भी वह झांक न पाती थी। शाही महल की तड़क-भड़क और बनावट से वह ऊब गई थी, इसलिए जंगल का दृश्य देखकर उसके मन में आनन्द होना स्वाभाविक था। नये-नये दृश्य उसकी आंखों के आगे आते-जाते थे। रंग-बिरंगे फूलों से लदे हुए वृक्ष और लताएं, स्वच्छन्दता से चौकड़ी भरते हुए हिरनों के झुंड, चहचहाते हुए भांति-भांति के पक्षी उसके मन में कौतूहल पैदा कर रहे थे। वह उत्फुल्ल नेत्रों से प्रकृति की शोभा निहारती हुई और भांति-भांति के विचारों तथा शंकाओं से उद्विग्न-सी आगे बढ़ रही थी। हर दस कोस पर पड़ाव पड़ता था।

एक दिन जब सुदूर पश्चिम और उत्तर के आकाश की क्षितिज-रेखा में हिमालय की धवल चोटियां प्रातःकाल की सुनहरी धूप-किरणों से चमककर, देखनेवालों के नेत्रों में चमत्कार पैदा कर रही थीं, और शीतल-मन्द-सुगंध वासन्ती वायु गुदगुदाकर मन को प्रफुल्ल कर रही थी, लालारुख अपने खेमे में, रेशम के कोमल गद्दे और तकियों में अलसाई-सी पड़ी हुई, अपने यौवन से बिल्कुल बेखबर होकर अपनी सहचरियों से सुरम्य कश्मीर की सुषमा का बखान सुन रही थी। महलसरा के खोजा दारोगा ने सामने आकर कोर्निश की, और अर्ज़ की कि कश्मीर से बुखारे के नामवर शाहज़ादे ने हुजूर शाहज़ादी की खिदमत में एक नामी गवैये को भेजा है, और वह ड्योढ़ियों पर हाज़िर होकर कदमबोसी की इजाजत से सरफराज़ होना चाहता है।

लालारुख का चेहरा शर्म से लाल हो गया। उसने कनखियों से अपनी एक सखी की ओर देखा, और फिर मुस्कराकर वीणा के झंकृत स्वर में कहा—क्या वह सिर्फ गवैया है ?

'नहीं हुजूर, वह एक नामी शायर भी है, और उसकी कविता की भी वैसी ही धूम है, जैसी उसके गाने की।'

'क्या वह बुखारे का बाशिंदा है?'

'नहीं हुज़ूर, वह कश्मीर का रहने वाला है। वह एक कमसिन खूबसूरत और निहायत बाअदब नौजवान है।'

शाहज़ादी ने एक बार दारोगा की तरफ देखा, और पूछा—क्या कह सकते हो कि शाहज़ादे के साथ उसके किस प्रकार के ताल्लुकात हैं?

'जी हां, तहकीकात से मालूम हुआ कि हज़रत शाहज़ादे के साथ इस नौजवान के बिल्कुल दोस्ताना ताल्लुकात हैं।'

'क्या शाहज़ादे ने कुछ ताकीद भी लिख भेजी है?'

'जी हां हुज़ूर, उन्होंने लिखा है कि मैं अपने जिगरी दोस्त इब्राहीम को शाहज़ादी का इस्तकबाल करने और उन्हें गाने तथा कविता से खुश करने को भेजता हूं। शाहज़ादी को उनसे पर्दा करने की ज़रूरत नहीं।'

शाहज़ादी नीची नज़र करके मुस्कराई, और धीमे स्वर से कहा—बहुत खूब, शाहज़ादे के दोस्त का हर तरह आराम से रहने का इन्तिज़ाम कर दो। इतना कहकर वह जल्दी से ख्वाबगाह में चली गई, और ख्वाजा सरा कौर्निश करके बाहर आया।

कहीं बदली छा रही थी। कश्मीर की घाटियों में लालारुख की छावनी पड़ी थी। चारों तरफ सुहावने दृश्य थे। दूर पर्वत-श्रेणियां शोभा बखेर रही थीं। चांदनी छिटकी थी, और वह बदली में छन-छनकर धरती पर बिखर रही थी। लालारुख ने सुना कोई वीणा के मधुर झंकार के साथ वीणा-विनिंदत स्वर में मस्ताना गीत गा रहा है। उस प्रशान्त रात्रि में उस सुमधुर गायन और उसके प्रेमभावनापूर्ण शब्दों से लालारुख प्रभावित हो गई। उसने प्रधान दासी को बुलाकर कहा—कौन गा रहा है?

'वही कश्मीरी कवि है।'

'बड़ा प्यारा गीत है?'

'और वह गायक उससे भी ज़्यादा प्यारा है।'

'क्या वह बहुत खूबसूरत है?'

'मगर हुज़ूर के तलुओं योग्य भी नहीं।'

लालारुख मुस्कराई। उसने कहा—किसीको भेजकर उसे कहला दो, ज़रा नज़दीक आकर गाए।

बांदी 'जो हुक्म' कहकर चली गई। और कुछ क्षण बाद ही मूर्तिमती कविता और संगीत की मधुर धार उस भावुक शाहज़ादी के मानस-सरोवर में हिलोरें लेने लगी।

वह सोचने लगी, जिसका कण्ठ-स्वर इतना सुन्दर है, और जिसका भाव इतना मधुर है, वह कितना सुन्दर होगा! शाहज़ादी की इच्छा उसे एक बार आंख भर-कर देख लेने की हुई। शाहज़ादे ने कहला भेजा था कि उससे पर्दा न किया जाए। परन्तु शाहज़ादी इतनी हिम्मत न कर सकी। उसने प्रधान दासी के द्वारा कवि से कहला भेजा कि वह नित्य इसी भांति शाहज़ादी के लिए गाया करे तो शाहज़ादी उसका एहसान मानेगी। उस दिन से दिनभर शाहज़ादी उस अमूर्त संगीत के रूप की कल्पना विविध भांति करने लगी, और जब वह स्वर्ण क्षण आता तो उस स्वर-सुधा में मस्त हो जाती।

कश्मीर धीरे-धीरे निकट आ रहा था। शाहज़ादे से मिलने का दिन निकट आ रहा था। तमाम कश्मीर में शाहज़ादी के स्वागत की बड़ी तैयारियां हो रही हैं, इसकी खबर रोज़ शाहज़ादी को लग रही थी, पर शाहज़ादी का दिल धड़क रहा था। क्या सचमुच यह अमूर्त संगीत एक दिन विलीन हो जाएगा? धीरे-धीरे शाहज़ादी के मन में साक्षात् करने की इच्छा बलवती होने लगी।

शालामार की सुन्दर और स्वर्गीय छटा अवलोकन करती हुई लालारुख अन-मनी-सी बैठी थी। अब वह उस अमूर्त के दर्शन से नेत्रों को धन्य करना चाहती थी। उसने उस स्निग्ध चांदनी के एकान्त में उस कवि को बुला भेजा था। हाथ में वीणा लिए जब उसने घुटने टेककर शाहज़ादी को अभिवादन किया, तब क्षण भर के लिए शाहज़ादी स्तम्भित रह गई। उसके होंठ कांप कर रह गए, बोल न सकी। कवि ने कहा—हुज़ूर शाहज़ादी ने गुलाम को रूबरू होने का हुक्म देकर उसे निहाल कर दिया।

'मैं, मैं तुम्हे बिना देखे न रह सकी।'

'शाहज़ादी का क्या हुक्म है?'

'एक बार इस चांदनी में मेरे सामने बैठकर वही प्यारा संगीत सुना दो।'

'जो हुक्म।'

कवि की उंगलियों ने तारों में कम्पन उत्पन्न किया, साथ ही कण्ठ का मधु प्रवाहित हुआ। शाहज़ादी उसमें खो गई। गाना खत्म कर कवि ने साहस करके

मुग्धा राजकुमारी का कोमल कर अपने होंठों से लगा लिया। शाहज़ादी चीख उठी। उसने अपना हाथ खींच लिया, पर दूसरे ही क्षण उसने कहा—ओह इब्राहीम, मैं तुम्हारे बिना नहीं जी सकती। और वह मूर्च्छित होकर कवि पर झुक गई।

शालामार बाग में शाहज़ादी ने कुछ दिन मुकाम करने की इच्छा प्रकट की। कश्मीर से शाहज़ादे के तकाज़े आ रहे थे कि जल्द सवारी आए, पर शाहज़ादी शाहज़ादे के पास जाते घबराती थी। वह अपना हृदय कवि को दे चुकी थी। वैसी ही चांदनी थी, संगमरमर की एक पटिया पर दोनों प्रेमी बैठे थे। फूलों का ढेर और शीराजी सामने रखी थी। शाहज़ादी ने कहा—प्यारे इब्राहीम, इस कदर मुतफिक्र क्यों हो ?

'शाहज़ादी, हम जो कुछ कर रहे हैं उसका अंजाम क्या होगा ? शाहज़ादा जब भेद जान लेंगे तो हमारी जान की खैर नहीं। मुझे अपनी ज़रा परवा नहीं, पर आपको उस प्रलय में मैं न देख सकूंगा।'

'ओह इब्राहीम, शाहज़ादे बहुत उदार हैं, वे समझते होंगे मुहब्बत में किसी का ज़ोर-ज़ुल्म नहीं चलता। वे हमें माफ कर देंगे।'

'नहीं शाहज़ादी, वे तुम्हें अपनी जान से ज्यादा चाहते हैं, माफ न करेंगे।'

'तो इब्राहीम, मैं खुशी से तुम्हारे साथ मरूंगी। क्या तुम मौत से डरते हो ?'

'नहीं दिलरुबा, और खासकर इस प्यारी मौत से।'

'तो फिर यह राज़ क्यों पोशीदा रखा जाए ? शाहज़ादे को लिख दिया जाए।'

'ये तमाम ठाट-बाट हवा हो जाएंगे।'

'उसकी परवा नहीं, तुम मेरे सामने बैठकर इसी तरह गाया करना, मैं तुम्हारे लिए रोटियां पकाया करूंगी।'

'प्यारी शाहज़ादी। बेहतर हो, इस गुलाम को भूल जाओ।'

'ऐसा न कहो, यह कलमा सुनने से दिल धड़क उठता है।'

'तो फिर तुम्हारा क्या हुक्म है ?'

'शाहज़ादे को मैं सब हकीकत लिख भेजूंगी।'

'तुम क्यों, यह काम मैं करूंगा, फिर नतीजा चाहे जो भी हो।'

इब्राहीम के गिरफ्तार होने की खबर आग की तरह शाहज़ादी के लश्कर में

फैल गई। शाहज़ादी ने सुना तो पागल हो गई। खाना-पीना छोड़ दिया। सवारी तेज़ी के साथ आगे बढ़ने लगी। ज्यों-ज्यों कश्मीर नज़दीक आता था, सजावट और स्वागत की धूमधाम बढ़ती जाती थी। परन्तु शाहज़ादी बदहवास थी। शहर में उसका बड़ी धूमधाम से स्वागत हुआ। और जब महल के फाटक में उसकी सवारी घुसी तो उसपर हीरे-मोती बखेरे गए। शाहज़ादी ने पक्का इरादा कर लिया था कि ज्यों ही वह शाहज़ादे के सामने पहुंचेगी, उसके कदमों पर गिरकर इब्राहीम की जान बख्शी की भीख मांगेगी।

शाहज़ादा जड़ाऊ तख्त पर बैठा शाहज़ादी के स्वागत करने की प्रतीक्षा कर रहा था। उसके बगल में एक दूसरा जड़ाऊ तख्त शाहज़ादी के लिए पड़ा था। शाहज़ादी ने ज्यों ही हवादान से पैर निकाला, शाहज़ादा उसे देखकर अवाक् रह गया। बिखरे बाल, मलिन वेश, सूखा और पीला चेहरा और सूजी हुई आंखें। शाहज़ादी ने आंख उठाकर शाहज़ादे को नहीं देखा। वह आगे बढ़कर तख्त के नीचे ज़मीन पर लोट गई। उसने शाहज़ादे के पैर पकड़कर कहा—क्षमा, क्षमा, ओ उदार शाहज़ादे क्षमा।

शाहज़ादे ने कहा—उठो शाहज़ादी, तुम्हारे लिए सब कुछ किया जा सकता है, यह तुम्हारा तख्त है, इसपर बैठो। शाहज़ादी ने डरते-डरते आंखें उठाकर शाहज़ादे की ओर देखा। 'या खुदा' इतना ही उसके मुंह से निकला, और वह शाहज़ादे की गोद में बेहोश होकर लुढ़क गई।

'हां तो तुम इब्राहीम की जां बख्शी चाहती हो प्यारी।'

'हां प्यारे, तुम इब्राहीम को जानते हो?'

'कुछ-कुछ।'

दोनों ठहाका मारकर हंस पड़े। लालारुख ने शाहज़ादे की गोद में मुंह छिपा लिया।

बावर्चिन

इस कहानी में अन्तिम मुगल सम्राट् बहादुरशाह के पतनकाल का और मुगल बेगमों के आंसुओं का, जो कभी केवल हीरे-मोती, इत्र और ऐश्वर्य ही को जानती थीं, ऐसा सचोट रेखा-चित्र है जो हृदय में घाव कर जाता है। साम्राज्यों के पतन में विश्वासघातियों का सदा हाथ रहा है। इसमें भी एक ऐसे ही विश्वासघाती का संकेत किया गया है जिसके बड़े-बड़े वर्णन मुगलतख्त के पतनकाल में इतिहास में पाए गए हैं।

सन् १८४५ की २८वीं मई के तीसरे पहर एक पालकी चांदनी चौक में होकर लालकिले की ओर जा रही थी। पालकी बहुमूल्य कमख्वाब और जरी के पर्दों से ढंकी हुई थी। आठ कहार उसे कंधों पर उठाए थे और सोलह तातारी बांदियां नंगी तलवार लिए उसके गिर्द चल रही थीं। उनके पीछे चालीस सवारों का एक दस्ता था, जिसका अफसर एक कुम्मेत अरबी घोड़े पर चढ़ा हुआ था। उसकी जरबफ्त की बहुमूल्य पोशाक पर कमर में नाजुक तलवार लटक रही थी, जिसकी मूठ पर गंगाजमुनी काम हो रहा था। उसकी काली घनी दाढ़ी के बीच, अंगारे की तरह दहकते चेहरे में मशाल की तरह जलती हुई आंखें चमक रही थीं, जिन्हें वह चारों तरफ घुमाता हुआ, अकड़कर, किन्तु खूब सावधानी से पालकी के पीछे-पीछे जा रहा था।

भयानक गर्मी से दिल्ली तप रही थी। तब चांदनी चौक की सड़कें आज की जैसी तारकोल बिछी हुई आईने की तरह चमचमाती न थीं, न मोटरों की घोंघों-पोंपों और सर्राटेबन्द दौड़ थी। चांदनी चौक की सड़कों पर काफी गर्द-गुब्बार रहता था। हाथी, घोड़े, पालकी और नागौरी बैलों की जोड़ी से ठुमकती हुई बहलियां एक अजब बांकी अदा से उछला करती थीं।

अब जिस स्थान पर घण्टाघर है, वहां तब एक बड़ा-सा हौज था, जो चांदनी

चौक की नहर से मिल गया था, और जहां कम्पनी बाग और कमेटी की लाल संगीन इमारत खड़ी है, वहां एक बड़ी भारी किन्तु खस्ताहाल सराय थी, जिसकी बुर्जियां टूट गई थीं और जहां अनगिनत खच्चर, टट्टू, बैलगाड़ियां, घोड़े और परदेसी बेतरतीबी से पेड़ों के नीचे या बेमरम्मत कोठरियों में भरे हुए थे।

जिस समय पालकी वहां से गुज़र रही थी, उस समय हौज पर खासा धोबीघाट लगा हुआ था। कोई नहा रहा था, कोई साबुन से कपड़े धो रहा था। सराय के टूटे किन्तु संगीन फाटक पर देशी-विदेशी आदमियों का जमघट लगा था।

पालकी अवश्य ही कहीं दूर से आ रही थी। कहार लोग पसीने से लथपथ हो रहे थे। उनका दम फूल रहा था और वे लड़खड़ा रहे थे। पीछे से अफसर तेज़ चलने की ताकीद कर रहा था, मगर ऐसा मालूम होता था कि अब और तेज़ चलना असम्भव है।

कहारों में एक बूढ़ा कहार था। उसका हाल बहुत ही बुरा हो रहा था। कुछ कदम और चलकर वह ठोकर खाकर गिर पड़ा, पालकी रुक गई।

तातारी बांदियां झिझककर खड़ी हो गईं। अफसर ने घोड़ा बढ़ाया। बूढ़ा अभी संभला न था। एक चाबुक सपाक से उसकी गर्दन और कनपटी की चमड़ी उधेड़ गया। साथ ही बिजली की कड़क की तरह उसके कान में शब्द पड़े—उठ, उठ, ओ दोजख के कुत्ते! देर हो रही है।

कहार ने उठने की चेष्टा की, पर उठ न सका। वह गिर गया। गिरते ही दस-बीस, पच्चीस-पचास चाबुक तड़ातड़ पड़े, खून का फव्वारा छूटा और कहार का जीवन-प्रदीप बुझ गया!!

लाश को पैर की ठोकर से ढकेलकर अफसर ने खूनी आंख भीड़ पर दौड़ाई। एक गठीला गौरवर्ण युवक मैले और फटे वस्त्र पहने भीड़ में सबसे आगे खड़ा था। मुश्किल से रेखें भीगी होंगी। अफसर ने डपटकर उसे पालकी उठाने का हुक्म दिया। युवक आगे बढ़ा। दूसरे ही क्षण सपाक से एक चाबुक उसकी पीठ पर पड़ा और साथ ही ये शब्द—साला, जल्दी!

युवक ने क्रुद्ध स्वर में कहा—जनाब! हुक्म बजा लाता हूं, मगर ज़बान संभाल…

दस-बीस चाबुक खाकर युवक वहीं तड़पकर गिर गया। उसकी नाक और मुंह से खून का फव्वारा बह चला। अफसर ने और एक आदमी को कन्धा लगाने

का हुक्म दिया। क्षण भर में पालकी फिर अपनी राह लगी।

चिराग़ जल चुके थे। दीवाने खास में हज़ारा फानूस की तमाम काफूरी मोम-बत्तियां जल रही थीं। जमुना की लहरों से धुलकर पूर्वी हवा झरोखों से छन-छनकर आ रही थी। खास-खास दरबारी बादशाह सलामत के तशरीफ लाने की इन्तज़ारी में अदब से खड़े थे। सामने एक चौकी पर वही युवक लहू-लुहान पड़ा था। अन्तःपुर के झरोखों से परिचारिकाओं के कण्ठ-स्वर ने कहा—होशियार, अदब कायदा निगहदार! यह शब्द-स्वर चोबदारों ने दोहराया—होशियार, अदब कायदा निगहदार! उमराव-मण्डल और मन्त्रि-मण्डल ज़मीन तक सिर झुकाकर खड़ा हो गया। सम्पूर्ण दरबार में निस्तब्धता छा गई। धीरे-धीरे वृद्ध सम्राट् बहादुरशाह दो सुन्दरियों के कन्धों का सहारा लिए भीतरी ड्योढ़ी से निकलकर सिंहासन पर आ बैठे। चार बांदियां मोरछल लेकर बगल में खड़ी हुईं। चोबदार ने पुकारा—जल्ले इलाही बरामद कर्द मुजरा अदब से!

यह सुनते ही एक उमराव सहमा हुआ अपने स्थान से आगे बढ़ा और सम्राट् के सामने जाकर उसने तीन बार झुककर सलाम किया। चोबदार ने उसके रुतबे और शान के अनुसार कुछ शब्द कहकर सम्राट् का ध्यान उधर आकर्षित किया। इसी प्रकार सभी सरदारों ने प्रणाम किया।

इसके बाद बादशाह ने वज़ीर को संकेत किया। वज़ीर ने जवान से कहा—जवान! तुम्हारे हालात बादशाह सलामत अगर्चे सुन चुके हैं, मगर तुम्हारी खास ज़बान से सुनना चाहते हैं। तमाम हालात मुफस्सिल में बयान करो।

युवक ने ज़मीन में लोट-लोटकर सब मामला बयान किया। बादशाह ने फरमाया—सब हरूफ-बहरूफ सही है। कहां है वह ज़ालिम ज़मीर?

ज़मीर तख्त के सामने आकर घुटनों के बल गिर गया।

बादशाह ने फर्माया—ज़मीर! तुझे कुछ कहना है?

'खुदावन्द! रहम! रहम!'

बादशाह ने हुक्म दिया—इस ज़ालिम को सीधा खड़ा करो। मगर ठहरो, मैं इसपर भी रहम किया चाहता हूं। इसे नौकरी से बरखास्त किया जाता है और इसका दर्जा इस नौजवान को अता किया जाता है। इसकी तमाम जायदाद ज़ब्त की जाती है और वह उस कहार के घर वालों को बख्श दी जाती है।

हुक्म देकर बादशाह उठे। तुरन्त चार बांदियों ने सहारा दिया। दरबारी लोग ज़मीन तक झुक गए।

बादशाह ने युवक के निकट आकर कहा—आराम होने तक शाही महलों में रहने की तुम्हें इजाज़त बख्शी जाती है और शाही हकीम तुम्हारे मालजे को मुकर्रर किए जाते हैं।

युवक ने बादशाह की कदमबोसी की और पल्ला चूमा। बादशाह धीरे-धीरे अन्त:पुर में प्रवेश कर गए।

अन्त:पुर के उन झरोखों के भीतर, जहां किसी भी मर्द की परछाईं पहुंचनी सम्भव न थी, एक बहुमूल्य मखमली गद्दे पर वह घायल युवक पड़ा अपने प्रारब्ध-विकास की बात सोच रहा था। एक ही दु:खदायी घटना ने, जिसे शायद ही कोई निमन्त्रित करे, उसके भाग्य का पांसा पलट दिया था। वह सोच रहा था, क्या सचमुच मेरे ये फटे चिथड़े, वह टूटा छप्पर का घर, वह माता का चक्की पीसना, सभी बदल जाएगा। वह जागते ही जागते स्वप्न देखने लगा—एक धवल अट्टालिका, दास-दासी, घोड़े-हाथी, सेना और न जाने क्या ?

सभी विचारधाराओं के ऊपर उसे एक नवीन विचारधारा मूर्च्छित कर रही थी—वह कौन है ? वही क्या इस सब भाग्य-परिवर्तन की कुंजी नहीं ? पालकी के उस दुर्भेद्य पर्दे के भीतर······! वह सोच में मूर्च्छित हो गया।

हठात् उसकी विचारधारा को धक्का देते हुए कक्ष का पर्दा हटाकर दो दासियों के साथ एक खोजे ने प्रवेश किया। दासियों के हाथ में भोजन की सामग्री थी। स्वप्न-सुख की तरह कहीं वह राजभोग लुप्त न हो जाए, घायल युवक इस भय से लपककर उठा।

खोजे ने कहा—खाना खा लो, और खुदा का शुक्र करो। हुज़ूर शाहज़ादी तुमपर बहुत खुश हैं और वे जल्द तुम्हें देखने को तशरीफ लाने वाली हैं।

चन्द्रमा की स्निग्ध ज्योत्स्ना की तरह शाहज़ादी ने कक्ष में प्रवेश किया। दो अल्पवयस्का दासियां परछाईं की तरह उनके पीछे थीं। शुभ्र, महीन रेशमी परिधान पर ज़रदोज़ी और सलमे का बारीक काम निहायत फसाहत से हो रहा था। वह अस्फुटित कुन्दकली के समान, कोमलता और माधुर्य की मूर्तिमती रेखा

के समान समस्त भारत के सम्राट् की पौत्री शाहज़ादी गुलबानू थी

केवल क्षण भर ही वह युवक उस अतिदुर्लभ मुख की ओर देखने का साहस कर सका। उसने उठने की चेष्टा की परन्तु मानो उसके शरीर का सत निकल गया था। वह गिर पड़ा, गिरे ही गिरे उसने ज़रा बढ़कर अपना मस्तक शाहज़ादी के कदमों पर रख दिया। शाहज़ादी के जूतों में लगे हीरे युवक के मस्तक पर मुकुट की तरह दिप उठे।

शाहज़ादी ने मानो फूल बखेर दिए। उसने कहा—कल के हादिसे का मुझे बहुत रंज है, पर मैं समझती हूं, अब तुम बहुत अच्छे हो। मैंने पालकी से तमाम माजरा देखा था, मगर कर क्या सकती थी? दादाजान से आते ही शिकायत कर दी थी।

युवक ने ज़रा ऊंचा उठकर शाहज़ादी का आंचल आंखों से लगाया और बार-बार ज़मीन चूमकर कहा—हुज़ूर खुदाबन्द शाहज़ादी, कल अगर हुज़ूर की पालकी की खाक न नसीब होती तो आज यह दिन कहां? जहांपनाह ने इस नाचीज़ गुलाम को निहाल कर दिया। ताबेदार ताउम्र इन कदमों का नमक-हलाल रहेगा।

शाहज़ादी कुछ न कहकर धीरे-धीरे चली गई, परन्तु उसके सांस की सुगन्ध वहां भर गई थी, और उसीके प्रभाव से युवक के घाव भर गए थे। वह उस स्थान को, जहां शाहज़ादी के कमल-पद छू गए थे, अपनी छाती से लगाकर बदहवास पड़ा रहा। उस मूर्ति को चाहे क्षण भर ही वह देख सका था, पर वह उसके रोम-रोम में रम गई थी। पर दुनिया के पर्दे में कौन-सा ऐसा कोई मर्द बच्चा था जो फिर उसे एक बार देख लेने का हौसला भी कर सकता?

१२ साल बीत गए। सन् ५७ की २४वीं मई थी। गदर की आग धू-धू करके जल रही थी। चिनगारियां आसमान को छू चुकी थीं। निकल्सन ने दिल्ली पर घेरा डाल रखा था। भाग्य की रेखा के बल पर बूढ़े और लाचार बादशाह बहादुरशाह ने बागियों का साथ दिया था। क्षण-क्षण में बागी हार रहे थे। अंग्रेज़ी तोपें कश्मीरी दरवाज़े पर गरज रही थीं। लाहौरी दरवाज़ा सर हो चुका था। फतहपुरी मस्जिद के सामने अंग्रेज़ी घुड़सवार और बागियों की लाल होली खेली जा रही थी। लाशों के ढेर में से अधमरे सिपाही चिल्ला रहे थे। अंग्रेज बराबर

बढ़ते और जो मिलता उसे संगीनों से छेदते चले आ रहे थे। कर्नल वाट्सन के हाथ में कमान थी। इनके साथ थे एक सम्भ्रान्त मुसलमान अमीर जनाब इलाही-बख्श। वे एक अरबी नफीस घोड़े पर पान चबाते, इतराते बढ़ रहे थे, लोग देख-देखकर भयभीत होकर घरों में छिप रहे थे।

यह इलाहीबख्श वही घायल युवक थे, जो अपनी जवांमर्दी और चतुराई से दस वर्ष में बादशाह के अमीर और नगर के प्रतिष्ठित तथा प्रभावशाली व्यक्ति बन गए थे। अंग्रेज़ों ने दमदार मुगलों को जहां तोपों और संगीनों की नोक से वश में किया था, वहां कुछ नमकहराम, संगदिल लोगों को अपनी भेद-नीति और सोने के टुकड़ों से वश में कर लिया था। इलाहीबख्श भी उनमें से एक थे। दस वर्ष पहले शाहज़ादी के कदमों पर गिरकर नमकहलाली की जो बात उन्होंने कही थी, वह अब उन्होंने दरगुज़र कर दी थी। वे अब अंग्रेज़ों के भेदिये थे।

दोनों व्यक्ति सराय के सामने जाकर ठहर गए। हौज़ के पास, जहां अब घण्टाघर है, बराबर-बराबर फांसियां गड़ी थीं और क्षण-क्षण में चारों तरफ गली-कूचों से आदमी पकड़े जाकर फांसी पर चढ़ाए जा रहे थे। कुछ खास कैदी इनकी प्रतीक्षा में बंधे बैठे थे। हडसन साहब ने सबको खड़ा होने का हुक्म दिया। इलाही-बख्श ने उनमें से मुगल-सरदारों और राजपरिवार वालों की शनाख्त की; वे सब फांसी पर लटका दिए गए। इसके बाद, बादशाह किले से भाग गए हैं—यह सुन-कर एक फौज की टुकड़ी लेकर दोनों तीर की तरह रवाना हुए।

बादशाह सलामत जल्दी-जल्दी नमाज़ पढ़ रहे थे। उनके हाथ कांप रहे थे और आंखों से आंसुओं की धारा बह रही थी। शाहज़ादी गुलबानू ने आकर कहा—बाबाजान! यह आप क्या कर रहे हैं?

'बेटी अब और कर ही क्या सकता हूं? खुदा से दुआ मांगता हूं, कहता हूं—ऐ दुनिया के मालिक! मेरी मुश्किल आसान कर; यह तख्त, तैमूर के खून का तख्त तो आज गया ही, मेरे बच्चों की जान और आबरू पर रहम बख्श!'

गुलबानू ने कहा—बाबा! दुश्मन किले तक पहुंच चुके हैं। आपके लिए सवारी तैयार है, भागिए!

बादशाह ने अन्धे की तरह शाहज़ादी का हाथ पकड़कर कहा—भागूं कहां? हाय! वह घड़ी अब आ ही गई!

इसके बाद उन्होंने अपनी जड़ाऊ सन्दूकची मंगाई, और परिवार के सब लोगों को बुलाकर एक-एक मुट्ठी हीरे सबको देकर कहा—खुदा हाफिज़ !

किले से निकलकर बादशाह सीधे निज़ामुद्दीन गए। उस वक्त उनके मुख-मण्डल की आभा उतरी हुई थी। कुछ खास-खास ख्वाजासरा, कहार और इने-गिने शुभचिन्तकों के सिवा कोई साथ न था। चिन्ता और भय से वे रह-रहकर कांप रहे थे। उनकी सफेद दाढ़ी धूल से भर रही थी। बादशाह चुपचाप जाकर सीढ़ियों पर बैठ गए।

गुलामहुसेन चिश्ती सुनकर दौड़ आए। बादशाह उन्हें देखते ही खिलखिला-कर हंस पड़े। चिश्ती साहब ने पूछा—खैर तो है ?

'खैर ही है, मैंने तुमसे पहले ही कह दिया था कि ये बदनसीब गदर वाले मनमानी करने वाले हैं। इनपर यकीन करना बेवकूफी है; ये खुद डूबेंगे और हमें भी डुबाएंगे। वही हुआ, भाग निकले। मुझे तो होनहार दिखाई दे गई थी कि मैं मुगलों का आखिरी चिराग हूं। मुगलों के तख्त का आखिरी सांस टूट रहा है, कोई घड़ी भर का मेहमान है। फिर खून-खराबी क्यों करूं ? इसीलिए किला छोड़कर चला आया। मुल्क खुदा का है, जिसे चाहे दे, जिसे चाहे ले। सैकड़ों साल तक हमारे नाम का सिक्का चला। अब हवा का रुख कुछ और ही है। वे हुकूमत करेंगे, ताज पहनेंगे। इसमें अफसोस क्यों ? हमने भी तो दूसरों को मिटाकर अपना घर बसाया था ! हां, आज तीन दिन से खाना नसीब नहीं हुआ है। कुछ तो ले आओ ?'

चिश्ती साहब ने कहा—सिर्फ बाजरे की रोटी और सिर्के की चटनी है। हुक्म हो तो हाज़िर करूं।

'वही ले आओ।'

बादशाह ने शान्तिपूर्वक एक रोटी खाकर और पानी पीकर कहा—बस, अब हुमायूं के मकबरे में चला जाऊंगा, वहां जो भाग्य में होगा वह होगा।

हुमायूं के मकबरे में हडसन और इलाहीबख्श ने आकर बादशाह को गिरफ्तार करके रंगून भेज दिया।

तीन वर्ष व्यतीत हो गए। दिल्ली में अंग्रेज़ी अमल जमकर बैठ गया था। लालकिले पर यूनियन जैक फहरा रहा था। फांसियों की विभीषिकाओं ने नगर

और ग्राम की जनता के मन में दहल उत्पन्न कर दी थी। भेड़ की तरह दब्बू चुपचाप अंग्रेजों के विधान को अटल प्रारब्ध की तरह देख और सह रहे थे। इलाहीबख्श के पास बादशाही बख्शीश ही बहुत थी, अब अंग्रेजी जागीरों और मेहरबानियों ने उन्हें आधी दिल्ली का मालिक बना दिया था। सरकारी नीलाम में मुहल्ले के मुहल्ले उन्होंने कौड़ियों में पाए थे। उनकी बड़ी भारी अट्टालिका खड़ी मनुष्य के भाग्य पर हंस रही थी। सन्ध्या का समय था। अपनी हवेली के विशाल प्रांगण में तख्त के ऊपर बढ़िया ईरानी कालीन पर मसनद के सहारे इलाहीबख्श बैठे अम्बरी तमाखू पी रहे थे, दो-चार मुसाहिब सामने अदब से बैठे जी-हज़ूरी कर रहे थे। मियां जी को, मालूम होता है, बचपन के दिन भूल गए थे। वे बहुत बढ़िया अतलस के अंगरखे पर कमख्वाब की नीमास्तीन पहने थे।

धीरे-धीरे अन्धकार के पर्दे को चीरती हुई एक मूर्ति अग्रसर हुई। लोगों ने देखा, एक स्त्री-मूर्ति मैला और फटा हुआ बुर्का पहने आ रही है। लोगों ने रोका, मगर उसने सुना नहीं। वह चुपचाप मियां इलाहीबख्श के सम्मुख आ खड़ी हुई।

मियां ने पूछा—क्या चाहती हो ?

'पनाह !'

'कौन हो ?'

'आफत की मारी !'

'अकेली हो ?'

'बिलकुल अकेली !'

'कुछ काम करना जानती हो ?'

'बावर्ची का काम सीख लिया है !'

'तनख्वाह क्या लोगी ?'

'एक टुकड़ा रोटी !'

बहुत महीन, दर्द भरी, कम्पित आवाज़ में इन जवाबों को सुनकर मियां इलाहीबख्श सोच में पड़ गए। थोड़ी देर बाद उन्होंने नौकर को बुलाकर उस स्त्री को भीतर भिजवा दिया। उस दिन उसीको खाना बनाने का हुक्म हुआ।

मियां इलाहीबख्श दस्तरखान पर बैठे। दोस्त-अहबाबा का पूरा जमघट था। तब तक दिल्ली में बिजली तारों से नहीं बांधी गई थी। सुगन्धित मोमबत्तियां शमादानों में जल रही थीं।

खाना खाने से सभी खुश हुए। नई बावर्चिन की तारीफ के पुल बांधने लगे। दोस्तों ने कहा—ज़रा उसे बुलाइए और इनाम दीजिए।

इलाहीबख्श ने बावर्चिन को बुला भेजा। उसने कहा—आका से दस्त-बदस्ता अर्ज़ है कि मैं गैर मर्दों के सामने बेपर्दा नहीं हो सकती। हां, आका से पर्दा फजूल है। दोस्त लोग मन मारकर रह गए। मगर इलाहीबख्श के मन में प्रतिक्षण बावर्चिन को देखने की बेचैनी बढ़ चली। एकान्त होने पर उन्होंने उसे बुला भेजा। बावर्चिन ने जवाब दिया—मेरे मिहरबान मालिक! सफर, मिहनत और भूख से बेदम तथा कपड़ों से गलीज हूं—खिदमत में हाज़िर होने के काबिल नहीं।

इलाहीबख्श स्वयं भीतर गए और बावर्चिन के सामने जा खड़े हुए। बोले—क्या मैं तुम्हारी मुसीबत की दास्तान सुन सकता हूं? यह तो मैं समझ गया कि तुम शरीफ खानदान की दुखियारी हो।

बावर्चिन ने अच्छी तरह अपना बुर्का ओढ़कर कहा—मालिक! मेरा कोई दास्तान ही नहीं!

'क्या मुझसे पर्दा रखोगी?'

'यह मुमकिन नहीं है।'

'तब?'

'क्या आप मुझे देखना चाहते हैं?'

'ज़रूर, ज़रूर!'

वह मैला और फटा बुर्का चम्पे की-सी उंगलियों ने हटाकर नीचे गिरा दिया। एक पीली किन्तु अभूतपूर्व मूर्ति, जिसके नेत्रों में पानी और होंठों में रस था, सामने दीख पड़ी।

इलाहीबख्श ने आंखों की धुन्ध आंखों से पोंछकर ज़रा आगे बढ़कर कहा—तुम्हें, आपको मैंने कहीं देखा है!

'जी हां, मेरे आका! शेरे दादाजान की मिहरबानी से, लालकिले के भीतर जब आप मेरी डोली में लगाए जाने के लिए चाबुकों से लहू-लुहान किए गए थे, तब यह बदनसीब गुलबानू आपको तसल्ली देने तथा और भी कुछ देने आपकी खिदमत में आई थी। उम्मीद थी, मर्द औरत की अमानत—खासकर वह अमानत, जो दुनिया की चीज़ नहीं, जिसके दाम जान और कुर्बानी हैं—संभालकर रखेंगे। पर पीछे यह जानने का कोई जरिया न रहा कि हुज़ूर ने वह अमानत किस हिफाज़त

से कहां छिपाकर रखी ? गदर में वह रही या मेरे बाबाजान के तख्त के साथ वह भी गई ?

इलाहीबख्श का मुंह काला पड़ गया। बदहवासी की हालत में उनके मुंह से निकल पड़ा—आप शाहज़ादी गुलबानू…?

गुलबानू ने शांत स्वर में कहा—वही हूं जनाब ! मगर डरिएगा नहीं ! अगर गदर में मेरी अमानत लुट भी गई होगी तो वह मांगने जनाब की खिदमत में नहीं आई हूं। अब गुलबानू शाहज़ादी नहीं हुज़ूर की कनीज़ है—महज़ बावर्चिन है ! मेरे आका, क्या बांदी के हाथ का खाना पसन्द आया ? क्या बदनसीब गुलबानू की नौकरी बहाल रह सकेगी ?

इलाहीबख्श बेहोश होने लगे। वे सिर पकड़कर वहीं बैठ गए। गुलबानू ने पंखा लेकर झलते हुए कहा—जनाब के दुश्मनों की तबियत नासाज़ तो नहीं, क्या किसीको बुलाऊं ?

इलाहीबख्श ज़मीन पर गिरकर शाहज़ादी का पल्ला चूमकर बोले—शाहज़ादी, माफ करना ! मैं नमकहराम हूं।

'मैं जानती हूं। मगर हुज़ूर, यह तो बहुत छोटा कसूर है। क्या हुज़ूर यह नहीं जानते कि औरतें दिल और मुहब्बत को सल्तनत से बहुत बड़ी चीज समझती हैं ? क्या आप यकीन करेंगे कि बारह साल तक मैं आपकी उस ज़मीन में घायल तड़पती सूरत को आंखों में बसाकर जीती रही। जो कुछ बन सका बाबाजान से कहकर किया। मैं जानती थी कि मिल न सकूंगी, मगर आपको दुनिया में एक रुतबा देने की हसरत थी—वह पूरी हुई।'

इलाहीबख्श पागल की तरह मुंह फाड़कर सुन रहे थे।

शाहज़ादी ने कहा—जब बाबाजान ने आपके दगा और अंग्रेज़ों से आपके मिल जाने का हाल कहा तो दिल टूट गया। मगर उस दिल से अब काम ही क्या ? वह टूटे या साबुत रहे, आखिर अनहोनी तो हो गई—एक बार फिर मुलाकात हो गई। जहे किस्मत !

इलाहीबख्श भागे। वे चुपचाप घर से निकले। नौकर-चाकर देख रहे थे। उसके बाद किसीने फिर उन्हें नहीं देखा !

अबुलफज़ल-वध

अबुलफजल-वध एक प्रसिद्ध कहानी है। आचार्य श्री ने मुगलकाल के इतिहास की एक घटना को बहुत कुशलता से कहानी रूप में पेश किया है। सलीम को शराबी, निकम्मा और गुनहगार बताकर अबुलफजल ने अकबर के कान भरे थे। अन्त में वीरसिंहदेव ने उसका सिर काटकर सलीम के लिए सम्राट् बनने का मार्ग खोल दिया।

बरौन के दुर्ग के पच्छिम भाग में एक भग्न शिवमंदिर के भीतर तीन व्यक्ति बैठे किसी गुरुतर विषय पर परामर्श कर रहे थे। मौसम बहुत खराब था। दिन भर वर्षा हुई थी। अब भी बूंदें गिर जाती थीं। कड़ाके की सरदी थी और रात्रि अत्यंत अंधकारमयी थी। हवा ज़ोर से चलकर पहाड़ से टकराती थी और उसका भयानक गर्जन दिल को दहला देता था।

तीन व्यक्तियों में एक तेजस्वी पुरुष था। उसकी बहुमूल्य वेश-भूषा, पगड़ी पर हीरे का तुर्रा और कंठ में अंगूर के बराबर बड़े-बड़े मोतियों की माला तथा ज़री के कमरपेटे में जवाहरात से जड़ी हुई मूठ की पेशकब्ज उस व्यक्ति के उच्च पद को और उसकी तीखी, चीते के समान चितवन, सहज गंभीर स्वर, रोबदार मुख उसके प्रकृत वीरत्व को स्पष्ट कर रहा था। वह व्यक्ति बुंदेलखंड के स्वर्गीय महाराज मत्करशाह के सातवें पुत्र, बैरोन के ठिकानेदार राजा वीरसिंहजी थे, जिनकी वीरता ने बुंदेलखंड में आनंद, श्रद्धा और प्रतापी मुगल-साम्राज्य में आतंक जमा दिया था, और जिन्होंने बाहु-बल से हाल ही में मुगल-फौजदार से भंडेर और ईरिच के इलाके छीनकर कब्ज़ा कर लिया था।

दूसरा व्यक्ति, जो उनकी दाहनी ओर वीरभाव से बैठा था, एक ३५ वर्ष की आयु का मुसलमान व्यक्ति था। इसकी छोटी-छोटी, घनी, काली मूछें और छटी हुई दाढ़ी के बीच सुंदर, अतिगौर मुख और उसपर बड़ी-बड़ी, किन्तु लाल डोरों से संयुक्त स्थिर आंखें देखने वालों पर बिना प्रभाव डाले नहीं रहती थीं।

यह व्यक्ति एक लाल रंग का कश्मीरी दुशाला कमर में लपेटे, अपनी तलवार की मूठ को दृढ़ता से मुट्ठी में पकड़े मानो कोई भारी बात सोच रहा था, और मन ही मन उसकी संभावना और औचित्य पर विचार कर रहा था। इसका नाम था मिरज़ा गौर।

तीसरा व्यक्ति एक पच्चीस-छब्बीस वर्ष का बिलकुल नवयुवक, सुंदर नवयुवक था। उसकी स्वच्छ बड़ी-बड़ी आंखें उसके मन की स्वच्छता की द्योतक थीं। प्रशस्त माथा सच्चरित्रता प्रकट कर रहा था। उसकी चौड़ी छाती और अस्थिर होकर बैठने का ढंग प्रमाणित कर रहा था कि जिस गुरुतर कार्य की चर्चा हो रही है, उसपर विचार-परामर्श करने में देर करने की अपेक्षा कुछ झटपट कर डालना ही उत्तम है। उसका हाथ अपनी तलवार पर था, और लगभग आधी तलवार नंगी खिंची हुई थी। उसका सुन्दर मुंह क्रोध से तमतमा रहा था, और बड़े-बड़े श्वासों से उसकी छाती उठ-बैठ रही थी। यह राजा साहब का विश्वस्त शरीर-रक्षक मुकुट था।

राजा वीरसिंहजी कुछ देर स्वस्थ होकर बोले—देखो मिरज़ा, सब बातों की ऊंच-नीच ठीक-ठीक सोच लो। रामशाह ने विश्वासघात तो किया है, पर मेरे बड़े भाई हैं।

'महाराज, राजाओं का भाई कोई नहीं है, यह तलवार है। वह भी तभी तक, जब तक हाथ में रहे। आप स्वयं सोच देखिए, और उपाय क्या है?'

मुकुट ने बीच ही में उतावली से कहा—अपराध क्षमा हो महाराज, मुझे आज्ञा दीजिए, मैं रामशाह महाराज का अभी सिर काट लाऊंगा। ऐसा विश्वास-घात भाई के साथ! धिक्कार!!

'ठहरो मुकुट, सब बातों पर धीरज से विचार कर लो, क्रोध करने को बहुत समय है। देखो, उन्होंने परसों पांच हज़ार सेना लेकर दुर्ग में प्रवेश किया था।'

'जी हां, और कसम खाकर कहा था कि दो दिन को दुर्ग खाली कर दो, मैं तुम्हारा भाई हूं। विश्वास करो, हम समझाकर शाही सेना वापस कर देंगे। दुर्ग भी दो दिन में तुम्हें दे देंगे। पर उसी दिन दस हज़ार शाही सेना और दुर्ग में बुला ली, और आपपर रात्रि को सोते समय छापा मारा। महाराज, मैं कभी क्षमा न करूंगा।'

महाराज वीरसिंह हंस दिए। उन्होंने कहा, 'अच्छी बात है मत करना, पर

पन्द्रह हज़ार सेना से लड़ोगे कैसे ?'

'क्या मेरी तलवार में दम नहीं ?'

'बहुत है।'

'तब ?'

'इससे बहुत काम लिया जाएगा; मुकुट, अभी इसे सुरक्षित रहने दो। हां, मिरज़ा, फिर तुम्हारा क्या विचार है ? देखो, उधर सम्राट् अकबर की शत्रुता, इधर एक वंश, एक रक्त के भाई का विश्वासघात। घर का द्रोह तो कुछ करने ही न देगा।'

'परन्तु महाराज, सम्राट् स्वयं बड़ी मुसीबत में हैं। उधर मेवाड़ में युद्ध हो रहा है, प्रताप ने उनकी जान आफत में डाल रखी है। इधर सलीम ने विद्रोह का झंडा खड़ा किया है। महाराज, दिल्ली के तख्त का यह गृह-कलह ही हमारी संधि है। महाराज को इससे लाभ उठाना चाहिए।'

'तुम चाहते क्या हो ?'

'महाराज, चुपचाप प्रयाग चलकर सूबेदार और शाहज़ादे सलीम से मुलाकात करें; फिर जो कुछ होना होगा, स्वयं ही हो जाएगा।'

'और यदि शाहज़ादे ने मुझे शरण न दी ?'

'शाहज़ादा स्वयं आपकी शरण में आवेगा, इसका ज़िम्मा मेरे ऊपर रहा।'

'यह कैसे ?'

'उसे महाराज की सहायता की बड़ी ज़रूरत है।'

'किस तरह ?'

'यह महाराज वहां चलकर ही जानेंगे।'

राजा वीरसिंह सोचने लगे। अंत में कहा, 'मिरज़ा, अब और कोई उपाय नहीं, चलो प्रयाग। विलंब का काम नहीं, अभी कूच होगा। मुकुट, घोड़े ले आओ।'

'जो आज्ञा' कहकर मुकुट उठकर चला गया। दोनों योद्धा लंबी यात्रा की तैयारी करने लगे।

इलाहाबाद-दुर्ग के रंगमहल से सटे हुए एक छोटे-से, किन्तु अत्यन्त सुसज्जित कमरे में शाहज़ादा सलीम चिन्ता-मग्न, म्लान-मुख बैठे थे। उनका पीला और दुबला चेहरा, कुछ गढ़े में धंसी हुई उनींदी आंखें उनकी विलासिता को स्पष्ट

कर रही थीं। कमरे में केवल एक अल्पवयस्क, सुंदर दास मोरछल लिए खड़ा था। नकीब ने आकर अर्ज़ की, 'खुदावंद, राजा वीरसिंह बुंदेला कदमबोसी को हाज़िर हैं।'

शाहज़ादे ने उतावली से कहा, 'उन्हें ले आओ न।'

राजा वीरसिंह ने सम्मुख आकर कौर्निश की। शाहज़ादे ने सम्भ्रांत उठकर राजा साहब को छाती से लगा लिया, और बराबर बैठाकर कहा, 'राजा साहब, आपकी बहादुरी की तारीफ बहुत सुनी है, तभी दोस्ती की ख्वाहिश थी, वह आज पूरी हुई। आप जो मेरे पास तशरीफ ले आए, इससे मेरी ही इज़्ज़त अफज़ाई हुई है। अब आप दरगाह को अपना घर समझें, और ऐसा कोई काम बताकर मुझे ममनून करें, जो इस बात को साबित करे कि मैं आपका सच्चा दोस्त बनने का कितना ख्वास्तगार हूं।'

राजा वीरसिंहदेव सलीम की इतनी चापलूसी और उत्सुकता देखकर दंग रह गए, कुछ भी न समझ सके। उन्होंने कहा, 'हज़रत शाहज़ादा, आप मुझ नाचीज़ को क्यों शरमिंदा करते हैं? मैं तो आपकी पनाह आया हूं। बादशाह और खास मेरे बड़े भाई ने मेरे साथ दगा की है। फुसलाकर किला खाली करा लिया, और धोखा देकर रात को वध करने की चेष्टा की। इन दोस्तों और इस तलवार के बल से जान बचाकर भागा हूं। मिरज़ा गौर ने मुझे दरगाह में आने की सलाह दी है। शाहज़ादा मुझ शरणागत की इतनी आवभगत करेंगे, मैंने यह सोचा भी न था।'

सलीम ने कहा, 'राजा साहब, आप मेरी आंखें और भुजा हैं। आप मेरे सलाह-कार और दोस्त हैं। मैं आपके लिए जान भी दूंगा। कहिए, आप क्या चाहते हैं?'

वीरसिंह की आंखों से आंसू निकल आए। उन्होंने क्षणभर शाहज़ादे की तरफ देखा, और कहा, 'शाहज़ादा, तब यह सेवक भी रक्त की एक-एक बूंद आपको देगा। मेरे बादशाह शाहनशाह अकबर नहीं, आप हैं। आज से आप मेरे मालिक हैं।'

सलीम ने सिर से पगड़ी उतारकर कहा, 'मालिक सबका खुदा है, मैं आपका भाई, छोटा भाई हूं, और दिली दोस्त हूं। यह पगड़ी लीजिए, और अपनी मुझे दीजिए। आपने मुझे बादशाह कहा है, मैं आपको बुन्देलखण्ड का महाराज कहता हूं।'

महाराज ने उठकर पगड़ी आदरपूर्वक ले ली। सलीम भी उठ खड़ा हुआ,

महाराज ने अपनी पगड़ी शाहज़ादा को दी। दोनों एक बार फिर गले मिले।

अब काम की बात का परामर्श होने लगा। धीरे-धीरे सलीम ने दिल की गांठ खोल दी। कहा, 'महाराज, आप जानते हैं, मेरा परम शत्रु कौन है?'

'कौन?'

'वह बूढ़ा बाघ, वह शेख!'

'कौन शेख?'

'वह पाजी, पाखंडी अबुलफज़ल, जो आलिम कहाता है, और सिपहसालार से भी ऊंचा रुतबा रखता है।'

'शेख क्या कहते हैं?'

'बादशाह सलामत को मेरे विरुद्ध उसीने भड़काया है। वह मुझे शराबी, निकम्मा और गुनहगार समझता है। महाराज, वह गुलाम बादशाह सलामत की दाढ़ी का बाल हो रहा है।' सलीम कुछ देर चुप रहे। पर मानो उनका मन बेचैन हो रहा था, कुछ बात थी, जो निकलना चाहती थी। महाराज चुपचाप ये उतार-चढ़ाव देख रहे थे।

सलीम ने फिर कहा, 'महाराज, वह फिर दक्षिण से आ रहा है, दक्षिण को फतह करके वह इस बार बादशाह के और भी मुंह लग जाएगा। वह मेरा इस बार नाश कर डालेगा।' इतना कह सलीम ने आतुर होकर महाराज का हाथ ज़ोर से पकड़कर कहा, 'महाराज, मेरी मदद कीजिए, दोस्ती निभाइए। सलीम को आप नाशुकरा न पावेंगे?'

'शाहज़ादा क्या चाहते हैं?'

'यही कि वह आने न पावे, बादशाह से मिलने भी न पावे। उसे आप कैद कर लीजिए या मार डालिए।'

'और यदि वह युद्ध न करे?'

'वह बड़ा मगरूर और गुस्सैल है, ज़रूर लड़ पड़ेगा।'

'परन्तु शाहज़ादा ज़रा सोचिए, यह काम क्या मुनासिब होगा? बादशाह सब बात जानेंगे, तब...'

'आह महाराज, आप भी मुझे नाउम्मीद करेंगे?'

'शाहज़ादा, यह काम अच्छा नतीजा न लाएगा।'

'यह काम तो होना ही चाहिए।'

'आप सब आगा-पीछा सोचिए तो।'

'महाराज, बुन्देलखण्ड के महाराज, वह जब तक जिंदा है, तब तक मैं मरा हुआ हूं।'

महाराज सोच में पड़ गए। सलीम ने कहा, 'महाराज, मेरा तख्त, इज़्ज़त, आज़ादी सब इसी काम पर है। उसे रोकिए, कैद कीजिए या मार डालिए। वह मेरे कलेजे का कांटा है, उसे निकालिए। देखिए, यह पगड़ी यदि आपकी दी हुई न होती, और इसकी यदि मैं इज़्ज़त न करता, तो इसे अभी आपके कदमों पर धरता। महाराज, दोस्ती का हक अदा कीजिए।'

महाराज ने गहरी सांस ली। उन्होंने कहा, 'शाहज़ादा, मैं आपकी इच्छा पूरी करूंगा। पर मुझे अभी जाना होगा।'

सलीम फड़क गया। उसने अपना सुनहरी काम का ज़िरह-बख्तर महाराज को पहनाया, अपनी जड़ाऊ तलवार उनकी कमर में बांधी, और सिरोपाव देकर सैयद मुज़फ्फरअली के साथ विदा कर दिया।

शेख अबुलफज़ल जल्दी-जल्दी कूच करता बढ़ रहा था। बादशाह सलामत का हुक्म था कि वह जल्दी से जल्दी उनसे मिले। वास्तव में बादशाह को शेख की फौज और उसकी अक्ल की भी बहुत ज़रूरत थी। नरवर जाकर महाराज बीरसिंहदेव ने डेरा जा जमाया। उनके साथ बहुत ही कम सेना थी, परन्तु अब और कुछ हो भी नहीं सकता था। बीरसिंहदेव ने शेख से कहला भेजा, 'मैं आपसे मुलाकात किया चाहता हूं, बिना मुझसे मुलाकात किए आप आगे नहीं बढ़ सकते।'

अबुलफज़ल क्रोध में भभक उठा। एक तुच्छ राजा का इतना साहस! गुस्से में भरकर कहा, 'मेरा घोड़ा ले आओ। मैं अकेला ही उससे मुलाकात करूंगा, और उसका सिर काट लाऊंगा। उसकी ऐसी हिमाकत!' एक पठान सरदार ने कहा, 'जनाब, बेहतर है, इस वक्त लड़ाई-झगड़े को बचा जाए, बादशाह सलामत का हुक्म तो आपपर ज़ाहिर ही है।'

शेख ने घोड़े की रास खींचकर कहा, 'मैंने दखिन फतह किया है। अब इस तरह चाहे भी जो कोई आकर मेरा रास्ता रोकेगा, और ज़बर्दस्ती मुलाकात करेगा, तो हो चुका। रास्ता छोड़ो।' बूढ़े शेख ने दर्प से गर्दन तानी और घोड़े को एड़ लगा दी।

महाराज ने सुना, तो नंगी पीठ घोड़े पर चढ़कर दौड़े। बीच मैदान में ही दोनों की मुठभेड़ हो गई। शेख ने तलवार खींचकर कहा, 'तुम्हीं वीरसिंहदेव हो ?'

'मैं ही हूं शेख साहब, मेरी आपसे एक अर्ज़ है !'

'अर्ज़ सुनने की मुझे फुर्सत नहीं ! वार रोको।' इतना कहकर शेख ने वार किया।

महाराज ने पीछे हटकर कहा, 'शेख साहब, ज़रा ठहरिए; मेरी बात सुन लीजिए।'

शेख ने कहा, 'तुझपर लानत है, लड़ाई के वक्त बातें करना चाहता है ! तूने मुझे रोकने की जुर्रत क्यों की ? शेख अबुलफज़ल इस गुस्ताखी को यों ही नहीं बर्दाश्त करेगा।'

शेख ने तड़ातड़ वार करने शुरू किए। महाराज वीरसिंहदेव ने और कुछ वार बचाए। अन्त में वे भी युद्ध करने लगे। दोनों ओर की सेनाएं कुछ क्षण युद्ध देखती रहीं। हठात् मुगल-दल अर्राकर दौड़ पड़ा। महाराज की सेना भी टूट पड़ी। एक बार महाराज ने फिर युद्ध रोकने की चेष्टा की, परन्तु इतने ही में एक गोली शेख की कनपटी को चीरती हुई निकल गई। शेख तत्क्षण मरकर धरती में गिर गए। उनके गिरते ही शाही फौज तितर-बितर हो गई। महाराज खिन्न वदन शिविर में लौट आए।

शाहज़ादा सलीम अन्तःपुर के निकट, नज़रबाग के बीचोबीच, एक संगमरमर के चबूतरे पर, कीमती ईरानी कालीन पर बिछे हुए एक सोने के सिंहासन पर, मसनद लगाए बैठे थे। मिरज़ा गौर ने एक थाल शाहज़ादे के सामने पेश किया। सलीम ने कहा, 'क्या लाए हो ?'

'तोहफा है हुज़ूर।' मिरज़ा ने लाल रेशमी रूमाल उठा लिया, थाल में अबुल-फज़ल का सिर था।

सलीम उछल पड़े। उन्होंने कहा, 'मिरज़ा, तुम्हें भरपूर इनाम मिलेगा, महा-राज कहां हैं ?'

'वे बाहर शाहज़ादे के हुक्म की इंतज़ारी में खड़े हैं।' महाराज ने धीरे-धीरे आकर शाहज़ादे को कोर्निश करके कहा, 'शाहज़ादा, आशा है, आप सन्तुष्ट होंगे, वह अनुचित काम मैंने अन्ततः अंजाम दे दिया।'

शाहजादे ने खुशी में कहा, 'महाराज, आपने हमें सारा राज्य दे दिया। आपने हमारा अधिकार दृढ़ कर दिया है।' इसके बाद उन्होंने संकेत किया। एक खोजा सोने के थाल में मोती-जवाहरात और बहुत-सी बहुमूल्य वस्तुएं भर लाया। सलीम ने खड़े होकर महाराज को बुन्देलखंड का राजतिलक कर दिया। वह रत्नभरा थाल, एक जड़ाऊ माला, एक राजछत्र, दो चंवर भेंट किए।

प्रबुद्ध

अमिताभ बोधिसत्त्व गौतम बुद्ध की प्रभाव-सत्ता की समता विश्वमानवों में केवल ईसा कर सकता है, वह भी आंशिक। तिसपर गवेषणाएं ऐसी हैं कि कहा जाता है—ईसा बौद्ध शिष्य है। गौतम बुद्ध ने ईसा से छः सौ वर्ष पूर्व भारत में जन्म लेकर जिस धर्म-चक्र का प्रवर्तन किया वह विश्व का सर्वप्रथम सर्वसभ्य विश्वधर्म था। सारे संसार की सभ्य, अर्धसभ्य जातियों को उसने संयम, प्रेम, त्याग और अहिंसा का संदेश दिया और जिस काल सामन्तशाही तथा स्वेच्छा-जीवन ही रूढ़िवाद बना हुआ था, धर्म और जीवन को उसने व्यावहारिक और सरल रूप दिया। मनुष्य की जाति को उसने वह दिव्य चक्षु दिया जिससे वह ज्ञानावलोकन कर अपना और औरों का भला कर सके। प्रस्तुत कहानी में उसी दिव्यात्मा के जीवन-रेखाचित्र भाव-ध्वनि में अंकित हैं। यह कहानी सन् १६२६ में लिखी गई थी और इसके लिखने में नौ माह लगे थे। उन दिनों हिन्दी में बौद्ध साहित्य का अध्ययन विरल था और आचार्य के साहित्य-प्रांगण में प्रवेश का भी प्रभात था। इस दृष्टि से कहानी में उदीयमान भावी महान् साहित्यकार के दर्शन होते हैं। कहानी में भाव-कल्पना और मानसिक घात-प्रतिघात का प्रभावशाली और गम्भीर प्रदर्शन है। तथा कथनोपकथन-शैली में सतेज प्रवाह है जो भावों और विचारों के अद्भुत एकत्व का प्रकटीकरण करता है—कहानी में महाप्राण बुद्ध के अंतर्द्वन्द्व को साकार किया गया है।

वृद्ध महाराज शुद्धोदन विशेष प्रसन्नवदन दिखाई पड़ रहे थे। वे प्रासाद के भीतरी अलिन्द में एक स्फटिक मणि की पीठ पर बैठे थे। उन्होंने सम्मुख कुछ दूर पर खड़े हुए प्रतिहार को पुकारकर कहा—अरे! देख तो युवराज सिद्धार्थ अभी मृगया से लौटे या नहीं?

प्रतिहार ने आगे बढ़ और धरती पर बल्लम टेककर कहा—परम परमेश्वर, परम वैष्णव, महाभट्टारकपादीय महाकुमार अभी-अभी मृगया से लौटे हैं, और वे वायुमण्डप में विश्राम कर रहे हैं।

'अच्छा-अच्छा, महानायक प्रबुद्धसेन और महामात्य विजयादित्य को यहां भेज दो।'

प्रतिहार ने नतमस्तक हो प्रस्थान किया। महाराज ने चंवरवाहिनी को संकेत से निकट बुलाकर कहा—जा, राजमहिषी से कह दे कि आज ही तो भाण्ड-वितरण का दिन है, सभी राजकुमारियां आ गई होंगी। वे स्वयं उनकी शुश्रूषा करें। ऐसा न हो कि किसीको खिन्न होने का अवसर मिले।

महानायक प्रबुद्धसेन ने अलिन्द में आ स्थिर भाव से सम्मुख खड़े होकर और खड्ग को उष्णीष से लगाकर पुकारा—परम परमेश्वर, परम वैष्णव……

महाराज ने बीच में ही हंसकर कहा—महानायक, आज सभी सेना सज्जित करनी चाहिए। ज्यों ही कुमार सिद्धार्थ अन्तिम भाण्ड-वितरण करें, त्यों ही जयघोष और सैनिक अभिवादन होना चाहिए। आज ही कुमार सिद्धार्थ सेना को पताका प्रदान करेंगे।

महानायक ने नतमस्तक होकर कहा—महाराज की जय हो। समस्त सेना सज्जित होकर भट्टारकपादीय महाराजकुमार के अन्तिम भाण्ड-वितरण की प्रतीक्षा कर रही है।

महामात्य विजयादित्य ने आ, नतजानु होकर महाराज का अभिवादन किया। महाराज ने प्रफुल्ल बदन होकर कहा—महामात्य! अब तो समय उपस्थित है, फिर विलम्ब क्यों? सभी राजकुमारियां आ तो गईं? तुम कुमार सिद्धार्थ को तृतीय अलिन्द में ले जाओ, वहीं भाण्ड-वितरण किया जाएगा। हां, तुम कुमार के सर्वथा निकट रहना और उनकी गतिविधि का सूक्ष्म निरीक्षण करते रहना। नेत्रों का तारतम्य और ओष्ठ-प्रस्फुरण, गूढ़ मनोगत भावों को प्रदर्शित कर देगा। ज्यों ही तुम देखो, कुमार किसी कन्या के प्रति आकर्षित हुए हैं, त्यों ही तुम शंख-ध्वनि करना, और पुरोहित को शुभ संवाद देकर मेरे निकट भेज देना। —इतना कहकर महाराज हंस दिए।

वृद्ध महामात्य भी हंसे। उन्होंने कहा—जो आज्ञा, परन्तु कोली राजकन्या यशोधरा अभी तक नहीं आई हैं। वह…

बीच में ही एक दण्डधर ने उपस्थित हो, उच्च स्वर से जयनाद करके कहा—कोली राजकन्या भट्टारकपादीय महाराजकुमार से भाण्ड-प्रसाद पाने की अभिलाषा से आई हैं। वे द्वार पर उपस्थित हैं।

महाराज ने हठात् खड़े होकर कहा—जाओ, जाओ, राजमहिषी से कहो कि वे राजनन्दिनी का यथेष्ट स्वागत करें।

महामात्य ने नतमस्तक होकर कहा—तो अब मैं जाता हूं।

'शिवास्ते पन्थानः सन्तु !'

महाराज फिर अलिन्द में अकेले रह गए। उस समय न जाने कितनी सुखद स्मृतियां उनके हृत्पिण्ड को विकसित कर रही थीं।

वायु-मण्डप की एक स्वच्छ शिला पर राजकुमार सिद्धार्थ विषण्णवदन बैठे थे। उनके शरीर पर केवल एक उत्तरीय और अधोवस्त्र था। वे मानो किसी गहन चिंता में मग्न थे। वसंत की मृदुल वायु उनके काक-पक्ष को लहरा रही थी। कुसुम-गुच्छ झूम-झूमकर सौरभ बिखेर रहे थे। तप्त स्वर्ण के समान उनकी शरीर-कान्ति उन महीन वस्त्रों से बिखरी पड़ती थी। उनका मुख, चिन्तन की गम्भीर भावना के कारण प्रस्फुटित कैशोरावस्था की उत्फुल्लता से रहित हो गया था; पर उसका अप्रतिम सौन्दर्य कुछ और ही रंग ला रहा था। उनकी सुडौल गर्दन, विशाल वक्षस्थल, प्रलम्ब बाहु और केहरी जैसी ठवन असाधारण थी। सुकोमल हृद्गत भाव, सुकुमार देह और पुंस्त्व का उद्गम एक अलौकिक मिश्रण बना रहा था। वे शिलाखण्ड पर बैठे दोनों हाथों में जानु देकर सम्मुख पुष्करिणी में खिले एक कमल पुष्प पर बार-बार मत्त भ्रमर का प्रणय-आक्रमण देख रहे थे। परन्तु उस विनोद का कुछ प्रभाव उनके हृदय पर था—यह नहीं कहा जा सकता। उनकी दृष्टि भ्रमर पर थी अवश्य, पर वे किसी गूढ़ जगत् में विचर रहे थे। कभी-कभी उनके होंठ फड़क उठते और कोई शब्द-ध्वनि उनमें से निकल जाती थी। वे इतने मग्न थे कि कब कौन उनके निकट आ खड़ा हुआ है, यह उन्हें ज्ञात ही नहीं हुआ।

पीछे से स्पर्श पाकर उन्होंने चौंककर देखा और सम्भ्रान्त भाव से खड़े होकर वे आगत वृद्ध पुरुष को प्रणाम करते हुए बोले—आर्य की उपस्थिति का कुछ भी भान नहीं हुआ !

वृद्ध महापुरुष ने हंसकर कहा—होगा कैसे, तुम स्वयं उपस्थित रहो तब न ? क्षणभर भी एकान्त हुआ, और तुम गम्भीर चिन्तन में मग्न हुए। कुमार ! क्या प्रतापी शाक्यवंश के एकमात्र उत्तराधिकारी के लिए यह उचित है ?

'आर्य क्षमा कीजिए। मैं भविष्य में इसका ध्यान रखूंगा; परन्तु···आज मेरी

परीक्षा हो गई न ?'

'आशातीत ! तुम्हारे जैसे अन्यमनस्क शिष्य से मुझे इतनी आशा न थी। सभी कहते थे कि कुमार लक्ष्य-वेध न कर सकेंगे। तुम अभ्यास ही कब करते थे ? परन्तु आज तुम्हारा हस्त-लाघव देखकर मैं गद्‌गद हो गया। कुमार ! मैं धन्य हुआ। तुम शाक्यवंश के दीपक होगे। मैं भविष्यवाणी करता हूं—तुम अप्रतिम योद्धा···' वृद्ध पुरुष कुमार के कन्धे पर स्नेह से हाथ रखकर उपर्युक्त वचन कह रहे थे।

कुमार ने बीच में ही बात काटकर कहा—आर्य ! पुरजन फिर तो मेरी परीक्षा का हठ न करेंगे ?

'कभी नहीं, वे पूर्ण सन्तुष्ट हैं, सर्वत्र ही तुम्हारी अप्रतिम शस्त्रकला की चर्चा हो रही है। पर तुम क्या विशेष थके हुए हो ?'

'तनिक भी नहीं।'

'तब यह एकान्त-सेवन क्यों ? यह गम्भीर चिन्तन क्यों ? और यह विषण्ण मुखमुद्रा क्यों ?'

'आर्य अत्यन्त स्नेह के कारण ऐसा विचार करते हैं। परन्तु···अरे ! महामात्य इधर ही आ रहे हैं—आर्य, हमें आगे बढ़कर अमात्यवर का अभिवादन करना चाहिए।'

दोनों व्यक्ति वायु-मण्डप के द्वार तक बढ़ आए। महामात्य ने हंसकर कहा—आयुष्मन् ! आज तुम आखेट में विजय प्राप्त कर आए। इस समाचार से अंतःपुर में विशेष उल्लास हो रहा है; महिषी की इच्छा है कि आज सभी राजकुमारियां समुपस्थित हैं, कुमार उन्हें अपने हाथों से रत्न-भाण्ड प्रदान कर उन्हें प्रतिष्ठित करें।

कुमार ने सलज्ज भाव से कहा—माता की जैसी आज्ञा। तीनों व्यक्ति धीरे-धीरे प्रासाद की ओर चल दिए।

उषा की अलौकिक रश्मि-रेखा की तरह सबके अंत में कोलराजनन्दिनी यशोधरा ने कक्ष में प्रवेश किया, मानो उन्हें देखते ही कुमार सिद्धार्थ का चिर-निद्रित यौवन जागरित हो उठा। वे धीरे-धीरे सौरभ, आलोक और शोभा बिखेरती हुई व्यास-पीठ तक पहुंचकर कुमार के सम्मुख खड़ी हो गईं; वे सिमट

रही थीं और झुक रही थीं; न जाने अविकसित यौवन के भार से अथवा लज्जा के भार से। वे सम्मुख खड़ी होकर भूमि पर दृष्टि गड़ाए पद-नख से धरती पर बिछे स्फटिक-प्रस्तर पर रेखा खींचने का व्यर्थ प्रयास कर रही थीं।

कुमार चित्र-लिखित-से देखते रह गए। वे जागरित भी प्रसुप्त-से थे। कुमार के निकट खड़े अमात्यवर ने कहा—राजनन्दिनी को भाण्ड प्रदान करो आयुष्मन्।

कुमार ने घबराकर इधर-उधर देखा और अस्त-व्यस्त स्वर में कहा—शुभ्रे! तुमने अति विलम्ब किया, भाण्ड तो सभी वितरण हो चुके।

राजनन्दिनी क्षणभर उसी तरह खड़ी रहीं। फिर उन्होंने ऋजु प्रणाम करके लौटने का उपक्रम किया।

कुमार असंयत होकर आगे बढ़े और कण्ठ से मणिमाला निकालकर उन्होंने कुमारी के गले में डाल दी। कुमारी ने दृष्टि उठाकर कुमार के प्रदीप्त स्वर्णमुख की ओर देखा। वे पत्ते की तरह कांपने लगीं और उनका मुख प्रस्वेद से भीग गया। कुमार जड़वत् खड़े थे। हठात् महामात्य ने शंख-ध्वनि की। क्षणभर में भुशुण्डिकाएं गर्ज उठीं। उसके बाद ही विविध वाद्य-ध्वनि से राजप्रासाद गुंजायमान हो गया।

कुमार ने विचलित होकर कहा—आर्य! यह क्या हुआ? पर उन्होंने देखा, कक्ष में वे हैं और पुष्प-भार से झुकी हुई लतिका के समान राजनन्दिनी यशोधरा हैं। उन्होंने साहस करके कहा—राजनन्दिनी क्या प्रतिदान की अभिलाषा रखती है?

कुमारी के अधरोष्ठ में एक क्षीण हास्य-रेखा और कपोलों पर लाली आई और गई। उन्होंने नतजानु होकर महाराजकुमार को अभिवादन किया और उसके बाद वहां से चली गईं।

क्या हम प्रेम की व्याख्या करें? उस प्रेम की, जहां शरीर-सम्पत्ति प्रेम का माध्यम नहीं है; जहां केवल प्राणों में प्राणों का लय है; जो नेत्रपटल पर नहीं तौला जाता; केवल आत्मा जिसमें विभोर होती है; जो जीवन से मृत्यु तक और मृत्यु से परे भी वैसा ही पारिजात-कुसुम की तरह अक्षय विकसित रहता है; वासना का यहां सम्पर्क नहीं; भोग और तृप्ति का यहां प्रसंग नहीं; अभिलाषा और अरुचि दोनों ही यहां नहीं; जहां सुख नहीं, आनन्द है; जहां कुछ भी प्राप्त करने की अभिलाषा नहीं—सब कुछ प्राप्त है। इस पृथ्वी-तल पर दाम्पत्य जीवन

में यह प्रेम किस महाभाग ने प्राप्त किया ?

गौतम ने यशोधरा का आंचल खींचकर कहा—गोपा प्रिये ! अब बस करो, चंगेरी तो भर चुकी। अब इन पुष्पों को लताओं में इसी तरह विकसित छोड़ दो। ये कल तक तो खिले रह सकेंगे ? देखो जिन डालियों के पुष्प तुम तोड़ चुकी हो वे कितनी अशोभनीय हो गई हैं ?

'होने दो, आर्यपुत्र ! ये कल फिर फूलों से लद जाएंगी। यह तो प्रकृति का स्वभाव है। आप व्यर्थ ही इतना विषाद करते हैं।'

'व्यर्थ ? नहीं प्रिये ! इन कुसुम-लतिकाओं के प्रति तुम्हारा आचरण नितांत निष्ठुर है। अभी प्रात:काल तो तुम इन्हें अपने हाथों सींच रही थीं—सो क्या इसीलिए ?'

'और नहीं तो क्या ? आर्यपुत्र क्या मुझे ऐसी ही निःस्वार्थ समझे बैठे हैं ? —मैंने सींचा है तो फूल भी चुनूंगी। यह तो जगत् की गति ही है। और यह निष्ठुर आचरण क्या इतना ही ? अभी तो मैं रुचि से गूंथकर माला बनाऊंगी। ये यूथिका, चम्पा और कुन्द क्या यों ही अस्त-व्यस्त चंगेरी में पड़े रहेंगे, जैसे आर्य-पुत्र के विचार पड़े रहते हैं ?'

'उलाहना मत दो प्रिये ! तुम्हें तो उदार होना ही चाहिए। तुम राजनन्दिनी हो, हाय-हाय ! क्या तुम इन कोमल पुष्पों को सुई से विद्ध भी करोगी ?'

'आर्यपुत्र ! देखते रहें, मैं एक-एक को विद्ध करूंगी। मैं राजनन्दिनी हूं, पालन करना, कर ग्रहण करना और दण्ड-भय से शासन और सुव्यवस्था बनाए रखना मेरा कर्तव्य है। जल-सिंचन करके मैंने पालन किया, पुष्प-चयन करके कर ग्रहण कर रही हूं, और अब सूची-शस्त्र के बल से सुव्यवस्थित करके माला बनाऊंगी। फिर आर्यपुत्र के वक्षस्थल पर वह सुशोभित होगी। और मेरे परिश्रम का वेतन मुझे प्राप्त होगा,'—इतना कहकर गोपा हंस पड़ी।

महाराजकुमार सिद्धार्थ ने उसे दृढ़ता से पकड़कर कहा—पर मैं विद्रोह करूंगा, अब मैं तुम्हें अधिक यह कर-शोषण नहीं करने दूंगा, प्रिये ! चाहो तो मुझे दण्ड दो।

'अच्छी बात है ? मैं तुम्हें बांधकर डाले देती हूं।'

इतना कहकर गोपा ने अपने दृढ़ भुज-पाश में कुमार को बांध लिया।

महाराजकुमार के अन्तस्तल में सदैव जागरित प्रबुद्ध सत्ता उस मद से क्षण-

भर को मूर्छित हो गई। उन्होंने पत्नी-श्रेष्ठ को प्रगाढ़ आलिंगन करके चुम्बन किया।

गोपा ने हंसकर कहा—आर्यपुत्र! स्मरण रखें कि यह अनुग्रह वेतन में नहीं काटा जाए, पुरस्कारमात्र समझा जाए?

राजकुमार हंस पड़े। उन्होंने कहा—गोपा प्रिये! उस दिन तो तुम इतनी चपला न थीं, जिस दिन भाण्ड-वितरण·········

'आर्यपुत्र के पास इसी बात का क्या प्रमाण है कि मैं बालिका हूं?' गोपा ने बात काटकर कहा।

'वही तो हो प्रिये! यह नेत्र और यह अधरोष्ठ, इन्हें क्या मैं भूल जाऊंगा? ओह, इन्हींने तो मुझे ठगा।'

राजकुमार मानो एक गम्भीर चिन्तन में पड़ गए।

गोपा ने व्याज कोप से कहा—आर्यपुत्र को भ्रम हुआ है। वे थीं राजनन्दिनी यशोधरा—कोलकुमारी, और मैं हूं भगवती गोपा—शाक्यसिंहासन की युवराज्ञी।

'अच्छा, अच्छा, प्रिये! अब चलो, प्रासाद में चलें, सूर्य अस्त हो रहा है; तुम्हें शीत का भय है।'

'जो आज्ञा आर्यपुत्र!'

'अर्द्धरात्रि तो कब की व्यतीत हो गई। त्रिशिरा नक्षत्र आकाश के मध्य-भाग में आ गए। आर्यपुत्र क्या शयन न करेंगे?'

'ओह प्रिये! तुम अभी तक जाग रही हो?'

'सारा संसार मोहमयी निद्रा में शयन कर रहा है।'

'हाय! यह कैसे दुःख का विषय है!'

'कैसा घोर अन्धकार है!'

'पर मेरा हृदय प्रकाशित है।'

'मेरे प्रभु! तुम्हारे इतने निकट होने पर भी मैं उस प्रकाश की एक किरण भी नहीं देखती।'

'मैं उसे संसार के प्राणिमात्र को दिखाने की बात सोच रहा हूं प्रिये।'

'इस स्तब्ध अन्ध निशा में?'

'अन्ध निशा तो मानवहृदय में ओतप्रोत है। तुम समझती हो जब सूर्योदय

होगा, तब वह छिन्न-भिन्न हो जाएगी ?'

'मैं मूर्ख स्त्री और क्या सोचूंगी ?'

'नहीं गोपा, आत्मप्रतारणा की आवश्यकता नहीं; पर इस बात को तो सोचो। मानव-आत्मा न जाने कब से उसी प्रकार से सो रही है जैसे इस समय संसार। और वह उसी प्रकार अंधकार में व्याप्त है जैसे इस समय पृथ्वी। यह निद्रा और अन्धकार कुछ समय में दूर हो जाएगा, उषा का उदय होगा, जगत् सुन्दर हो जाएगा, प्रकृति भांति-भांति के रंग का शृंगार करेगी, आलोक से आकाश और भूलोक शोभायमान होगा, आह! कैसी सुन्दर बात है, परन्तु मानव-हृदय का अन्धकार और सुषुप्ति तब भी दूर न होगी। यह अक्षय अन्धकार, यह चिर-मोह-निद्रा मनुष्य पर शाप है। मनुष्य-जाति के इस दुर्भाग्य पर तुम्हें करुणा नहीं आती ?'

'और इस अनन्त मानव-समुदाय में अकेले आर्यपुत्र जागरित हैं ?'

'प्रिये ! व्यंग्य क्यों करती हो ?'

'अच्छा, आर्यपुत्र ! इस अन्धकार में जागरित होकर किस सौभाग्य की आशा करते हैं ? इस अन्धकार में तो जागरित पुरुष की अपेक्षा सुख से सोए पुरुष ही अधिक भाग्यशाली हैं ?'

कुमार ने उत्तेजित होकर गोपा का हाथ पकड़ लिया। कहा—किन्तु, यदि उनका कभी प्रभात न हो तो ? उस निद्रा का कभी अवसान न हो तो ?

गोपा विचलित हुई, निरुत्तर हुई। वह पति के निकट बैठकर कुछ सोचने लगी।

सिद्धार्थ ने कहा—प्रिये ! यदि मैं अपने प्रकाश की रेखा से इस अन्धकार को छिन्न-भिन्न कर सकूं ? जागरित होकर मानव-समाज सुन्दर आलोक देखे तो, गोपा ? क्या हमारा जीवन धन्य न होगा ?

'अवश्य।'—गोपा ने दृढ़ता से कुमार का हाथ पकड़कर कहा।

'तब इसके लिए हृदय विदीर्ण करना पड़ेगा।'

'विदीर्ण ?'

सिद्धार्थ कुछ न बोले। दोनों महाप्राण आन्दोलित हो रहे थे। 'हृदय विदीर्ण करना होगा ?'···गोपा का माथा घूमने लगा। वह ज़ोर से कुमार का आलिंगन करके रोने लगी। वह बहुत कुछ कहना चाहती थी, पर कुछ कह न सकती थी; वह बहुत दिन से एक आशंका को मन से दूर करने की चेष्टा कर रही थी, पर कर

नहीं सकती थी। कुमार के भाव को वह कुछ समझ न सकी, पर 'हृदय विदीर्ण' होने की भावना वह सह न सकी—वह पति के वक्षस्थल पर गिरकर फूट-फूटकर रो उठी।

एक बार महाराजकुमार की अन्तर्हित प्रबुद्ध सत्ता फिर मूर्छित हुई। उन्होंने गोपा को गाढ़ा आलिंगन करके बार-बार उसका चुम्बन किया। धीरे-धीरे दोनों प्राणी शयनकक्ष की ओर चले गए।

'देखो प्रिये, यह क्या हो रहा है ?' कुमार ने मुझाकर डाली पर झुके एक पुष्प की ओर संकेत करके कहा।

गोपा ने देखा और वह आश्चर्यचकित हो कुमार की तरफ देखकर बोली—आर्यपुत्र का अभिप्राय क्या है ?

'अभी कुछ देर पूर्व सूर्य की किरणों ने इस पुष्प को छुआ, यह खिल पड़ा। सूर्य तो अस्त हो रहा है, और यह मुर्झा रहा है; अब यह सूखकर झड़ जाएगा। यह कहकर उन्होंने पत्नी की ओर देखा।

गोपा कुमार की मुख-मुद्रा को एकटक देख रही थी। कुमार ने फिर कहा—गोपा प्रिये ! मनुष्य का जीवन भी ऐसा ही है। —उनकी दृष्टि गोपा के मुख से हटकर एक बार दोलायमान हुई और फिर वह दूर क्षितिज पर डूबते हुए सूर्य पर अटक गई। मुख पर कुछ हास्य-रेखा आई, पर वह गई नहीं। वे जड़वत् वैसे ही बैठे रहे।

गोपा घबरा गई। उसने कहा—आर्यपुत्र, अब और क्या विचार रहे हैं ?

कुमार ने चौंककर कहा—ओह कुछ भी तो नहीं, प्रिये ! आज मैं नगर में गया था। वहां मैंने राजपथ पर एक पुरुष देखा, वह एक लाठी के सहारे बड़े कष्ट से चल रहा था। उसके नेत्र इतने विभ्रम थे कि उनकी अपेक्षा नेत्र न होते तो हानि न थी; दांत सभी गिर गए थे। उससे उसका मुख तो विकृत हो ही गया था, वाणी भी अस्पष्ट हो गई थी, उसकी खाल काली होकर लटक गई थी। और हड्डियां चमक रही थीं। उसका अंग-अंग कांप रहा था। वह बड़े चाव से मेरी ओर देख रहा था। मैं उसके निकट गया। उसने कांपते-कांपते हाथ ऊपर उठाकर मेरा अभिवादन किया और कहा—कुमार ! एक दिन मैं तुमसे भी अधिक सुन्दर था और एक दिन तुम भी ऐसे ही हो जाओगे। मैंने सोचकर देखा। प्रिये ! उसका

कथन सत्य हो सकता है।

गोपा कुमार की ओर देखती रही; उसके होंठ कांपकर रह गए। कुमार बोले—कुछ आगे चलने पर एक और हृदयद्रावक दृश्य देखा। एक पुरुष को लोग उठाकर ले जा रहे थे। मैंने उन्हें रोककर पूछा : यह क्या है? उन्होंने कहा : यह मर गया है। मैंने उसे देखा, वह न हिल सकता था, न बोल सकता था; उसमें प्राण नहीं था। वे उसे भस्म करने को ले जा रहे थे। एक ने कहा : अन्त में सभीको ऐसा होना पड़ेगा।

राजकुमार हठात् उठ खड़े हुए। उन्होंने शून्यदृष्टि से आकाश की ओर देखा। उनके हृदय को मानो कोई ज़ोर से मन्थन कर रहा था। उन्होंने कातर कण्ठ से गुनगुनाकर कहा—वह कैसी भयानक दशा है! राजा और रंक यहां विवश हैं? क्या इस दुःख से छूटने का कोई उपाय ही नहीं है? फिर तो ये सुख, राजप्रासाद, धन और अधिकार विडम्बनामात्र हैं? जब ये चिरस्थायी ही नहीं, जब उस अवश्यम्भावी अवस्था के प्रतिकार में ये समर्थ ही नहीं तब?—उन्होंने ज़ोर से पुकारकर कहा—गोपा प्रिये! तब?

गोपा कुमार की मुख-मुद्रा और भाव-भङ्गी से डर गई। उसने त्रस्त स्वर में कहा—आर्यपुत्र, क्या सोच रहे हैं?

'प्रिये! कोई गूढ़ वस्तु कहीं छिपी है!'

'इस राज-सम्पदा से, अधिकार-सत्ता से भी अधिक?'

'हां।'

'इस यौवन, सौन्दर्य और आनन्द से भी अधिक?'

'हां।'

'आपकी इस चिरकिङ्करी से भी अधिक?'

'ओह, गोपा प्रिये, ठहरो! वह गूढ़ वस्तु हमें प्राप्त करनी चाहिए।'

'और वह है कहां?'

'मैं उसे ढूंढूंगा, वह मनुष्यमात्र के दुःख को दूर करने की तालिका होगी।' उनके होंठ फड़कने लगे और नेत्र उन्मीलित हो गए।

गोपा एक बार कम्पित हुई। उसने कुमार का हाथ पकड़कर उठाया और कहा—आर्यपुत्र! नगर-निरीक्षण तो आपने किया, अब मेरी सारिका का निरीक्षण भी कीजिए, देखिए यह आपकी तरह मेरा नाम पुकारना सीख गई है।

आज आपको उस मयूर के जोड़े को स्वयं भोजन कराना होगा। इसके सिवाय आज आप अन्धकार-निरीक्षण न कर सकेंगे? अभी से शयन-कक्ष में रहना होगा।

बहुत चेष्टा करने पर उसके होंठों पर हास्य आया। कुमार ने अन्यमनस्क होकर कहा—अच्छा प्रिये! तुम्हारी ही बात रहे।

'पुत्र! हे भगवान्! यह नया बन्धन उत्पन्न हो गया! गोपा क्या कम थी? वह आनन्द और हास्य का मधुर अमृत एक क्षण भी मुझे नीरस नहीं रहने देना चाहता। परन्तु जो स्वभाव से नीरस है, वह सरस होगा कैसे! गोपा के प्रेम-पाश को तोड़ने में मैं कितना बल लगा चुका, वह टूटा नहीं। अब यह पुत्र? अरे! कैसा सुन्दर है यह! इसे केवल एक बार देखने के लिए मैंने समस्त संयम नष्ट कर दिया। वह स्वर्ण की दीप्त कान्ति धारण करने वाला अर्द्धनिमीलित नेत्र, छोटा-सा मुख, मानो मेरी ही एक सजीव छाया—मुझसे पृथक् परन्तु मेरे प्राणों की एक कोर! मैंने प्राण दिया और गोपा ने शरीर। गोपा के समान ही सुन्दर और प्रिय, कोमल और रुचिर। अरे! वह मेरा पुत्र है। हम दोनों के प्राण और शरीर जिस महायोग में एक राशि पर आए, वह इन्द्रियातीत आनन्द का आदान-प्रदान जिस क्षण हुआ, उसकी ऐसी स्थायी स्मृति? गोपा! जादूगरनी, यह क्या किया? उस एक क्षणके करोड़वें हिस्से की आनन्द-लहर को तूने ऐसा स्थिर बना दिया? मैंने उसे गोद में उठाया। गोपा का वह मूक अनुरोध और वह अप्रतिम उल्लास? गोपा के नेत्रों में मानो उसके प्राण ही आ गए थे। उसने उसे मेरी गोद में दिया और मेरे चरण-चुम्बन किए—यह इतनी विनय क्यों? तब की गोपा प्रिया अब मातृभाव में आप्लावित हुई! अच्छा ठहरो, उसके नेत्र कैसे थे? गोपा ने कहा था, ठीक मेरे जैसे! अरे! कहीं मैंने ही जन्म नहीं ले लिया? नहीं तो उस अबोध बालक पर मेरी इतनी ममता क्यों होती? मेरा उसका परिचय कबका है?'

राजकुमार को कोमल शय्या पर नींद न आई। वे चुपचाप उठकर उपवन में टहलने लगे। उनके विचारों में फिर उत्तेजना उत्पन्न हो गई। वे पुत्र की बात को सोचते-सोचते चिन्ता में मग्न हो गए—ऐं! यह कैसा सुख, यह कैसा सौभाग्य, जिसमें निद्रा का भी नाश हो गया? सारा संसार तो सो रहा है। यही तो चिन्तनीय विषय है, जो सुख है, वह भी दुःख का मूल है। कोई भी ऐसा मनुष्य नहीं, जो

मानव-जीवन की इस कठिन व्याधि का उपाय जानता हो। राजकुमार एक जामुन के वृक्ष के नीचे बैठकर जीवन, मरण और उत्पत्ति के विचार में मग्न हो गए।

उस अभेद्य अन्धकार में मानो उनके दिव्य चक्षु खुल गए। उनसे उन्होंने देखा : संसार का सुख दुःखदायी, मृत्यु अनिवार्य और भवितव्य है, पर यह जानकर भी लोग अज्ञान के अन्धकार में ही अपना जीवन व्यतीत करते हैं, और सत्य की खोज नहीं करते। कुमार का हृदय अगाध दया से भर गया।

हठात् राजकुमार ने देखा, सम्मुख वृक्ष के नीचे एक गम्भीर महापुरुष खड़े हैं। कुमार ने पूछा—तुम कौन हो? और कहां से आते हो?

'मैं श्रमण हूं, बुढ़ापे के दुःखों और रोगों की पीड़ा तथा मृत्यु के भय से मैं घर-द्वार का परित्याग करके निकला हूं; मैं मुक्ति का अन्वेषक हूं; क्योंकि संसार के सब पदार्थ नष्ट हो जाते हैं, केवल सत्य ही सदा साथ रहता है। प्रत्येक वस्तु बदलती रहती है, कोई पदार्थ स्थिर नहीं है। मैं अक्षय आनन्द को चाहता हूं, मैंने संसार त्याग दिया है। मैं भिक्षा मांगकर खा लेता हूं। मैंने इन्द्रियों को वश में कर लिया है, मैं अपने उद्देश्य में तत्पर हूं।'

'मैं भी इन्द्रियों के विषयों की निस्सारता को अच्छी तरह समझ गया हूं। मुझे भोग से घृणा हो गई है। मेरा जीवन मुझे शून्य दीखता है। क्या तुम कह सकते हो कि इस अशान्त-जगत् में कहीं शान्ति मिल सकती है?'

'जहां उष्णता है वहां शीतलता भी है। पर महान् सुख के लिए महान् परिश्रम भी करना होगा। पापविद्ध व्याकुल आत्मा को उस कल्याण-मार्ग का शोध करना चाहिए जो निर्वाण की ओर जाए। निर्वाण-सरोवर में स्नान करने से सारे पाप धुल जाएंगे।'

'आह! तुम्हारा समाचार शुभ है। मेरे पिता और पत्नी मुझे राजकाज में लगाना चाहते हैं। वे घराने की कीर्ति के इच्छुक हैं, वे कहते हैं कि यह समय धर्म-जीवी बनने के लिए उपयुक्त नहीं।'

'आह, यही समय है जब मोह का अन्धकार आत्मा पर छाया हुआ है।'

'महाश्रमण! धर्मान्वेषण का समय आ गया, मैं उन सब बन्धनों को तोड़े डालता हूं जो धर्म-प्राप्ति में बाधक हैं।'

राजकुमार ने एक बार उच्च अट्टालिका की ओर देखा। श्रमण ने कहा—कुमार सिद्धार्थ! तुम्हारी जय हो! तुम महान् हो! तुम तथागत हो! देखो,

सत्य को पराकाष्ठा तक पहुंचाना। जिस प्रकार सूर्य सब ऋतुओं में स्थिर होकर अपने नियमित मार्ग पर चलता है, उसी प्रकार तुम भी सत्य-पथ पर अटल रहना। तुम 'बुद्ध' होगे, तुम लक्षावधि मनुष्यों की बुद्धि को शुद्ध करोगे, तुम जगत् के पथ-प्रदर्शक होगे।

सिद्धार्थ ने देखा, महापुरुष यह कहते-कहते अन्तर्धान हो गए। वे उठ खड़े हुए। उन्होंने कहा—मैंने सत्य का साक्षात् कर लिया। मैं अब बन्धनों को तोड़ूंगा। मैं बुद्ध-पद प्राप्त करूंगा।

वे धीरे-धीरे गम्भीर चिन्तन करते हुए अलिन्द की ओर लौटे।

माता और पुत्र सुख-नींद में बेसुध सो रहे थे। गोपा के अरुण अधर पर हास्य की रेखा फैल रही थी, और उनके बीच कुन्दकली के समान दांत चमक रहे थे। वह किस सुख-स्वप्न को देख रही है?—कुमार क्लान्त भाव से खड़े-खड़े यही सोचने लगे। गोपा का एक हाथ शिशु के वक्ष पर था। उस सुगन्धित कक्ष में शिशु का छोटा किन्तु अतिमनभावन मुख दीप्त हो रहा था। सिद्धार्थ का हृदय भर आया। उन्होंने प्रण किया : मैं संकल्प पर स्थिर रहूंगा। फिर भी उनके नेत्रों से अश्रु-धारा बह चली। वे बोले—और यह शोकावेग कितना दुर्धर्ष है? इस धारा के वेग को रोकना कितना कठिन है? कुमार आगे बढ़कर शय्या के पास घुटनों के बल बैठ गए। एक बार उन्होंने शिशु का मुंह चूमने का उपक्रम किया, पर जागने के भय से वे वैसे ही बैठे रहे। गोपा की सुख-निद्रा पर उनकी दृष्टि थी। अश्रु वेग से उमड़ रहे थे। अन्त में उन्होंने हृदय में वह साहस संचित किया जो पृथ्वी पर कभी किसी तरुण ने नहीं किया था। वे धीरे से उठे। उन्होंने दोनों हाथों की मुट्ठी बांधकर आकाश में स्तब्ध तारागणों की ओर देखा, और फिर एक दृष्टि गोपा के स्निग्ध यौवन और शिशु के अज्ञात मोह पर डाली और चल दिए।

पृथ्वी पर अन्धकार छा रहा था। उन्होंने फाटक पर आकर देखा, चन्न उपस्थित है।

'चन्न, क्या तुम जागरित हो?'

'परम परमेश्वर महाभट्टारकपादीय युवराज की जय हो!'

'चन्न, एक घोड़ा तो ले आओ।'

'जो आज्ञा।'

तारों के क्षीण प्रकाश में वह महान् राजकुमार राजपाट, सुख-भोग और ऐश्वर्य पर लात मारकर महान् प्रकाश की खोज में जा रहा था।

'चन्न ! बस, अब आवश्यकता नहीं। तुम घोड़ा लेकर राजधानी लौट जाओ।'

'स्वामिन्, मैं आपको प्राण रहते न छोड़ूंगा।'

'चन्न ! लो ये बहुमूल्य वस्त्र भी तुम ले जाओ। अब कहो, तुम्हारा स्वामी कौन है ?'

'महाराज-युवराज ! यह आप क्या कह रहे हैं ?'

'ठहरो।' युवराज ने तलवार से अपने सुन्दर केश-गुच्छ काटकर तलवार चन्न के सम्मुख रखकर कहा—लो इसे भी संभालो।

चन्न धरती पर गिरकर रोने लगा। वह बोला—प्रभु ! मैं कदापि-कदापि न जाऊंगा।

'चन्न ! वत्स ! हठ मत करो। शोक भी मत करो, आनन्दित हो। मैं सत्य की खोज में जा रहा हूं। मैं जगत् को आनन्द प्रदान करूंगा। जाओ वत्स ! पिताजी और गोपा को धैर्य प्रदान करना।'

एक आन्तरिक तेज से दीप्त पुरुष की तरह सिद्धार्थ चल दिए। चन्न पछाड़ खाकर गिर पड़ा। सिद्धार्थ के नेत्र सत्य के प्रचण्ड उत्साह से देदीप्यमान हो रहे थे। उनका यौवन-सौन्दर्य उस पवित्र तेज में परिवर्तित हो गया था जो उनके श्रीमुख पर दृष्टिगोचर हो रहा था।

राजगृह महानगरी जनपूर्ण हो रही थी। प्रतापी बिम्बसार वहां के सम्राट् थे। जब मध्याह्नकाल होता—गृहस्थ भोजन कर चुकते—वीतरागी सिद्धार्थ भिक्षा-पात्र हाथ में लिए नगर की गलियों में भिक्षा मांगने निकलते। वह प्रभावान् मुखमण्डल, विनम्र गति, पृथ्वी पर झुके हुए नेत्र और ओष्ठसम्पुट से मृदु-ध्वनि से निकलने वाला 'कल्याण' शब्द नगरवासियों के लिए अपूर्व था। वे प्रत्येक घर से एक ग्रास भोजन ग्रहण करते थे, और बारह ग्रास लेकर नगर के बाहर चले जाते थे। जनपथ और राजपथ पर उनके पीछे भीड़ लगी रहती। आबालवृद्ध उनके लिए मार्ग छोड़ देते, उनके भिक्षा-पात्र में ग्रास डालकर कृतार्थ होते, और सोचते : कोई महान् मुनि नगर में आए हैं।

सम्राट् बिम्बसार ने सुनकर गुप्तचरों के द्वारा जाना कि शाक्यवंश का राजपुत्र राजपाट त्याग वनवासी हुआ है। वह राजकीय वस्त्र पहन, स्वर्ण-मुकुट सिर पर धारण कर, अमात्योंसहित उससे मिलने आया। मुनि सिद्धार्थ वृक्ष के नीचे गम्भीर मुख-मुद्रा किए बैठे थे। बिम्बसार ने प्रणाम कर कहा—आपके हाथ में राज्य-रश्मि शोभा देती है, भिक्षा-पात्र नहीं। आपका तारुण्य इस तपस्या के योग्य नहीं। श्रेष्ठ और ज्ञानी पुरुषों को शक्ति सम्पन्न होना चाहिए। धर्म खोकर धनी होना उत्तम नहीं, पर धन, धर्म और बल को प्राप्त कर जो इन्हें दूरदर्शिता से भोग करे वह मेरा गुरु है।

मुनि सिद्धार्थ ने आंख उठाकर सम्राट् को देखा और कहा—राजन्! आप धार्मिक और विवेकी हैं, आपका कथन सत्य है; पर मैं सारे बन्धनों से पृथक् हो चुका हूं। क्योंकि मैं निर्वाण का इच्छुक हूं। जिसे उस सच्चे ज्ञान की अभिलाषा है, उसे उन सब बातों से विरक्त हो जाना चाहिए जो उसके चित्त को अपनी ओर खींचती हैं। उसके लिए काम, क्रोध, लोभ, मोह, अधिकार और वासनाओं का त्याग करना परमावश्यक है। मैंने वैभव की असारता को समझ लिया है, और अब मैं अमृत के धोखे विष-पान नहीं करूंगा। सम्राट्! आप मुझपर करुणा करने का कष्ट न उठाइए। करुणा के पात्र वे हैं जो संसार की चिन्ता में दिन-रात व्याकुल रहते हैं, जिनके हृदय में न शान्ति है और न मन में एकाग्रता। हे राजन्, कहिए तो, एक राजा और भिक्षुक की मृतक देह में क्या अन्तर है?

सम्राट् बिम्बसार ने बद्धांजलि होकर प्रणाम किया और कहा—हे त्यागी! आप धन्य हैं! आपकी कामना पूर्ण हो। परन्तु आप पूर्ण बुद्ध होने पर एक बार मुझे अपना शिष्य स्वीकार कर कृतार्थ अवश्य करें।

मुनि सिद्धार्थ ने सम्राट् की प्रार्थना को स्वीकार किया।

'हे विद्वानो! क्या आप ही प्रसिद्ध दार्शनिक और तत्त्ववेत्ता आराद और उदरक हैं! मैं आपसे आत्मा के विषय की जिज्ञासा करने आया हूं!'

'हे मुनि! हम वही हैं। तुम्हें जो संशय हो, कहो।'

'मैं यह जानना चाहता हूं कि आत्मा क्या है?'

'आत्मा वह है जो देखता, चखता, सूंघता और छूता है; फिर भी वह न तुम्हारा शरीर है न आंख, कान, नाक और न मुख। आत्मा वह है जो त्वचा द्वारा छूता

है, जिह्वा से रस लेता है, आंख से देखता और कान से सुनता है।'

'हे विद्वानो ! आत्मा की मुक्ति क्या है ?'

'जिस प्रकार पक्षी पिंजरे से छूटकर स्वतन्त्रता प्राप्त करता है, उसी प्रकार आत्मा सब बन्धनों और उपाधियों से छूटने पर मुक्त हो जाता है।'

'परन्तु क्या उष्णता अग्नि से भिन्न है ? मनुष्य रूप, रस, वासना, संस्कार, बुद्धि, चित्त आदि का संघात है; यही संघात तो 'मैं' है; वही 'मैं' तो आत्मा है। तब वह भिन्न सत्ता कैसे हुई ? और जब तक वह 'अहं' शेष है, तब तक तुम्हारी वास्तविक मुक्ति कदापि नहीं हो सकती।'

'परन्तु मुनि ! क्या तुम अपने चारों ओर कर्म-फल को नहीं देखते ? वह कौन-सी बात है जिसने मनुष्यों के आचार, विचार, अधिकार, जाति और वैभव में भिन्नता उत्पन्न कर दी है ? वह कर्म-फल ही तो है।'

'कर्म-फल तो है ही, पर आत्मवाद का आधार क्या है ? संसार में कोई काम, वस्तु, फल या विचार नहीं हो सकता, यदि उसके पूर्व उसका कारण विद्यमान न हो। किसान जो बोएगा, फसल पर वही काटेगा। परन्तु 'अहं' की भिन्न सत्ता और उसका शरीरोत्तर गमन इसका प्रत्यक्ष प्रमाण क्या है ? क्या मेरी व्यक्ति-विशेषता प्रवृत्ति और मन—दोनों का संघात नहीं है ? क्या मेरे व्यक्ति-वैशिष्ट्य में शारीरिक और मानसिक दोनों शक्तियां सम्मिलित नहीं हैं ? यदि किसी मनुष्य के अन्दर से भूख-प्यास, चलना-फिरना, रोना-हंसना आदि निकाल दिए जाएं तो फिर उसकी मनुष्यता की क्या सार्थकता रह गई ? उन प्राकृत और दैहिक बातों के बिना मनुष्य यथार्थ में क्या है ? जिस प्रकार कल का 'मैं' आज के 'मैं' का पूर्वज है, और कल के 'मैं' ने आज के 'मैं' में जन्म लिया है, एवं आज का 'मैं' कल के 'मैं' में फिर जन्म लेगा, उसी प्रकार पूर्व-जन्मों का अनादि प्रवाह चल रहा है।'

'हे मुनि ! तुम अभी मूर्ख हो।'

'हे विद्वानो ! तुम अभी मनन करो।'

कुमार सिद्धार्थ वहां से चल दिए। उस बिल्व-वन में पांच तपस्वी कठोर तप कर रहे थे। मुनि सिद्धार्थ ने भी तप करना शुरू किया। छह वर्ष के कठोर तप से उनका शरीर सूखकर लकड़ी के समान हो गया, वे मृतप्राय हो रहे थे, परन्तु उन्होंने सोचा—खेद है कि इन उपवासों और व्रतों से मुझे कुछ भी शान्ति नहीं मिली। यह सब मिथ्या है। वे उठे, उन्होंने स्नान किया, परन्तु दुर्बलता के कारण

गिर पड़े। गोप-कन्या नन्दा ने दया कर उन्हें खीर दी, जिससे उनके शरीर में बल का संचय हुआ। वे तपश्चर्या छोड़कर धीरे-धीरे स्वस्थ होने लगे। अन्ततः वहां से भी चल दिए।

बोधि-वृक्ष निकट आ गया। मुनि ने उसे देखा। पृथ्वी कम्पायमान होने लगी। जगत् में प्रकाश छा गया। मार—जो विषयों का पोषक, और मृत्यु का प्रेरक है, तथा सत्य का शत्रु है—आया। उसकी तीनों लुभावनी पुत्रियां अपनी राक्षसी सेना के साथ थीं। सम्मुख आए मार ने भयानक गर्जना की। मुनि बोधि-वृक्ष के नीचे शान्त बैठे रहे। उसकी तीनों पुत्रियों ने उनपर बाण फेंके। पर प्रबल जितेन्द्रिय के हृदय में कोई तामसी इच्छा न उत्पन्न हुई। तब समस्त दुष्ट आत्माओं ने उनपर एकसाथ आक्रमण किया, पर नारकीय ज्वालाएं सुगन्धित पवन के झोंकों में परिवर्तित हो गईं, वज्रपात ने कमल पुष्प का रूप धारण कर लिया। मार पराजित होकर भागा। एक अलौकिक तेज दिशाओं में व्याप्त हो गया।

मुनि सिद्धार्थ ध्यान मग्न थे। वे संसार की विपत्तियों, कष्टों और दुष्कर्मों के बुरे परिणामों को प्रत्यक्ष देख रहे थे। वे सोच रहे थे—संसार की यह कैसी विचित्र गति है? वे एकाएक बोल उठे—धर्म सत्य है, धर्म ही मनुष्य को अज्ञान, पाप और दुःखों से बचाता है। जीवन-विकास की बारह कड़ियां हैं, जिन्हें द्वादश निदान कहते हैं। सत्यचतुष्टय ये हैं—(१) दुःख, (२) दुःख का कारण, (३) दुःखों की समाप्ति, (४) अष्टांग मार्ग (जिनपर चलने से दुःखों का नाश होगा)। मुनि सिद्धार्थ इस सिद्धान्त को प्राप्त करके बुद्ध हो गए। वे बोले—धन्य है वह जिसने धर्म को समझ लिया। धन्य है वह जो किसीको हानि नहीं पहुंचाता। धन्य है वह जिसने पापों पर विजय प्राप्त की है! वही महापुरुष है—ज्ञानी है, बुद्ध है।

बुद्ध इन सिद्धान्तों की प्राप्ति से उदीयमान तेज से दिप रहे थे। वे शान्त और गम्भीर मुद्रा में बैठे थे। दो व्यक्तियों ने आकर उनके चरणों में सिर रख दिया।

'हे मनुष्यो! तुम्हारा कल्याण हो! तुम कौन हो?'

"हे प्रभु, मेरा नाम तपुस है और इसका मल्लिका; हम व्यापारी हैं। यह चावल की रोटी और शहद हमारे पास है; इसे ग्रहण कर कृतार्थ करें।'

'हे सज्जनो ! मैंने तुम्हारा भोजन ग्रहण किया। बुद्ध-पद प्राप्त होने पर यह मेरा प्रथम भोजन हुआ। हे धर्मात्माओ ! तुम तथागत बुद्ध के प्रथम शिष्य बने। तथागत बुद्ध का कथन है—जगत् का कोई अन्याय, अत्याचार और पाप स्वार्थ से रहित नहीं। सारे दोषों का मूल स्वार्थी मन के अन्दर है। पाप न धरती में है, न आकाश में; न हवा में, न पानी में; न रात में, न दिन में; वह स्वार्थी मनुष्य के मन में है। ज्ञान तो तभी मिल सकता है जब स्वार्थ की निस्सारता और अस्थिरता का पूर्ण ज्ञान हो जाए। मनुष्य उच्च और आदर्श जीवन तभी प्राप्त कर सकता है जब उसे यह निश्चय हो जाए कि स्वार्थ-त्याग के बिना कोई मनुष्य आत्मिक जीवन के पवित्र सुख को अनुभव नहीं कर सकता। यथार्थ सुख स्वार्थ-परायणता और विषय-भोग में नहीं है, कृत्रिमता और आडम्बर को दूर करने में है।'

इतना कहकर बुद्ध मौन हो गए। दोनों व्यापारियों ने चरणों में गिरकर कहा—हे प्रभु, हम बुद्ध की शरण हैं, हम बुद्ध के धर्म को ग्रहण करते हैं।

बुद्ध ने नेत्र उठाकर देखा, और दोनों हाथ ऊंचे करके कहा—कल्याण ! कल्याण !!

मगध में हलचल मच गई थी। सभी की जिह्वा पर एक ही बात थी : शाक्य मुनि पतियों को बहकाकर पत्नियों से अलग करता है। वह वंशों का नाश करता है।

बुद्ध अपने प्रमुख शिष्यों-सहित राजगृह में पधारे थे। भिक्षु जब नगर में निकलते तब लोग कहते—देखें, अब किसकी बारी आती है !

सारिपुत्र और मौद्गलायन, अश्वजित्, आचार्य महाकश्यप और उनके भ्राता—सभी भगवान् बुद्ध के शिष्य हो गए थे। जो प्रख्यात और तत्त्वदर्शी था, राजगृह का वह महाधनपति यशस भी बुद्ध की शरण जा चुका था, और उसके महाधनवान् चारों मित्र, जो काशी में रहते थे, उसके अनुयायी बन चुके थे।

मगध के सम्राट् बुद्ध के दर्शन को पधारे। सहस्रावधि मनुष्य उनके साथ थे। वे लाखों की सम्पदा भेंट को लाए थे। राजा के साथ उसके सभी मन्त्री और सेनानायक थे। उन्होंने देखा : जटिलों के आचार्य महाकश्यप के साथ भग-

वान् बुद्ध बैठे हैं। सम्राट् ने चकित होकर सोचा कि शाक्य मुनि ने क्या कश्यप को अपना आध्यात्मिक गुरु माना है या कश्यप गौतम का शिष्य हो गया है ?

बुद्ध ने सम्राट् के संशय को समझकर कहा—कश्यप ! तुमने कौन-सा ज्ञान प्राप्त किया है, और वह कौन-सी बात है जिसने तुमको अग्नि-पूजा और कष्ट-दायक तपश्चर्या छोड़ने के लिए बाध्य किया है ?

कश्यप ने कहा—अग्नि की उपासना से दुःखों और प्रपंचों के चक्र में पड़े रहने के अतिरिक्त और कोई लाभ नहीं हुआ। अब मैंने इसे त्याग दिया है। तपस्याओं और पशु-बलिदानों के स्थान में मैं सर्वोच्च निर्वाण की प्राप्ति के लिए लगा हूं।

तब बुद्ध ने आंख उठाकर सम्राट् की ओर देखा और कहा—जो अपने 'अहं' रूप को जानता है, और समझता है कि इन्द्रियां अपने-अपने कार्यों को किस प्रकार करती हैं, वह स्वार्थ और अहंकार के फेर में नहीं पड़ता और अभय शान्ति उपलब्ध करता है। संसार को 'मैं' का ख्याल है। मेरा शरीर, मेरा धन, मेरा नाम, मेरा रूप, मेरा शत्रु, उसने मुझे गाली दी, उसने मुझे धोखा दिया, उसने मुझे बदनाम किया, इत्यादि संकल्प-विकल्प ही समस्त झूठे भयों और दुष्ट भावों के उत्पादक हैं। कोई कहते हैं कि यह 'मैं' मृत्यु के पश्चात् स्थिर रहता है। कोई कहता है, उसका अन्त हो जाता है परन्तु वे दोनों भूल पर हैं। इन्द्रियों का पदार्थों के सन्निकर्ष से ज्ञान उत्पन्न होता है। जैसे सूर्य की शक्ति से शीशे में अव्यक्त अग्नि व्यक्त हो जाती है, उसी प्रकार इन्द्रियां और पदार्थों के मिलने से स्मृति आदि का क्रमशः विकास होता है और चेतन शक्ति की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं के बदलने से उस सत्ता का प्रादुर्भाव होता है जिसे 'अहं' कहते हैं। बीज से अंकुर फूटता है, परन्तु अंकुर से बीज नहीं फूटता। दोनों एक नहीं हैं। इस प्रकार 'अहं' एक भ्रम है, 'मैं' क्षणिक है। वह क्षण-क्षण में बदलता है। जो इस तत्त्व को समझेगा वह काम, क्रोध, लोभ, मोह को क्षणिक परिणाम समझ, उन्हें दबाने की कोशिश करेगा। स्वार्थ की प्रबल प्रवृत्ति को रोको और फिर तुम मन की उस निश्चय अवस्था को प्राप्त करोगे जो पूर्ण शान्ति, परम पुरुषार्थ, और सत्य ज्ञान की दात्री है।

—माता जिस प्रकार बच्चे के लिए प्रतिक्षण आत्मबलिदान करती है, उसी प्रकार सत्य-ज्ञाता विवेकी को शुद्ध हृदय से परहित की सदा कामना करनी

चाहिए। यह भावना जितनी प्रौढ़ होगी उतना ही निर्वाण-पद निकट होगा। यही बौद्ध धर्म है।

बुद्ध जब उपदेश देकर शान्त हुए तब सम्राट् ने नतमस्तक होकर कहा—भगवन्! जब मैं राजकुमार था तब पांच भावनाएं मेरे मन में थीं: (१) मैं राजा होऊं, वह पूरी हुई; (२) पवित्रात्मा बुद्ध मेरे ही शासन-काल में मेरे राज्य में पधारें, वह भी पूरी हुई; (३) मैं उनकी सेवा में उपस्थित होकर उनका सत्कार करूं, यह भी पूर्ण हुई; (४) मैं भगवान् का पवित्र उपदेश सुनूं, यह भी पूरी हुई; (५) मैं भगवान् के धर्म को समझ सकूं, वह भी पूर्ण हुई। प्रभो! आपका सत्य महान् है। आप उस बात को स्थापित करते हैं जो अब तक अस्त-व्यस्त रही है। आपने उसे व्यक्त किया जो अब तक अव्यक्त था। आपने उन्हें मार्ग बताया जो अब तक भटके थे। आप अन्धकार में पड़े हुओं के लिए दीपक जलाते हैं। आज मैं बुद्ध की शरण लेता हूं; संघ की शरण लेता हूं; धर्म की शरण लेता हूं।

बुद्ध ने कृपा-दृष्टि से सम्राट् को देखा और समस्त उपस्थित मण्डल बुद्ध-धर्म में दीक्षित हो गया।

कपिलवस्तु में उल्लास था, पिता का आतिथ्य स्वीकार करने भगवान् बुद्ध सात वर्ष बाद लौटे हैं। महाराज शुद्धोदन अपने मन्त्रिगण सहित स्वागत को आए। वे अपने पुत्र के तेज और सौन्दर्य को दूर से देख गद्गद हो गए। उन्होंने मन ही मन कहा—निस्सन्देह यह मेरा पुत्र है। कुमार सिद्धार्थ का ऐसा ही रूप-रंग था। परन्तु यह महामुनि अब सिद्धार्थ नहीं रहा। वह बुद्ध है, पवित्रात्मा है, सत्य का स्वामी और मनुष्यों का शिक्षक है।

वे रथ से उतर पड़े और आनन्दाश्रु बहाते हुए बोले—आज सात वर्ष बाद मैंने तुम्हें देखा है। क्या तुम जानते हो कि तुम्हें देखने की मुझे कितनी इच्छा थी?

प्रणाम करके बुद्ध पिता के पास बैठ गए। राजा के जी में आया कि उनका नाम लेकर पुकारें। पर साहस न हुआ।

वे मानो मन ही मन कह रहे थे—पुत्र सिद्धार्थ! आ और पिता के पास पुत्र की भांति रह। अन्त में उन्होंने कहा—मैं यह सारा राजपाट तुम्हें सौंपना चाहता था; पर देखता हूं, राज्य को तुम तुच्छ समझते हो।

बुद्ध ने कहा—पिता! आपका हृदय प्रेमपूर्ण है, पर आपका जितना प्रेम मुझ-

पर है, उतना ही यदि प्रजा पर भी हो तो आपको सिद्धार्थ से बढ़कर पुत्र मिल सकते हैं। आप मेरे लिए मन से पुत्र-भाव निकाल डालिए। यदि आप अपने सामने उसे बुद्ध (ज्ञानी) देखेंगे जो सत्य का शिक्षक और सदाचार का प्रचारक है तो आपको निर्वाण की शांति प्राप्त होगी।––राजा पुत्र की यह वाणी सुनकर आह्लादित हुए। वे आंसू भरकर कहने लगे––आश्चर्यजनक परिवर्तन है। इस परिवर्तन से हृदय को दुःख और व्याकुलता नहीं होती। पहले मैं शोकपूर्ण था, मानो मेरा हृदय फट जाएगा। अब मैं प्रसन्न हूं। तुमने जगत् के लिए राज्य-सुख त्यागा। अच्छा, तुम संसार में अष्टांग मार्ग का प्रचार करो।

प्रातःकाल भगवान् बुद्ध भिक्षा-पात्र लेकर नगर में भिक्षा के लिए चले। नगर में हाहाकार मच गया। रथ और हाथियों पर सवार होकर जो पुरुष रत्न बिखेरता था, वह नंगे पैर घर-घर एक ग्रास अन्न मांगता है।

राजा ने कहा––वत्स गौतम! ऐसा न करो, मैं तुम्हारे भोजन का प्रबन्ध कर दूंगा।

'पर यह हमारी धर्म-परिपाटी है।'

'पर तुम उस राजवंश के हो जिसने कभी भिक्षा नहीं मांगी।'

'मैं उस बुद्ध वंश में हूं जो सदा भिक्षा-वृत्ति पर सन्तोष करता आया है।'

राजा अवाक् हो, उन्हें राजमहल में ले आए। राजमन्त्रियों और अन्तःपुर की स्त्रियों ने बुद्ध की अर्चना की।

बुद्ध ने पूछा––गोपा कहां है? वह क्यों नहीं आई?

एक दासी ने बद्धांजलि होकर कहा––स्वामिन्, वे कहती हैं, भगवान् को स्वयं ही उनके पास आना चाहिए।

बुद्ध तत्क्षण उठकर चल दिए। चार प्रमुख शिष्य उनके साथ थे। गोपा––आनन्द और प्रेम की मधुर लतिका गोपा––अपने सप्तवर्षीय पुत्र के साथ अपनी समस्त कटु स्मृतियों को कसकर छाती में छिपाए, उस महावीतरागी, अतीत-प्रिय-पति को धरती पर दृष्टि दिए अपने कक्ष में आते देख रही थी। द्वार के निकट पहुंच बुद्ध ने अपने शिष्य सारिपुत्र मौद्गलायन से कहा––मैं तो माया-पाश से मुक्त हुआ, पर यशोधरा अभी बद्ध है। उसने मुझे चिरकाल से नहीं देखा। वह वियोग से व्याकुल है। यदि मिलन-अभिलाषा अब भी पूर्ण न होगी तो उसका हृदय फट जाएगा। इसलिए मैं तुम्हें सावधान किए देता हूं कि यदि वह मुझे छूना चाहे तो

रोकना मत। सारिपुत्र मौद्गलायन ने विनम्र होकर कहा---जैसी भगवान् की आज्ञा।

वह मलिनवस्त्रा और धूलि-धूसरितवेशा, केशविहीना यशोधरा, मूर्तिमती, वियोग और विषाद की छाया चुपचाप खड़ी एकटक उन्हें देख रही थी। वह इस बात को भूल गई कि उसका पति अब जगद्गुरु और सत्य का अन्वेषक है। वह सम्मुख आते ही बुद्ध के पैर पकड़, फूट-फूटकर रोने लगी। जब वह प्रकृतिस्थ हुई तब उसने श्वसुर को देखा और हट गई। राजा ने कहा---यह उसका मनोवेग नहीं है, हृदयस्थ प्रकृत प्रेम के स्रोत का प्रवाह है। जब उसे ज्ञात हुआ कि तुमने केश काट डाले हैं, तब उसने भी इसका अनुसरण किया। जब उसने सुना कि तुमने सभी भोजन त्याग दिए, तब उसने भी सब कुछ छोड़ दिया। यह मृत्पात्रों में खाती और भूमि पर सोती है। उससे बड़े-बड़े राजकुमारों ने विवाह की प्रार्थना की, तब उसने कहा---मेरे स्वामी का मुझपर पूर्ण अधिकार है, और मैं अब भी उनके चरणों की दासी हूं।

बुद्ध ने करुण एवं गम्भीर स्वर में कहा---कल्याण बुद्धे ! तुम धन्य हो। तुम बड़ी पुण्यात्मा हो। तुम्हारी पवित्रता, सुशीलता और भक्ति ने मुझे लाभ पहुंचाया है और मैं सत्य-ज्ञान को उपलब्ध कर चुका हूं। तुम्हारा हार्दिक दुःख और शोक अवर्णनीय है। परन्तु तुमने जो आध्यात्मिक सम्पत्ति अपने श्रेष्ठ और शुद्धाचरण से प्राप्त की है, वह तुम्हारे समस्त दुःखों को आनन्द में परिवर्तित कर देगी।

यशोधरा ने धैर्य धारण कर मन के वेग को रोका। अब वह समझ गई कि यह महापुरुष मेरा पति नहीं, जगत् का महान् धर्मगुरु है। उसने दृढ़ता से कहा---हे स्वामी ! पिता की सम्पत्ति पर पुत्र का अधिकार होता है। यह आपका पुत्र है। आपके पास चार खज़ाने हैं, उन्हें मैंने नहीं देखा; पर आप उन्हें अपने पुत्र को प्रदान करें। इतना कहकर उसने सप्तवर्षीय बालक को बुद्ध के चरणों में डाल दिया।

बुद्ध ने कहा—तुम्हारा मातृत्व धन्य है। तुम्हारे पुत्र को मैं ऐसा द्रव्य न दूंगा जो नाशवान् हो और जो उसे शोक और चिन्ता में डाले। मैं उसे चारों सत्य का भेद समझाऊंगा; यदि उसमें उन्हें धारण की योग्यता हुई।

बालक ने कहा---हे पिता ! मैं योग्य बनूंगा।

'वत्स ! तुम्हारा कल्याण हो ! तुम मेरे साथ आओ।'

बालक को अग्रसर कर बुद्ध लौट गए। गोपा अपने उस एकमात्र हृदयधन को भी गंवाकर ठगी-सी खड़ी रह गई।

एशिया के महासाम्राज्य उस बुद्ध के सत्य-कर्म के सम्मुख झुके और वह महान् धर्मात्मा पृथ्वी पर सदा के लिए अमर हो गया।

भिक्षुराज

आचार्य द्वारा बौद्ध भूमि पर लिखित सब कहानियों में भिक्षुराज सर्वाधिक प्रसिद्ध और कहानी के टेकनिक की दृष्टि से परिपूर्ण कहानी है। कहानी में सम्राट् अशोक के तपस्वी पुत्र-पुत्री की यशोगाथा चित्रित है जो अत्यन्त भावशाली और सशक्त शैली में है।

मसीह के जन्म से ढाई सौ वर्ष प्रथम। ग्रीष्म की ऋतु थी और सन्ध्या का समय, जब कि एक तरणी कांबोज के समुद्र-तट से दक्षिण दिशा की ओर धीरे-धीरे अनन्त सागर के गर्भ में प्रविष्ट हो रही थी।

इस क्षुद्रा तरणी के द्वारा अनन्त समुद्र की यात्रा करना भयंकर दुःसाहस था। वह तरणी हल्के, किन्तु दृढ़ काष्ठफलकों को चर्म-रज्जु से बांधकर और बीच में बांस का बंध देकर बनाई गई थी, और ऊपर चर्म मढ़ दिया गया था। वह बहुत छोटी और हल्की थी, पानी पर अधर तैर रही थी, और पक्षी की तरह समुद्र की तरंगों पर तीव्र गति से उड़ी चली जा रही थी। तरणी में एक ओर कुछ खाद्य पदार्थ मृद्भाण्डों में धरा था, जिनका मुख वस्त्र से बंधा हुआ था। निकट ही बड़े-बड़े पिटारों में भूर्जपत्र पर लिखित ग्रन्थ भर रहे थे।

तरणी के बीचोंबीच बारह मनुष्य बैठे थे। प्रत्येक के हाथ में एक-एक पतवार थी, और वह उसे प्रबल वायु के प्रवाह के विपरीत दृढ़ता से पकड़े हुए था। उनके वस्त्र पीतवर्ण थे, और सिर मुंडित—प्रत्येक के आगे एक भिक्षा-पात्र धरा था। उनके पैरों में काष्ठ की पादुकाएं थीं।

तेरहवां एक और व्यक्ति था। उसका परिच्छद भी साथियों जैसा ही था। किन्तु उसकी मुख-मुद्रा, अन्तस्तेज और उज्ज्वल दृष्टि उसमें उसके साथियों से विशेषता उत्पन्न कर रही थी। उसकी दृष्टि में एक अद्भुत कोमलता थी जो प्रायः पुरुषों में, विशेषकर युवकों में, नहीं पाई जाती। उसके मुख की गठन साफ और सुन्दर थी। उसके मुख पर दया, उदारता और विचारशीलता टपक रही थी।

वह सबसे ज़रा हटकर, पीछे की तरफ बैठा हुआ था और उसका एक हाथ नाव की एक रस्सी पर था। उसकी दृष्टि सागर की चमकीली, तरंगित जल-राशि पर न थी। वह दृष्टि से परे किसी विशेष गम्भीर और विवेचनीय दृश्य को देख रहा था। उसका मुख समुद्र-तीर की उन हरी-भरी पर्वत-श्रेणियों की ओर था, और उनके बीच में छिपते सूर्य को वह मानो स्थिर होकर देख रहा था। उसकी ठुड्डी उसके कन्धे पर धरी थी। कभी-कभी उसके हृदय से लम्बी श्वास निकलती और उसके होंठ फड़क जाते थे।

इसके निकट ही एक और मूर्ति चुपचाप पाषाण-प्रतिमा की भांति बैठी थी, जिसपर एकाएक दृष्टि ही नहीं पड़ती थी। उसके वस्त्र भी पूर्ववर्णित पुरुषों के समान थे। परन्तु उसका रंग नवीन केले के पत्ते के समान था। उसके सिर पर एक पीत वस्त्र बंधा था, पर उसके बीच से उसके घुंघराले और चमकीले काले बाल चमक रहे थे। उसके नेत्र शुक्र नक्षत्र की भांति स्वच्छ और चंचल थे। उसका अरुण अधर और अनिंद्य सुन्दर मुख-मण्डल सुधावर्ती चन्द्र की स्पर्धा कर रहा था। वास्तव में वह पुरुष नहीं, बालिका थी। वह पीछे की ओर दृष्टि किए उन क्षण-क्षण में दूर होती उपत्यका और पर्वत-श्रेणियों को करुण और डबडबाई आंखों से देख रही थी, मानो वह उन चिरपरिचित स्थलों को सदैव के लिए त्याग रही थी। मानो उन पर्वतों के निकट उसका घर था, जहां वह बड़ी हुई, खेली। वह वहां से कभी पृथक् न हुई, और आज जा रही थी सुदूर अज्ञात देश को, जहां से लौटने की आशा ही न थी।

यह युवक और युवतीससागरा पृथ्वी के चक्रवर्ती सम्राट् मगधपति प्रियदर्शी अशोक के पुत्र महाभट्टारकपादीय महाकुमार महेन्द्र और महाराजकुमारी संघमित्रा थे, और उनके साथी बौद्ध भिक्षु। ये दोनों धर्मात्मा, त्यागी, राजसंतति—आचार्य उपगुप्त की इच्छा से सुदूर सागरवर्ती सिंहलद्वीप में भिक्षुवृत्ति ग्रहण कर बौद्ध-धर्म का प्रचार करने जा रहे थे। महाराजकुमारी के दक्षिण हाथ में बोधि-वृक्ष की टहनी थी।

आकाश का प्रकाश और रंग धुल गया, और धीरे-धीरे अन्धकार ने चारों ओर से पृथ्वी को घेर लिया। बारहों मनुष्य चुपचाप अपना काम मुस्तैदी से कर रहे थे। क्वचित् ही कोई शब्द उनके मुख से निकलता हो, कदाचित् वे भी अपने स्वामी की भांति भविष्य की चिंता में मग्न थे। इसके सिवा उस अचल एकनिष्ठ व्यक्ति के

साथ बातचीत करना सरल न था।

अन्ततः पीछे का भू-भाग शीघ्र ही गम्भीर अन्धकार में छिप गया। कुमारी संघमित्रा ने एक लम्बी सांस खींचकर उधर से आंखें फेर लीं। एक बार बहन-भाई दोनों की दृष्टि मिली। इसके बाद महाकुमार ने उसकी ओर से दृष्टि फेर ली।

एक व्यक्ति ने विनम्र स्वर में कहा—स्वामिन्! क्या आप बहुत ही शोकातुर हैं? दूसरा व्यक्ति बीच में ही बोल उठा :

'क्यों नहीं, हम अपने पीछे जिन वनस्थली और दृश्यों को छोड़ आए हैं, अब उन्हें फिर देखने की इस जीवन में क्या आशा है? और, अब आज जिन मनुष्यों से मिलने को हम जा रहे हैं उनका हमें कुछ भी परिचय नहीं है। उनमें कौन हमारा सगा है? केवल अन्तरात्मा की एक बलवती आवाज़ से प्रेरित होकर हम वहां जा रहे हैं। आचार्य की आज्ञा के विरुद्ध हममें कौन निषेध कर सकता था।'

एक और व्यक्ति बोल उठा। उसकी आंखें चमकीली और चेहरा भरा हुआ एवं सुन्दर था। उसने कहा—जब तुम इस प्रकार खिन्न हो तब वहां चल ही क्यों रहे हो? अब भी लौटने का समय है। वह मुस्कराया। महाकुमार महेन्द्र ने मुस्कराकर मधुर स्वर से कहा—भाइयो! जब मैंने इस यात्रा का संकल्प किया था, तब तुमने क्यों मेरे साथ चलने और भले-बुरे में साथ देने का इतना हठ किया था? ऐसी क्या आपत्ति थी?

एक ने धीमे स्वर में उत्तर दिया—स्वामिन्! हम आपको प्यार करते थे।

दूसरे ने मन्द हास्य से कहा—वाह! यह खूब जवाब दिया! मैं स्वामी को प्यार करता हूं, इसलिए उसकी जो आज्ञा होगी वह मानूंगा; जहां वह लिवा जाएगा, वहां जाऊंगा!—फिर गम्भीरतापूर्वक कहा—और मैं समझता हूं कि मैं उन अपरिचित मनुष्यों को भी प्यार करता हूं जो इस असीम समुद्र के उस पार रहते हैं।

यह कहकर उसने उस अन्धकारावृत दक्षिण दिशा की ओर उंगली उठाई, जहां शून्य भय के सिवा कुछ दीखता न था। उसने फिर कहा—जो आत्मा के गहन विषयों से अनभिज्ञ है, जो तथागत के सिद्धान्तों को नहीं जान पाए हैं, जो दुःख में मग्न अबोध संसारी हैं, उन्हें मैं प्यार करता हूं। तथागत की आज्ञा है कि उनपर अगाध करुणा करनी चाहिए। मेरा हृदय उनके प्रेम से ओतप्रोत है। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि वे हमें बुला रहे हैं, चिरकाल से बुला रहे हैं। आह! उन्हें हमारी

अत्यन्त आवश्यकता है। वे भवसागर में डूब रहे हैं, चूंकि तथागत की ज्ञान-गरिमा से वे अज्ञात हैं। हम उन्हें अक्षय प्रकाश दिखाने जा रहे हैं। निस्सन्देह हमें कठिनाइयों और आपत्तियों का सामना करना पड़ेगा। हमारे पास रक्षा की कोई सामग्री नहीं और शस्त्र भी नहीं। फिर भी अहिंसा का महामोहास्त्र तो हमारे हाथ है जो अन्त में सबसे अधिक शक्तिशाली है।

यह धीमी और गम्भीर आवाज़ उस अन्धकार को भेदन करके सब साथियों के कानों में पड़ी। मानो सुन्दर पर्वत-श्रेणियों से टकराकर हठात् उनके कानों में घुस गई हो। बारहों मनुष्यों में सन्नाटा छा गया, और सबने सिर झुका लिए। इन शब्दों की चमत्कारिक, मोहिनी शक्ति से सभी मोहित हो गए।

दो घंटे व्यतीत हो गए। तरणी जल-तरंगों से आन्दोलित होती हुई उड़ी चली जा रही थी। राजनन्दिनी ने मौन भंग किया। कहा—भाई, क्या मैं अकेली उस द्वीप की समस्त स्त्रियों को श्रेष्ठ धर्म सिखा सकूंगी?

महाराजकुमार ने मृदुल स्वर में कहा—आर्या संघमित्रा! यहां तुम्हारा भाई कौन है? क्या तथागत ने नहीं कहा है कि सभी सद्धर्मी भिक्षुगण हैं?

'फिर भी महाभट्टारकपादीय महाराजकुमार.........।'

'भिक्षु न कहीं का महाराज है, न महाराजकुमार।'

'अच्छा भिक्षुश्रेष्ठ! क्या मैं वहां की स्त्रियों के उद्धार में अकेली समर्थ होऊंगी?'

'क्या तथागत अकेले न थे? उन्होंने जंबु महाद्वीप में कैसे क्रांति कर दी है!'

'किन्तु भिक्षुवर! मैं अबला स्त्री......'

'तथागत की ओतप्रोत आत्मा का क्या तुम्हारे हृदय में बल नहीं?'

संघमित्रा ध्यान मग्न हो गई।

एक मनुष्य बीच में ही बोल उठा—क्या हम लोग तीर के निकट आ गए हैं? समुद्र की लहरें चट्टानों से टकरा रही हैं।

महाकुमार ने चिन्तित स्वर में कहा—अवश्य ही हम मार्ग भटक गए हैं, और निकट ही कोई जल-गर्भस्थ चट्टान है। आप लोग सावधानी से तरणी का संचालन करें।—इतना कहकर उसने एक दृष्टि चारों ओर डाली।

क्षणभर बाद ही तरणी चट्टान से जा टकराई। कुमारी संघमित्रा औंधे मुंह गिर पड़ी, और समस्त सामग्री अस्त-व्यस्त हो गई। कुमार ने देखा, चट्टान जल से

ऊपर है। वे उसपर कूद पड़े। खड़े होकर उन्होंने अनन्त जल-राशि को चारों ओर देखा। इसके बाद उन्होंने साथियों से संकेत करके, नीचे बुलाकर कहा—हमें यहीं रात काटनी होगी। प्रातःकाल क्या होता है, यह देखा जाएगा। सबने वहीं फलाहार किया, और उस ऊबड़-खाबड़, उजाड़ और सुनसान, क्षुद्र चट्टानों पर वे चौदह व्यक्ति बिना किसी छांह के अपनी-अपनी बांहों का तकिया लगाकर सो रहे।

प्रातःकाल सूर्य की सुनहरी किरणें फैल रही थीं। समुद्र की उज्ज्वल फेन-राशि उनकी प्रभा एक अनिर्वचनीय सौंदर्य की सृष्टि कर रही थी। समुद्र शान्त था, जलचर जन्तु जहां-तहां सिर निकाले, निश्शंक, स्वच्छ वायु में, श्वास ले रहे थे। कुछ दूर पर छोटे-छोटे पक्षी मन्द कलरव करते उड़ रहे थे; वे नेत्र और कर्ण दोनों को ही सुखद थे।

महाकुमारी आर्या संघमित्रा चट्टान पर चढ़कर, सुदूर पूर्व दिशा में आंख गाड़कर कुछ देख रही थीं। महाराजकुमार ने उसके निकट पहुंचकर कहा—आर्या संघमित्रा, क्या देख रही हैं?

संघमित्रा के होंठ कंपित हुए। उसने संयत होकर, विनम्र और मृदु स्वर में, कहा—भिक्षुवर! जिस पृथ्वी को हमने छोड़ा है, वह यहीं सम्मुख तो है। पर ऐसा प्रतीत होता है मानो युग व्यतीत हो गया और माता पृथ्वी के दूसरे छोर पर हम आ गए। सोचिए, अभी हमें और भी आगे, अज्ञात प्रदेश को जाना है। क्या वहां हम ठहरकर सद्धर्म-प्रचार कर सकेंगे? देखो, प्रियजनों की दृष्टियां हमें बुला रही हैं, यह मैं स्पष्ट देख रही हूं। उसने अपना हाथ दूरस्थ पहाड़ियों की धुंधली छाया की तरफ फैला दिया, जहां पृथ्वी और आकाश मिलते दीख रहे थे। इसके बाद उसने महाकुमार की ओर मुड़कर कहा—भाई, नहीं-नहीं, भिक्षुराज! चलो लौट चलें। घर लौट चलें। सद्धर्म-प्रचार का अभी वहां बहुत क्षेत्र है।

महाकुमार ने कुमारी के और भी निकट आकर उसके सिर पर अपना शुभ हस्त रखा, और मन्द-मन्द स्वर में गम्भीर मुद्रा से कहा—शांतं पापम् आर्या संघमित्रा! शांतं पापम्। महाकुमारी वहीं बैठकर नीचे दृष्टि किए रोने लगी।

कुमारी की वाणी गद्गद हो गई थी। उसने कहा—आर्या! हमने जिस महाव्रत की दीक्षा ली है, उसे प्राण रहते पूर्ण करना हमारा कर्तव्य है। सोचो, हम असाधारण व्यक्ति हैं। हमारे पिता चक्रवर्ती सम्राट् हैं। मैं इस महाराज्य का उत्तराधिकारी हूं। मैं जहां भिक्षाटन करने जा रहा हूं, कदाचित् उसका राजा

करद होकर मेरे पास भेंट लेकर आता। परन्तु मैं उस प्रदेश की गली-गली में एक-एक ग्रास अन्न मांगूंगा, और बदले में सद्धर्म का पवित्र रत्न उन्हें दूंगा। क्या यह मेरे लिए और तुम्हारे लिए भी आर्या संघमित्रा, अलभ्य कीर्ति और सौभाग्य की बात नहीं? क्या तथागत प्रभु को छोड़कर और भी किसी सद्धर्मी ने ऐसा किया था? प्रभु की स्पर्धा करने का सौभाग्य तो भूत और भविष्य में आर्या संघमित्रा! हमी दोनों जीवों को प्राप्त होगा; तुम्हें मुझसे भी अधिक, क्योंकि सम्राट् की कन्या होकर भिक्षुणी होना स्त्री-जाति में तुम्हारी समता नहीं रखता। आर्या! इस सौभाग्य की अपेक्षा क्या राजवैभव अति प्रिय है? सोचो! यह अधम शरीर और अनित्य जीवन जगत् के असंख्य प्राणियों का कैसा नष्ट हो रहा है। परन्तु हमें उसकी महाप्रतिष्ठा करने का कैसा सुयोग मिला है, कदाचित् भविष्य-काल में सहस्रों वर्षों तक, हम लोगों की स्मृति श्रद्धा और सम्मानसहित जीवित रहेगी।

इतना कहकर महाकुमार मौन हुए। कुमारी धीरे-धीरे उनके चरणों में झुक गई। उसने अपराधिनी शिष्या की भांति प्रथम बार सहोदर भाई से मानो भ्रातृ-सम्बन्ध त्यागकर अपनी मानसिक दुर्बलता के लिए करबद्ध हो क्षमा-याचना की, और महाकुमार ने कर्मठ भिक्षु की भांति उसका सिर स्पर्श करके कहा—कल्याण!

इसके बाद ही नौका तैयार हुई, और वह फिर लहरों की ताल पर नाचने लगी। बारहों साथी निस्तब्ध-से समुद्र की उत्तुंग तरंगों में मानो उस क्षुद्र तरणी को घुसाए लिए जा रहे थे। एक दिन और एक रात्रि की अविरल यात्रा के बाद समुद्र-तट दिखाई दिया। उस समय धीरे-धीरे सूर्य डूब रहा था, और उसका रक्त-प्रतिबिंब जल में आन्दोलित हो रहा था। महाकुमारी ने सूर्य की ओर देखा और मन ही मन कहा—सूर्यदेव! अभी उस चिर-परिचित प्रभात में मैं एक अविकसित अरविंद-कली थी। तुम्हारी स्वर्ण-किरण के सुखद स्पर्श से पुलकित होकर खिल पड़ी। मैं अपनी समस्त पंखुड़ियों से खिलकर दिनभर निर्लज्ज की भांति तुम्हें देखती रही। हाय! किन्तु तुम कितनी उपेक्षा से जा रहे हो! जाते हो तो जाओ, मैं अपना समस्त सौरभ तुम्हारे चरणों में लुटा चुकी हूं। अब सूखकर रज-कण में मिल जाना ही मेरी चरम गति है।

उसने अति अप्रकट भाव से अस्तंगत सूर्य को प्रणाम किया, और टप से एक बूंद आंसू उसके गोद में रखे बोधि-वृक्ष पर टपक पड़ा।

तट आ गया, और महाकुमार गम्भीर मुद्रा से उसपर कूद गए। उसके बाद उन्होंने मुस्कराते हुए महाकुमारी को संकेत करके कहा—आर्या संघमित्रा! आओ, हम अभीष्ट स्थान पर पहुंच गए। इस क्षण से यह तट निर्वाण-तट के नाम से पुकारा जाए।

सबने चुपचाप सिर झुका लिया। तेरहों आत्माएं एक के बाद दूसरी, उस अपरिचित किनारे पर सदैव के लिए उतर पड़ीं, और प्रार्थना के लिए रेत में घुटनों के बल धरती में झुक गईं!

वह राजवंशीय भिक्षु उस स्थान पर समुद्र-तट से और थोड़ा आगे बढ़कर ठहर गया। उसके तेरहों साथी उसके अनुगत थे। उन्होंने उस बोधि-वृक्ष की वहां स्थापना की। पत्थर और गारा इकट्ठा करके उन्होंने विहार बनाना शुरू किया। धीरे-धीरे भवन-निर्माण होने लगे, और आसपास की अर्ध सभ्य जातियों में उसकी ख्याति होने लगी। झुंड के झुंड स्त्री-पुरुष इस सुन्दर, सभ्य, विनम्र तपस्वी के दर्शन करने को, उसका धर्म-संदेश और प्रेममय भाषण सुनने को आने लगे। इस पुरुष-रत्न के सतेज स्वर, बलिष्ठ शरीर, निरालस्य स्वभाव, आनन्दमय और संतोषपूर्ण जीवन, दयालु प्रकृति ने उन सहस्रों अपरिचितों के हृदयों को जीत लिया। वे उसे प्राणों से अधिक प्यार करने लगे। उसके ज़ोरदार भाषण में वे महाप्रभु बुद्ध की आत्मा को प्रत्यक्ष देखने लगे। उनके पुराने अन्धविश्वास—उपासनाएं—कुरीतियां इतनी शीघ्रता से दूर हो गईं, और वे अपने इस प्यारे गुरु के इतने पक्के अनुगामी हो गए कि उस प्रान्तभर में उसकी चर्चा होने लगी, और शीघ्र ही वह स्थान टापूभर में विख्यात हो गया, और वहां नित्य मेला रहने लगा।

धीरे-धीरे वह वन्य प्रदेश विशाल अट्टालिकाओं से परिपूर्ण हो गया। अब वह एक बड़ा विहार था, और उसमें केवल वही चौदह भिक्षु न थे, किन्तु सैकड़ों भिक्षु-भिक्षुणियां थीं जो जगत् के सभी स्वार्थों और सुखों को त्यागकर पवित्र और त्यागपूर्ण जीवन व्यतीत करने लगी थीं।

समुद्र की लहरें किनारों पर टकराकर उनके परिजनों की आनन्द-ध्वनि की प्रतिध्वनि करती थीं, और उन महात्मा राजपुत्र और राजपुत्री एवं उनके साहसी साथियों को उत्साह दिलाती थीं, और अब उनके मन में कोई खेद न था। वे सब

अति प्रफुल्लित हो अपने कर्तव्य का पालन कर रहे थे।

भिक्षुराज ध्यानावस्थित बैठे कुछ विचार कर रहे थे। आर्या संघमित्रा बोधि-वृक्ष को सींच रही थीं। एक भिक्षु ने बद्धांजलि होकर कहा—स्वामिन्, सिंघल द्वीप के स्वामी महाराज तिष्य ने आपको राजधानी अनुराधपुर ले जाने के लिए राजकीय रथ और वाहन तथा कुछ भेंट भी भेजी है; स्वामी की क्या आज्ञा है?

युवक भिक्षुराज ने बाहर आकर देखा, सौ हाथी, सौ रथ और दो सहस्र पदातिक एवं बहुत-से भिन्न-भिन्न यान हैं। साथ में राजकीय छत्र-चंवर भी हैं। महानायक ने सम्मुख आ, नतजानु हो प्रणाम कर कहा—प्रभु, प्रसन्न हों। महाराजा की विनय है कि पवित्र स्वामी अनुचरों सहित राजभवन को सुशोभित करें। वाहन सेवा में उपस्थित हैं। कुछ तुच्छ भेंट भी है।

यह कहकर महानायक ने संकेत किया—तत्काल सौ दास विविध सामग्री से भरे स्वर्ण-थाल ले, सम्मुख रखकर पीछे हट गए। उनमें बड़े-बड़े मोतियों की मालाएं, रत्नाभरण, बहुमूल्य रेशमी वस्त्र, सुन्दर शिल्प की वस्तुएं, बहुमूल्य मदिराएं और विविध सामग्री थी। महाकुमार ने देखा, एक क्षीण हास्य-रेखा उनके होठों में आई, और उन्होंने महानायक की ओर देखकर गम्भीर वाणी से कहा—महानायक, भिक्षुओं के भिक्षा-पात्र में कहां यह राजसामग्री समाएगी; मेरे जैसे भिक्षुओं को इसकी आवश्यकता ही क्या? इन्हें लौटा ले जाओ। महाराज तिष्य से कहना, हम स्वयं राजधानी में आते हैं।

भिक्षुराज ने यह कहा, और उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना ही अपने आसन पर आ बैठे। राज्यवर्ग अपनी तमाम सामग्री सहित वापस लौट गया।

राजधानी वहां से दूर थी, और यात्रा की कोई भी सुविधा न थी, परन्तु उस टापू के राजा तिष्य को सद्धर्म का संदेश सुनाना परमावश्यक था। यदि ऐसा हो जाए, तो टापू भर में बौद्ध सिद्धान्तों की व्याप्ति हो जाए।

महाकुमार ने तैयारी की। कुमार और बारहों साथी तैयार हो गए। और, वह दुर्गम यात्रा प्रारम्भ की गई। प्रत्येक के कन्धे पर उनकी आवश्यक सामग्री और हाथ में भिक्षा-पात्र था। वे चलते ही चले गए। पर्वतों की चोटियों पर चढ़े। घने, हिंस्र जंतुओं से परिपूर्ण वन में घुसे। वृक्ष और जल से रहित रेगिस्तान में होकर गुजरे। अनेक भयंकर गार और ऊबड़-खाबड़ जंगल, पेचीली जंगली

नदियां उन्हें पार करनी पड़ीं। अन्त में राजधानी निकट आई।

राजा अन्ध-विश्वासों से परिपूर्ण वातावरण में था। सैकड़ों जादूगर, मूर्ख, पाखण्डी उसे घेरे रहते थे। उन्होंने उसे भयभीत कर दिया कि यदि वह उन भिक्षु-यात्रियों से मिलेगा तो उसपर दैवी कोप होगा, और वह तत्काल मर जाएगा। परन्तु उसने सुन रखा था कि आगन्तुक चक्रवर्ती सम्राट् अशोक के पुत्र और पुत्री हैं। उसमें सम्राट् को अप्रसन्न करने की सामर्थ्य न थी। उसने उनके स्वागत का बहुत अधिक आयोजन किया। उसे खयाल था, महाराजकुमार के साथ बहुत-सी सेना-सामग्री, सवारी आदि होंगी। पर जब उसने उन्हें पीत वस्त्र पहने, पृथ्वी पर दृष्टि दिए, नंगे पैरों धीरे-धीरे पैदल अग्रसर होते और महाराजकुमारी तथा अन्य अनुचरों को उसी भांति अनुगत होते देखा तो वह आश्चर्यचकित रह गया, और जब उसने सुना कि उसकी समस्त भेंट और सवारी उन्होंने लौटा दी है, और वे इसी भांति पैदल भयानक यात्रा करके आए हैं तो वह विमूढ़ हो गया। कुमार पर उसकी भक्ति बढ़ गई। उसने देखा, राजकुमार के सिर पर मुकुट और कानों में कुंडल न थे, पर मुख कांति से देदीप्यमान हो रहा था। उन्होंने हाथ उठाकर राजा को 'कल्याण' का आशीर्वाद दिया। राजा हठात् उठकर महाकुमार के चरणों में गिर गया। समस्त दरबार के सम्भ्रांत पुरुष भी भूमि पर लोटने लगे।

महाकुमार ने प्रबोध देना प्रारम्भ किया, और कहा :

'राजन्, क्षमा हमारा शस्त्र और दया हमारी सेना है। हम इसी राजबल से पृथ्वी की शक्तियों को विजय करते हैं। हम सद्धर्म का प्रकाश जीवों के हृदयों में प्रज्वलित करते फिरते हैं। हम त्याग, तप, दया और सद्भावना से आत्मा का शृंगार करते हैं। हे राजन्! हम अपनी ये सब विभूतियां आपको देने आए हैं। आप इन्हें ग्रहण करके कृतकृत्य हूजिए।'

राजा धीरे-धीरे पृथ्वी से उठा। उसने कहा—और केवल यही विभूतियां ही आपके इस प्रशस्त जीवन का कारण हैं ?

राजकुमार ने स्थिर गम्भीर होकर कहा—हां।

'इन्हींको पाकर आपने साम्राज्य का दुर्लभ अधिकार तुच्छ समझकर त्याग दिया ?'

'हां, राजन्!'

'और इन्हींको पाकर आप भिक्षावृत्ति में सुखी हैं, पैदल यात्रा के कष्टों को

सहन करते हैं, तपस्वी जीवन से शरीर को कष्ट देने पर भी प्रफुल्लित हैं ।'

'हां, इन्हींको पाकर ।'

'हे स्वामी ! वे महाविभूतियां मुझे दीजिए, मैं आपका शरणागत हूं ।'

भिक्षुराज ने एक पद आगे बढ़कर कहा—राजन्, सावधान होकर बैठो ।

राजा घुटनों के बल धरती पर बैठ गया । उसका मस्तक युवक भिक्षुराज के चरणों में झुक रहा था ।

महाकुमार ने कमंडलु से पवित्र जल निकालकर राजा के स्वर्ण-खचित राज-मुकुट पर छिड़क दिया, और कहा :

'कहो—

बुद्धं शरणं गच्छामि ।

संघं शरणं गच्छामि ।

सत्यं शरणं गच्छामि ।'

राजा ने अनुकरण किया । तब भिक्षुराज ने अपने शुभ हस्त राजा के मस्तक पर रखकर कहा—राजन् उठो । तुम्हारा कल्याण हो गया । तुम प्रियदर्शी सम्राट् के प्यारे सद्धर्मी और तथागत के अनुगामी हुए ।

इसके बाद राजा की ओर देखे बिना ही भिक्षु-श्रेष्ठ अपने निवास को लौट गए ।

उनके लिए राजमहल में एक विशाल भवन निर्माण कराया गया । और उसमें श्वेत चंदोवा ताना गया था, जो पुष्पों से सजाया गया था । महाकुमार ने वहां बैठकर अपने साथियों के साथ भोजन किया और तीन बार राजपरिवार को उप-देश दिया । उसी समय तिष्य के लघु भ्राता की पत्नी अनुला ने अपनी पांच सौ सखियों के साथ सद्धर्म ग्रहण किया ।

संध्या का समय हुआ, और भिक्षु-मण्डली पर्वत की ओर जाने को उद्यत हुई । महाराज तिष्य ने आकर विनीत भाव के कहा—पर्वत बहुत दूर है, और अति विलम्ब हो गया है, सूर्य छिप रहा है, अतः कृपा कर नन्दन उपवन में ही विश्राम करें ।

महाकुमार ने उत्तर दिया—राजन्, नगर में और उसके निकट वास करना भिक्षु का धर्म नहीं ।

'तब प्रभु महामेघ-उपवन में विश्राम करें; वह राजधानी से न बहुत दूर है,

न निकट ही।'

महाकुमार सहमत हुए, और महामेघ-उपवन में उनका आसन जमा।

दूसरे दिन तिष्य पुष्प-भेंट लेकर सेवा में उपस्थित हुआ। महाकुमार ने स्थान के प्रति संतोष प्रकट किया। तिष्य ने प्रार्थना की कि वह उपवन भिक्षु-संघ की भेंट समझा जाए, और वहां विहार की स्थापना की जाए।

भिक्षुराज ने महाराज तिष्य की यह प्रार्थना स्वीकार कर ली। महामेघ-अनुष्ठान के तेरहवें दिन, आषाढ़-शुक्ल त्रयोदशी को महाकुमार महेन्द्र, राजा का फिर आतिथ्य ग्रहण करके, अनुराधपुर के पूर्वी द्वार से मिस्सक-पर्वत को लौट चले। महाराज ने यह सुना तो वह अनुला और सिंहालियों को साथ लेकर, रथ पर बैठकर दौड़ा।

महेन्द्र और भिक्षु तालाब में स्नान करके पर्वत पर चढ़ने को उद्यत खड़े थे। राजवर्ग को देखकर महाकुमार ने कहा—राजन्, इस असह्य ग्रीष्म में तुमने क्यों कष्ट किया?

'स्वामिन्, आपका वियोग हमें सह्य नहीं।'

'अधीर होने का काम नहीं। हम लोग वर्षा-ऋतु में वर्षा-अनुष्ठान के लिए यहां पर्वत पर आए हैं, और वर्षा-ऋतु यहीं पर व्यतीत करेंगे।'

महाराज तिष्य ने तत्काल कर्मचारियों को लगाकर ६८ गुफाएं वहां निर्माण करा दीं, और भिक्षुगण वहां चतुर्मास व्यतीत करने को ठहर गए। एक दिन तिष्य ने कहा:

'स्वामिन्, यह बड़े खेद का विषय है कि लंका में भगवान् बुद्ध का ऐसा कोई स्मारक नहीं जहां उसकी भेंट-पूजा चढ़ाकर विधिवत् अर्चना की जाए। यदि प्रभु स्मारक के योग्य कोई वस्तु प्राप्त कर सकें तो उसकी प्रतिष्ठा करके उसपर स्तूप बनवा दिया जाए।'

महाकुमार महेन्द्र ने विचार कर सुमन भिक्षु को लंका-नरेश का यह संदेश लेकर सम्राट् प्रियदर्शी अशोक की सेवा में भारतवर्ष भेज दिया।

उसने सम्राट् से महाकुमार और महाकुमारी के पवित्र जीवन का उल्लेख करके कहा—चक्रवर्ती की जय हो! महाकुमार और लंका-नरेश की इच्छा है कि लंका में तथागत के शरीर का कुछ अंश प्रतिष्ठित किया जाए, और उसकी पूजा होती रहे।

अशोक ने महाबुद्ध के गले की एक अस्थि का टुकड़ा उसे देकर विदा किया।

महाकुमार उस अस्थि-खंड को लेकर फिर महामेघ-उपवन में आए। वहां राजा अपने राजकीय हाथी पर छत्र लगाए स्वागत के लिए उपस्थित था।

उसने अस्थि-खंड को सिर पर धारण किया, और बड़ी धूम-धाम से उसकी स्थापना की। उस अवसर पर तीस सहस्र सिंहालियों ने बौद्ध धर्म ग्रहण किया।

द्वीप भर में बौद्ध धर्म का साम्राज्य था। सम्राट् ने अपने पवित्र पुत्र और पुत्री को तीन सौ पिटारे भरकर धर्म ग्रंथ उपहार भेजे थे। उन्हें वहां के निवासियों को उन्होंने अध्ययन कराया। एक बच्चा भी अब बौद्धों की विभूति से वंचित न था।

भिक्षुराज महाकुमार महेन्द्र कठिन परिश्रम और तपश्चर्या करने से बहुत दुर्बल हो गए थे। वृद्धावस्था ने उनके शरीर को जीर्ण कर दिया था। महाराज-कुमारी ने द्वीप की स्त्रियों को पवित्र धर्म में रंग दिया था। दोनों पवित्र आत्माएं अपने जीवनों को धैर्य से गला चुके थे। उन्हें वहां रहते युग बीत गया था। एक दिन भिक्षुराज महेन्द्र ने कुमारी संघमित्रा से कहा :

'आर्या संघमित्रा ! मेरा शरीर अब बहुत जर्जर हो गया है। अब इस शरीर का अन्त होगा। यह तो शरीर का धर्म है। तुम प्राण रहते अपना कर्तव्य पूर्ण किए जाना।'

उसके मुख पर सन्तोष के हास्य की रेखा थी।

उसी रात्रि को एक अनुचर ने, जो कुमार के निकट ही सोता था, देखा कि उनका आसन खाली है। वह तत्काल उठकर चिल्लाने लगा—हे प्रभु ! हे प्रभु ! समुद्र की लहरें किनारों पर टकराकर उस पार के मित्रों की आनन्द-ध्वनि ला रही थीं। अनुचर ने देखा, महाकुमार भिक्षुराज बोधि-वृक्ष को आलिंगन किए पड़े हैं। उनके नेत्र निमीलित हैं। अनुचर लपककर चरणों में लोट गया। लोग जाग गए और वहीं को आ रहे थे। इस भीड़ को देखकर कुमार मुस्कराए, सबको आशीर्वाद देने को उन्होंने हाथ उठाया, पर वह दुर्बलता के कारण गिर गया। धीरे-धीरे उनका शरीर भी गिर गया। अनुचर ने उठाकर देखा तो वह शरीर निर्जीव था। उस स्निग्ध चन्द्रमा की चांदनी में, उस पवित्र बोधि-वृक्ष के नीचे वह त्यागी राज-पुत्र, ससागरा पृथ्वी का एकमात्र उत्तराधिकारी धरती पर निश्चिन्त होकर अटूट

सुख-नींद सो रहा था, और भक्तों में जो-जो सुनते थे, एकत्र होते जाते थे, और चार आंसू बहाते थे।

वह आश्विन मास के कृष्णपक्ष की अष्टमी थी, जब भिक्षुराज महेंद्र ने जीवन समाप्त किया। उस समय यह महापुरुष अपने भिक्षु-जीवन का साठवां वर्ष मना रहा था, उसकी आयु अस्सी वर्ष की थी। उसने अड़तालीस वर्ष तक लंका में बौद्ध धर्म का प्रचार किया।

उस समय महाराज तिष्य को मरे आठ वर्ष बीत चुके थे। उसके छोटे भाई उत्तिय ने, जो अब राजा था, जब इस महापुरुष की मृत्यु का संवाद सुना तो वह बालक की तरह रोता और बिलखता हुआ उस पवित्र पुरुष के गुण-गान करता दौड़ा।

राजा की आज्ञा से भिक्षुराज का शव सुगन्धित तैल में रखकर एक सुनहरे बक्स में बन्द कर और अनेक सुगन्धित मसालों से भर दिया गया। फिर वह एक सुनहरे शकट पर, बड़े जुलूस के साथ, अनुराधपुर लाया गया। समस्त द्वीप के अधिवासियों और सैनिकों ने एकत्र होकर इस महाभिक्षुराज के प्रति अपनी श्रद्धांजलि भेंट की।

राजधानी की गलियों से होता हुआ जुलूस अन्त में पनहंबमाल के विहार में जाकर रुका, जहां वह शव सात दिन रखा रहा। राजा की आज्ञा से विहार से पचीस मील तक चारों ओर का प्रदेश तोरण, ध्वजा, पताका और फूल-पत्तों से सजाया गया।

इसके बाद शव चन्दन की चिता पर रखा गया और राजा ने अपने हाथ से उसमें आग लगाई।

जब चिता जल चुकी तो राजा ने राख का आधा भाग चैत्य-पर्वत पर, महिंतेल में ले जाकर गाड़ दिया, और शेष आधा समस्त विहारों और प्रमुख स्थानों में गाड़ने को भेज दिया।

इस प्रकार अब से बाईस सौ वर्ष पूर्व वह महापुरुष असाधारण रीति से जन्मा, जिया और मरा। लंका द्वीप को इस महापुरुष ने जो लाभ प्रदान किया, वह असाधारण था। उसने यहां की भाषा, साहित्य और जीवन में एक नवीन सभ्यता की

स्फूर्ति पैदा कर दी थी, और कला-कौशल में उत्क्रांति मचा दी थी। यह सब इस द्वीप के लिए एक चिरस्थायी वरदान था।

आज भी वर्ष के प्रत्येक दिन और विशेषकर पौष की पूर्णिमा को अनेकों तीर्थ-यात्री मींहितेल पर चढ़ते दिखाई देते हैं, और प्राचीन कथाओं के आधार पर इस महापुरुष से सम्बन्ध रखने वाले प्रत्येक स्थान की यात्रा करके श्रद्धांजलि भेंट करते हैं।

जिस स्थान पर महाकुमार का शव-दाह हुआ था, वह स्थान अब भी 'इसी भूमांगन' अर्थात् 'पवित्र भूमि' कहाता है, और तब से अब तक उस स्थान के इर्द-गिर्द पचीस मील के घेरे में जो पुरुष मरता है, यहीं अन्तिम संस्कार के लिए लाया जाता है।

इस राजभिक्षु ने जिन-जिन गुफाओं में निवास किया था, वे सभी महेंद्र गुफा कहाती हैं। अब भी चट्टान में कटी हुई एक छोटी गुफा को 'महेंद्र की शय्या' के नाम से पुकारते हैं। पहाड़ी के दूसरी ओर 'महेंद्र-कुण्ड' का भग्नावशेष है, जिसे देखकर कहा जा सकता है कि उसपर न जाने कितना बुद्धि-बल और धन खर्च किया गया होगा।

क्या भारत के यात्री इस महान् राजभिक्षु की लीला-भूमि को देखने की कभी इच्छा करते हैं ?

आचार्य उपगुप्त

यह कहानी सन् १९२८ में लिखी गई थी। इसमें सम्राट् अशोक का कलिंग-विजय के पश्चात् भाव-परिवर्तन का अंतरंग रेखाचित्र है। कहानी में भाव-व्यंजना, तथ्य और ध्वनि सभी कुछ कल्पना और सत्य के मिश्रण से व्यक्त की गई है। यह कहना कठिन है कि कहानी में तथ्य-वैशिष्ट्य है या भाव-वैशिष्ट्य। परन्तु यह कहानी-कला की दृष्टि से लेखक की तत्कालीन रचना का उत्तम नमूना है। यह कहानी आठ मास में पूरी हुई थी।

सन्ध्या हो चुकी थी, सूर्य अस्त हो गया था, पर पश्चिम दिशा में अभी लाल आभा शेष थी। पूर्व-दक्षिण कोण से जो प्रधान राजमार्ग मथुरा को जाता है, उस-पर तीन यात्री धीरे-धीरे आगे बढ़ रहे थे। यात्री बहुत दूर से आ रहे थे और वे अत्यन्त क्लान्त और थकित थे। उनमें एक वृद्ध था, दो युवक। उन दोनों में भी एक अतिकिशोर वयस्क सुकुमार बालक था, जिसकी आयु कठिनता से चौदह की होगी। मध्यवर्ती युवक ने वृद्ध को सम्बोधित करके पूछा—लल्ल ! मथुरा तो आ गई, आशा है, अब विश्राम मिलेगा। परन्तु लल्ल ! क्या तुम्हें आशा है कि श्रेष्ठिवर हमें आश्रय देंगे ? वे हमें पहचान सकेंगे, और हमारा भेद गुप्त रख सकेंगे ?

'अवश्य ही ऐसा होगा, श्रेष्ठि धनगुप्त महाराज के परम मित्र, अनुगृहीत और सेवक हैं।'

किशोर वयस्क बालक ने अतिशय क्लान्त होकर कहा—महानायक ! अब और कितना चलना पड़ेगा ? मुझसे तो एक पग भी और चलना कठिन है। देखो, मेरे पैर क्षत-विक्षत हो गए हैं।

लल्ल ने क्षणभर रुककर, पीछे फिर एक बालक को देखा, उसके ओष्ठ कम्पित हुए और नेत्रों में एक कण अश्रु-बिन्दु आकर गिर गया। पर उसने किञ्चित् हंस-कर कहा—अब तो आ गए, थोड़ा धैर्य और !

'अब और नहीं'—कहकर बालक वहीं सड़क पर बैठ गया। दूसरे युवक ने

प्यार से उसका हाथ पकड़कर कहा—यहां मार्ग में देर करने से लाभ ! सूर्य छिप गया है, कहीं द्वार बन्द हो गए तो बाहर ही रात काटनी होगी और वन्य पशु फिर लल्ल को सोने न देंगे ।

बालक फिर चला । लल्ल आगे बढ़ा । नगर के दक्षिण द्वार पर नगर-रक्षक रात्रि के लिए नवीन प्रहरियों की गिनती कर रहा था । तीनों यात्रियों ने चुपचाप द्वार में प्रवेश किया । किसीने इन तीन यात्रियों की ओर ध्यान नहीं दिया । लल्ल ने विनीत भाव से युवक से कहा—यदि आज्ञा हो तो रात किसी अतिथिशाला में काट ली जाए, फिर प्रातःकाल श्रेष्ठिवर का घर ढूंढ़ लिया जाएगा । अब इस समय कहां भटका जाएगा । इतना कह उसने एक दृष्टि किशोर बालक पर फेंकी और युवक की आज्ञा की प्रतीक्षा में खड़ा रहा । युवक ने कहा—यही उचित है लल्ल ! चलो अतिथिशाला में ही रात्रि व्यतीत करें ।

तीनों यात्री नगर के जन-पथ पर आगे बढ़े । .

'श्रेष्ठिवर धनगुप्त का घर क्या यही है ?'

'यही है श्रीमान् ! आपका कहां से पधारना हुआ है ? आइए, भीतर आइए, घर को पवित्र कीजिए ।'

लल्ल से जब एक परम सुन्दर युवक ने अति नम्रतापूर्वक ये शब्द कहे, तब लल्ल आंखें फाड़-फाड़कर उस युवक और सामने के एक साधारण घर को देखने लगे ।

'अवश्य ही भ्रम हुआ है महोदय ! क्या आप महाश्रेष्ठि धनगुप्त को जानते हैं ?'

'श्रीमान्, यह दास उनका पुत्र है ।'

'आप ! श्रेष्ठि धनगुप्त के पुत्र ! और यह उनका घर ! आपका शुभ नाम ?'

'सेवक का नाम उपगुप्त है ।'

'उपगुप्त, उपगुप्त ! ओह ! सचमुच आप·········परन्तु श्रेष्ठिवर कहां हैं ?'

'पूज्य पिता जी का स्वर्गवास हुए आठ वर्ष हो गए ।'

'स्वर्गवास !'—लल्ल ने मुंह फैला दिया ।

'श्रीमान् अवश्य ही पितृ-चरणों के बन्धु हैं । मेरा प्रणाम स्वीकार कीजिए ।'

'उपगुप्त श्रेष्ठिवर !'—इतना कहकर लल्ल ने युवक को दौड़कर भुज-पाश

में बांध लिया। कुछ ठहरकर लल्ल बोले—समझा ! पिता के बाद लक्ष्मी ने भी उसके पुत्र को त्याग दिया ! वाह रे कराल काल ! जिसके नव-व्यापार से समुद्र पटा रहता था और यवन, चीन तक जिसकी हुण्डी चलती थी, उसका यह पुत्र नंगे पांव खड़ा राज-मार्ग पर अतिथि का सत्कार कर रहा है, और जहां द्वार पर सेना और हाथियों की पंक्ति रहती थी, वहां यह घर है !' यह कहकर लल्ल रोने लगे। एक बार उन्होंने फिर युवक को छाती से लगा लिया।

उपगुप्त ने धैर्य से पूछा—आर्य ! परिचय देकर कृतार्थ करें। यह तो मैं समझ गया, आर्य पितृ-तुल्य पूज्य हैं, आज मेरा जन्म इन चरणों की सेवा से कृतार्थ होगा।

'श्रेष्ठिवर उपगुप्त ! ईश्वर को धन्यवाद है कि श्रेष्ठिवर धनगुप्त का विनय, सौजन्य और अतिथि-सत्कार आपमें अवशिष्ट है, जो श्रेष्ठिवर की सब सम्पत्तियों में अमूल्य थी, परन्तु अब परिचय की आवश्यकता नहीं, ईश्वर आपका कल्याण करे !'

इतना कहकर लल्ल चलने को तैयार हुए। उपगुप्त ने कातर स्वर से कहा—आर्य ! क्या दरिद्रता के कारण दास को आप त्याग रहे हैं ? यह न होगा। श्रीमान् यदि मेरा आतिथ्य न स्वीकार करेंगे, तो मैं प्राण त्याग दूंगा। आर्य ! मैं कभी झूठ नहीं बोलता।

लल्ल क्षणभर स्तब्ध खड़े रहे। फिर उन्होंने कहा—श्रेष्ठिवर, मेरे साथ और भी दो व्यक्ति हैं, देखो वे सम्मुख खड़े हैं.........

'आह, आपने कहा नहीं.........' यह कहकर उपगुप्त उधर दौड़े।

लल्ल ने रोककर कहा—श्रेष्ठिवर, ठहरिए, निस्सन्देह हम लोग आपके पिता का आश्रय प्राप्त करने यहां आए थे। पर अब नहीं। श्रेष्ठिराज, हम लोग आपको विपत्ति और चिन्ता में नहीं डालेंगे। ईश्वर आपका कल्याण करे !

'तब आर्य ! मैं निश्चय प्राण-त्याग करूंगा।'

'नहीं महोदय ! आपका इस अवस्था में आतिथ्य स्वीकार न करने के कारण हैं। आप हमारे कारण विपत्ति में पड़ सकते हैं।'

'परन्तु महोदय ! मैं प्राण देकर भी हर्षित हूंगा। आर्य ! आज तक मैं अपने दारिद्र्य के लिए लज्जित नहीं हुआ। क्या अब श्रीमान् मुझे लज्जित करेंगे ?'

'नहीं, नहीं, श्रेष्ठिराज, बात कुछ और ही है। अच्छा तब मैं स्वामी से आज्ञा ले लूं !'

'मैं स्वयं ही उनके चरणों में प्रार्थना करूंगा।'—इतना कहकर उपगुप्त ने दूर खड़े दोनों युवकों के निकट जा, उनकी चरण-रज मस्तक पर लगाई।

लल्ल ने संक्षेप में सब कुछ कहकर घर में चलने का अनुरोध दिया।

आसन देकर, सबके बैठने पर उपगुप्त ने कहा—आर्य! अब अपना और इन पूज्यों का परिचय देकर कृतार्थ करें!

'श्रेष्ठिराज, ये कलिंगराज-महिषीपट्ट महारानी चन्द्रलेखा और ये महाराज-कुमारी शैला हैं। मगध के प्रतापी सम्राट् चण्डाशोक ने कलिंग का महाराज्य नष्ट कर डाला, एक लाख कलिंग-योद्धा रण-भूमि में काम आए हैं। महाराज युद्ध-भूमि से लौटे नहीं, न उनका शरीर प्राप्त हुआ है। महाराजकुमार हरिद्वार में स्वामी चिदानन्द के आश्रम में गुप्तवास कर रहे हैं। मैं महानायक भट्टारकपादीय लल्ल हूं। राज-परिवार घोर विपत्ति में पड़ गया, तब इन महिलाओं को लेकर मैं आपके पिता के आश्रय की इच्छा से चल पड़ा। धनगुप्त श्रेष्ठिराज को छोड़ और कौन इन राज अतिथियों को आश्रय दे सकता है? चण्डाशोक ने सर्वत्र चर छोड़े हैं। जो कोई राजपरिवार और कुमार जितेन्द्र को पकड़ा देगा, उसे दस सहस्र सुवर्ण-मुद्रा दी जावेगी। और जो कोई उस परिवार को आश्रय देगा उसे प्राण-दण्ड होगा। श्रेष्ठि-राज, इसीलिए हम आपकी इस दुरवस्था में आपको विपत्ति में नहीं डालना चाहते थे।'

उपगुप्त ने सब सुनकर कहा—राजमाता और राजपुत्री तथा आपके चरणों से यह घर पवित्र हुआ, अब आपकी सेवा से शरीर को धन्य करूंगा।

'परन्तु', लल्ल ने कहा, 'आप अपनी पत्नी तक से यह परिचय गुप्त रखेंगे और इनका पुरुष-परिचय ही देंगे।'

श्रेष्ठिवर ने स्वीकार किया।

अतिथियों के विश्राम की व्यवस्था करके उपगुप्त ने अपनी पत्नी से जाकर कहा—कुन्द! मेरे स्वर्गीय पिता के मित्र हमारे अतिथि हुए हैं, उनका आतिथ्य हमें जैसे बने करना होगा।

कुन्द ने कुण्ठित होकर कहा—परन्तु स्वामिन्! घर में तो कुछ भी सामग्री नहीं है, अतिथि खाएंगे क्या?

उपगुप्त चुपचाप पत्नी के मुंह की ओर देखने लगे। उन्होंने कहा—कुन्द!

क्या किसी भी तरह तुम व्यवस्था नहीं कर सकतीं ? क्या और कोई आभूषण नहीं है ?

'नहीं ।'

'तब कोई अनावश्यक पात्र बन्धक रख दिया जाए ।'

'यही होगा और उपाय क्या है ?'

उपगुप्त ने विकल होकर कहा—परन्तु कुन्द ! तुम्हीं इसकी व्यवस्था कर देना जिसमें हमारा नाम न प्रकट हो ।

कुन्द ने कुछ कहने को मुख खोला ही था कि द्वार से कुछ मनुष्यों ने श्रेष्ठि को पुकारा । श्रेष्ठि ने बाहर आकर देखा, आठ-दस राज-कर्मचारी हैं और साथ में है ऋणदाता महाजन ।

उसने कर्कश स्वर में कहा—श्रेष्ठि उपगुप्त ? हमारा चुकता पावना अभी चुकाओ अथवा बन्दीगृह में जाओ ।

श्रेष्ठिवर ने घबराकर विनयपूर्वक कहा—मित्र ! आप तो जानते ही हैं, मैं इस समय कितने कष्ट में हूं; फिर आज अभी मेरे घर में पूज्य अतिथि आए हैं । श्रेष्ठिवर, कुछ और धैर्य धारण कीजिए, वरना बड़ा अनर्थ होगा ।

ऋणदाता ने अवज्ञा से हंसकर कहा—मैं एसा मूर्ख नहीं । रकम भी छोटी नहीं । अब और धैर्य किस आशा पर ? दस सहस्र अभी दो, अन्यथा ये कर्मचारी तुम्हें बन्दी कर लेंगे ।

उपगुप्त ने विवश होकर कहा—तब मुझे कुछ क्षण का तो अवकाश दीजिए, मैं अपने अतिथियों और पत्नी की कुछ व्यवस्था कर दूं ।

प्रधान राज-कर्मचारी ने कुछ आगे बढ़कर कहा—महोदय ! इसके लिए हम लोग बाध्य नहीं । क्या आप कृपापूर्वक अभी वह देते हैं ?

'नहीं, धन अभी नहीं !'

'तब सैनिको, इन्हें बांध लो ।'

क्षणभर में सैनिकों ने श्रेष्ठि को बांध लिया । विवाद सुनकर लल्ल और राजकुमारी बाहर आ गए थे । कुन्द भी सब व्यापार देख रही थी । सभी विमूढ़-वत् खड़े रहे । वे लोग श्रेष्ठिवर को बांध ले चले । कुन्द पछाड़ खाकर धरती पर गिर पड़ी ।

राजकुमारी शैला ने लल्ल को बुलाकर धीरे से कहा—महानायक ! इस

विपन्नावस्था में हमें श्रेष्ठि और उनकी पत्नी की पूर्ण शुश्रूषा करनी होगी। राजकुमारी लल्ल से कुछ परामर्श करने लगी। कुमारी की बात सुनकर लल्ल ने चौंककर कहा—यह तो अत्यन्त भयानक है।

'चाहे जो कुछ भी हो।'

'नहीं, कुमारी! ऐसा न होने पाएगा।'

'यही होगा भयानक।'

'कुमारी, सोच लो, राजमाता इसे कदापि न स्वीकार करेंगी।'

'हम लोगों का कर्तव्य है कि उन्हें सहमत करें।'

'पर यह भारी दुस्साहस है।'

'मैंने उसे करने का निश्चय कर लिया है। श्रेष्ठिवर को छुड़ाने का और उपाय नहीं, जब वे उन्हें बांध रहे थे, उसी समय मेरे मन में यह विचार आया था।'

महानायक गम्भीर दुःख और विचार में मग्न हो गए।

घटना का विवरण सुनकर महारानी ने कहा—श्रेष्ठिवर को इस कष्ट से प्राण देकर भी मुक्त करना होगा महानायक!

राजकुमारी ने उतावली से कहा—माता, वह मैं करूंगी!

'तू क्या करेगी!'

महारानी ने बालिका को दृष्टि गाड़कर देखा।

'भैया से मेरी आकृति बिलकुल मिलती है, क्यों महानायक?'

'तब?'

'और पुरुष-वेश में मैं, भैया ही मालूम होती हूं—यह तुम बारम्बार कह चुकी हो।'

'हां, पर इससे क्या?'

'भैया को जीवित या मृत पकड़वाने वाले का पुरस्कार दस सहस्र है, इतना ही तो श्रेष्ठिवर को चाहिए? मैं अपने को भैया की जगह पकड़ाए देती हूं—उन रुपयों से श्रेष्ठिवर मुक्त हो जाएंगे।'

इतना कहकर शीला खिलखिलाकर हंस पड़ी।

रानी पर वज्र गिर पड़ा, वह घबराकर बोली—वाह, यह कैसी बात?

'क्यों?' कुमारी ने गम्भीर होकर कहा

'यह तेरा पागलपन है।'

'नहीं मां, मैंने सब बातें विचार ली हैं।'

'क्या विचार ली हैं ?'

'इस काम से दो बातें होंगी—एक तो श्रेष्ठि मुक्त होंगे, दूसरे भैया की खोज-जांच बन्द हो जाएगी और वे सुरक्षित रह सकेंगे।'

'परन्तु ये बर्बर सैनिक तेरा कैसी निर्दयता से घात करेंगे ? चक्रवर्ती तक जीवित भी पहुंच गई, तो वह शत्रु क्या तुझे छोड़ेगा ?'

न जाने क्यों चक्रवर्ती का नाम सुनकर शैला का मुख लाल हो आया। उसने कहा—माता ! चक्रवर्ती की आज्ञा जीवित पकड़ने ही की है। जीवित पकड़कर वे वध नहीं करेंगे, चक्रवर्ती के सम्मुख ले जाएंगे । वहां पहुंचकर मैं चक्रवर्ती से समझ लूंगी।

'न शैला, मैं तुझे इतना साहस न करने दूंगी । चलो, हम लोग अन्यत्र चलें।'

शैला ने आंखों में आंसू भरकर कहा—तब कलिंग राजपट्ट महिषी इतनी स्वार्थी हो गई कि जिसकी उदारता और आश्रय प्राप्त किया, उसे इस विपन्नावस्था में छोड़ जाएंगी ?

लल्ल अब तक चुप थे। वे बोले—माता ! शैला ही की बात रहे। विशिष्ट अवसरों पर विशिष्ट पुरुष अपना प्रताप और त्याग प्रकट करते हैं । शैला का त्याग इसके वंश के उपयुक्त है। जो हो, श्रेष्ठिवर को छुड़ाना ही उचित है।

'तब क्या और कोई उपाय उपयुक्त नहीं ?'

'नहीं।'

राजमाता गम्भीर चिन्ता में मग्न हुईं। शैला ने कहा—माता ! मैं कलिंग की राजकुमारी हूं, शस्त्र-विद्या और अश्वारोहण में कुशल हूं। पिताजी ने मुझे कुछ शिक्षा भी दी है, इस प्रकार मैं एक सम्राट् के सम्मुख जाकर स्वयं उसके इस पातक और अत्याचार के सम्बन्ध में पूछना चाहती हूं। इससे अवश्य हमारा कुछ कल्याण होगा।

अन्त में रानी ने सिर हिलाया। शैला ने कहा—तब महानायक ! तुम कुन्द से कह दो कि तुम्हारे घर में कलिंग का राजकुमार छिपा हुआ है, उसे पकड़ाकर श्रेष्ठि को छुड़ा दो।

लल्ल ने कहा—यह कर्तव्य मुझे पालन करना होगा ! राजकुमारी ! तुम स्वयं ही यह साहस करो।

राजकुमारी ने कहा—नहीं, तुम्हीं उससे कहो, जिससे उसपर भेद प्रकट न होने पाए।

लल्ल का प्रस्ताव सुनकर कुन्द भय, आश्चर्य और दुःख से विमूढ़ हो गई। उसने कहा—क्या कलिंग का राजकुमार !

'जी हां, वह युवक वही कलिंग-राजकुमार है, जिसके सिर का मूल्य दस सहस्र है। इतने में ही तो श्रेष्ठिवर छूट जाएंगे।'

'और मैं उन्हें पकड़ा दूं—अतिथि को जो मेरे पति के पूज्य नहीं, उनके स्वर्गीय पिता के पूज्य हैं ? वृद्ध महोदय, आपसे ऐसे नीच प्रस्ताव की आशा न थी। आप कदाचित् अपने ही स्वामी से विश्वासघात कर रहे हैं।'

'नहीं श्रेष्ठिवधु ? राजकुमार स्वयं यह इच्छा कर रहे हैं।'

'राजकुमार स्वयं इच्छा कर रहे हैं ?' कुन्द ने विमूढ़ होकर पूछा।

'जी हां, उन्हींका प्रस्ताव तो मैं लाया हूं।'

'तो कुमार की उदारता और त्याग धन्य है। उनके चरणों में मेरा प्रणाम कहिए। परन्तु यह अधर्म मुझसे न होगा। हे ईश्वर ! पवित्र अतिथि से विश्वास-घात करने की आप सम्मति दे रहे हैं !'

'विश्वासघात कैसे ?'

'नहीं-नहीं, कदापि नहीं।'

शैला ने निकट आकर कहा—देवी ! मेरी यह तुच्छ भेंट आपको स्वीकार करनी ही पड़ेगी। आप पतिप्राणा, साध्वी और धर्मात्मा हैं, आपका सौभाग्य अचल रहे। श्रेष्ठिवर महान् पुरुष हैं, मुझे प्रसन्नता होगी कि मेरा शरीर मेरे मित्र के काम आया।

कुन्द ने रोते-रोते कहा—राजकुमार ! ऐसी अधर्म की बात मुख से न निकालिए।

'अधर्म नहीं देवि ! मुझे तो स्वयं सम्राट् के निकट जाना ही है।'

'परन्तु मैं यह कुकृत्य न करूंगी।'

'तब श्रेष्ठिवर मुक्त कैसे होंगे ?'

'जैसी प्रभु की इच्छा होगी, वही होगा।'

'नहीं-नहीं, कदापि नहीं।'

'तब मुझे स्वयं यह कार्य करना होगा ?'

'नहीं, राजकुमार मुझे अधम न बनाइए !'

'देवि ! और कोई उपाय ही नहीं है, फिर यों मुक्त होने पर श्रेष्ठिवर कुछ न कुछ उपाय मुझे मुक्त करने का कर ही लेंगे, और यह तो मैं स्वयं कर रहा हूं। सोचिए तो, श्रेष्ठिवर को वहां कितना कष्ट और वेदना होगी !'

कुन्द व्यथित और खिन्न-सी कुमार की ओर देखती रही।

कुमारी ने कहा—लल्ल ! तब तुम यह सन्देश राजद्वार पर ले जाओ और नगराध्यक्ष को बुला लाओ।

लल्ल ने प्रस्थान किया। कुन्द ने बहुत बाधा दी। कुछ ही क्षण में सैनिकों-सहित नगराध्यक्ष ने आकर कुमारी को बांध लिया और दस तोड़े वहीं गिनकर उसे ले चले। कुन्द और महारानी दोनों पछाड़ खाकर गिर पड़ीं।

'किस महोदय ने इतनी कृपा की कुन्द ? धन्य है वह प्रभु ! परन्तु हां, अतिथियों का ठीक सत्कार तो हुआ ? ओह ! तुम्हारा मुख इतना सफेद क्यों हो रहा है ? कुन्द ! तुम इतनी दुःखी क्यों ? अरे ? रोने लगीं ?'

कुन्द बिना बोले पति के चरणों में गिरकर ज़ोर-ज़ोर से रोने लगी। उपगुप्त ने कहा—कुन्द ! अब इतना दुःख क्यों, तुम उस कृपालु मित्र का नाम तो बताओ। मैं तनिक उसे धन्यवाद दे आऊं।—कुन्द ने रोते-रोते सब घटना बयान कर दी।

मानो सहस्र बिच्छुओं ने दंश किया। उन्होंने तड़पकर कहा—क्या कहा ? कुमार को पकड़ाकर यह धन प्राप्त किया ?—कुन्द निरुत्तर रही।

'कुन्द ! कुन्द ! यह पातक तुमने किया ? मेरा जन्म, जीवन, यश, धर्म—सभी नष्ट किया। कुन्द ! तुम ऐसी थीं ? यह तो आशा न थी। हाय ! बड़ा अधर्म हुआ !' इतना कहकर श्रेष्ठिवर विकल हो, इधर से उधर टहलने लगे।

लल्ल ने धीरे-धीरे कक्ष में प्रवेश करके कहा—श्रेष्ठिवर ! कुमार ने स्वेच्छा से यह काम किया है, कुन्द का इसमें तनिक भी अपराध नहीं। ये तो अन्त तक सहमत न हुई थीं।

उपगुप्त ने रोते-रोते कहा—महानायक ! अब क्या होगा ? मैं कैसे इस पातक

से उऋण होऊंगा ? कैसे मैं अब प्राण देकर कुमार को लाऊं ? और आप जैसे विवेकी वृद्ध के रहते कैसे यह कुकर्म होने पाया ? कुन्द ! स्त्रियों से इसीलिए ज्ञानी पुरुष घृणा करते हैं, स्त्रियां इतनी तुच्छ हैं, इतनी स्वार्थी हैं ! हा-हा ! कुन्द ! तुम सब स्त्रियों में अधम रहीं—तुमने अपने स्वार्थ के—पति के स्नेह के लिए पवित्र अतिथि को······कहते-कहते श्रेष्ठिवर धरती पर गिर गए।

धीरे-धीरे रानी ने घर में प्रवेश करके कहा—श्रेष्ठिवर ! क्या आपको यह विश्वास नहीं होता कि हम तीनों में से किसीको इस घटना का दुःख नहीं ? फिर कुमार की तो यह इच्छा ही थी। वह वैसे भी सम्राट् की सेवा में जाता। इसके सिवा कुन्द किसी तरह अपमान की पात्री नहीं। जैसे आप धर्मात्मा, विनयी और महान् हैं, वैसी ही आपकी धर्मपत्नी भी हैं। श्रेष्ठिवर ! शोक त्यागकर अब यह उपाय सोचना चाहिए कि हमारा कर्तव्य क्या है।

उपगुप्त उठ बैठे। उन्होंने कहा—सोचिए। मैं किस प्रकार कुमार को ला सकता हूं ?

तीनों व्यक्तियों से सलाह हुई। अन्त में यही निर्णय हुआ कि उन सैनिकों के साथ, जो कुमार को ले जा रहे हैं, हम लोग भी राजधानी को चलें। वहां जैसा कुछ होगा, देखा जाएगा। यह निर्णय करके उपगुप्त ने कुन्द की ओर देखकर स्निग्ध स्वर में कहा—कुन्द ! आओ ! इन पूज्य अतिथियों के सम्मुख हम-तुम भी कुछ परामर्श कर लें ! यह तो तुमने देखा ही कि यह धन कितने अपमान और अधर्म की जड़ है। आओ ! हम मन, वचन, कर्म से इस धन का त्याग करें, मैंने श्रेष्ठि-पद त्यागा, मैं दरिद्रराज हुआ। आज से धनमात्र मेरे लिए लोष्ठवत् और तुम्हारे लिए भी कुन्द !

कुन्द ने चुपचाप स्वीकृति दी।

'अच्छा, अब आज से हम लोग न धन छुएंगे न धन से हमारा सम्बन्ध रहेगा, अब दूसरी बात सुनो ! यह घनिष्ठ सम्बन्ध भी—जैसा कि हमारे-तुम्हारे बीच है—दुःख और पाप का मूल है। देखो, इसी घटना ने कितने दुःख और पाप का प्रदर्शन कराया ? आओ, हम लोग इस सम्बन्ध का भी विच्छेद करें ! कुन्द ! आज से हम लोग पति-पत्नी नहीं। तुम्हारा कल्याण हो, तुम जगत् में विचरण करो, जगत् की सेवा करो। मैं कुमार को छुड़ाकर तब यह करूंगा।' इतना कहकर उपगुप्त उठे। कुन्द वज्राहत की तरह धरती पर गिर गई। उपगुप्त ने उधर देखा

भी नहीं। वे अति गम्भीर मुद्रा में घर से बाहर हुए।

ग्रीष्म की ज्वलन्त लू और उत्ताप की तनिक भी परवाह न करके सैनिक ने पर्वत की उपत्यका में घोड़ा छोड़ दिया था। आगे-आगे एक हरिण प्राण लेकर भाग रहा था। युवक सैनिक के धनुष पर बाण चढ़ा था। उसे उसने कान तक खींचकर मारा। बाण हरिण के पैरों में लगा। पर वह प्राण-संकट को समझकर गर्म-गर्म रुधिर-बिन्दु टपकाता आहत होकर उपत्यका के एक पार्श्व में भागकर छिप गया। हरिण को सम्मुख न देखकर सैनिक घोड़े से उतर पड़ा। वह रक्त-बिन्दु के चिह्न देखता-देखता आगे बढ़ा।

सम्मुख एक घने अश्वत्थ के वृक्ष के नीचे शीतल छाया में एक वृद्ध भिक्षु बैठा था। उसकी गोद में वही हरिण था। वह यत्न से उसके पैर से तीर निकालकर उसके घाव पर पट्टी बांध रहा था।

युवक ने वहां पहुंचकर क्रोध से कहा—तू कौन है, पाखण्डी ?

'तुम्हारा कल्याण हो !' वृद्ध भिक्षु ने सिर उठाकर कहा।

'पर तू है कौन ?'

'मैं भिक्षु हूं।'

'भिक्षु, तेरा यह साहस कि मेरे आखेट को हाथ लगा सके ? इसे अभी छोड़ दे !'

'क्यों ?'

'यह मेरा आखेट है !'

'यह तेरा किसलिए है ?'

'मैंने इसे मारा है !'

'मारने वाला किसीका स्वामी नहीं हुआ करता, शत्रु होता है; और शत्रु का कोई अधिकार नहीं होता। स्वामी होता है बनाने वाला। उसीका अधिकार भी होता है।'

'तू बड़ा धृष्ट प्रतीत होता है।'

'साधु के लिए विनय और धृष्टता क्या है ?'

'तब इसे छोड़ दे—यह मेरा शिकार है।'

'नहीं, यह मेरा आश्रित दीन पशु है।'

'इसे मैंने मारा है।'

'इसकी मैंने रक्षा की है।'

सैनिक का क्रोध और तेज मानो व्यर्थ जा रहा था। ऐसे धृष्ट प्रश्नोत्तर का उसे अभ्यास न था। परन्तु वृद्ध साधु का प्रभाव उसपर पड़ रहा था। उसने कहा—तू इसका क्या करेगा ?

'मैं इसे नीरोग करके छोड़ दूंगा, यह फिर आनन्द से विचरण करेगा।'

'तू अवश्य इसका मांस खाएगा। तू धूर्त है, मेरा आखेट हड़पना चाहता है।'

'युवक सैनिक ! शान्त हो; हिंसक से रक्षक बड़ा है। जो व्यक्ति एक कीड़ा भी नहीं बना सकता, वह इतने बड़े पशु को कैसे मारता है ? इसका उसे अधिकार क्या है ? हम लोग भक्षक नहीं, रक्षक हैं। निकट ही हमारा विहार है, वहां बहुत-से बौद्ध भिक्षु हैं, जो प्राणियों की सेवा-शुश्रूषा करते हैं। वहां रोगी जीव-जन्तु की चिकित्सा की जाती है और प्रेम और दया हमारा धर्म है।'

युवक चुपचाप खड़ा रहा। उसने कहा—मैं तेरा वह विहार देखूंगा।

वृद्ध ने चलने का आयोजन करके कहा—मेरे साथ आओ।—उसके पास और भी कई रोगी और घायल पशु थे। उन सबको उसने उठाया। सैनिक ने कहा—इतना भार तुम नहीं उठा सकते, लाओ यह हरिण मैं ले चलूं।

युवक का स्पर्श पाते ही हरिण छटपटाने लगा।

भिक्षु ने कहा—उसे मत छुओ। उसे तुमसे घृणा है।—भिक्षु ने उसे गोद में ले लिया। वह शिशु की तरह उसकी गोद में सो गया।

दोनों चले। युवक का गर्व भंग हुआ। वह सोचता जा रहा था, मैं समझता था पृथ्वीभर के राजमुकुट मेरे चरणों में गिरते हैं, और सभी मेरी प्रतिष्ठा करते और मुझसे भय खाते हैं। पर यह तुच्छ पशु भी मुझसे घृणा करता है ! इस वृद्ध भिक्षु में ऐसा क्या गुण है, जो यह मूक प्राणी भी इसपर विश्वास करता, प्रेम करता और आत्म-समर्पण करता है ! हाय ! मैं इतना अधम हूं ! एक बार उसने रक्त और धूल से भरे अपने वस्त्रों को देखा। एक गम्भीर श्वास ली और नीचा सिर किए साधु के पीछे-पीछे चला।

वन-प्रदेश के एक घने कुंज में वह विहार था। वहां पूर्ण शान्ति और आनन्द का राज्य था। उत्तप्त सूर्य की किरणें उस दुर्भेद्य वृक्ष-राशि को पार नहीं कर सकती

थीं। उस सघन छाया में बहुत-सी पर्ण-कुटियां बनी थीं, जहां भिन्न-भिन्न आयु के वीतराग बौद्ध साधु ज्ञान-चर्चा में मग्न थे। रोगी और घायल पशु और मनुष्यों की चिकित्सा हो रही थी। सहस्रों पशु-पक्षी निर्भय कलोलें कर रहे थे। वृद्ध के पहुंचते ही दो साधुओं ने दौड़कर वृद्ध का बोझ ले लिया और वे उसके उपचार में लगे। युवक सैनिक विमूढ़-सा खड़ा यह सब देख रहा था। ऐसी शान्ति और आनंद उसने अपने जीवन में नहीं देखा था। एक नई भावना उसके हृदय में उदय हो रही थी; वह कुछ सोच रहा था। एक नवीन तेज उसके नेत्रों में दीपित हो रहा था।

एक प्रचण्ड जय-घोष हुआ—महामोगली-पुत्र तिष्य की जय ! युवक ने दृष्टि उठाकर देखा—सम्मुख एक तेज-मूर्ति चली आ रही है। प्रशान्त मुख-मण्डल, गम्भीर गति, महान् व्यक्तित्व। युवक ने सोचा, यह क्या ! यही महाप्राण भगवान् मोगली-पुत्र तिष्य हैं, जिनके विषय में सुना गया है कि उनके दर्शन होना दुर्लभ है ? और जिसे एक बार उनके दर्शन हो जाते हैं, वह धन्य समझा जाता है ? युवक एकटक उस महान् शरीर को देखता रहा।

भगवान् तिष्य ने युवक के निकट आकर कहा—चक्रवर्ती सम्राट् की जय हो। —एक अतर्क्य शक्ति के प्रभाव से सम्राट् ने साधुवर के चरणों में सिर झुका दिया। भिक्षु-मण्डल अवाक् रह गया। भगवान् तिष्य ने कहा—सम्राट् इस वृद्ध भिक्षु ने अज्ञान से यदि कुछ अनाचार किया हो तो क्षमा करें। चक्रवर्ती से इसका परिचय नहीं।

सम्राट् ने कहा—प्रभो ! आज मैं कृतकृत्य हुआ। साम्राज्य के प्रचण्ड सम्मान और परिच्छद में मुझे ऐसी शान्ति नहीं मिली, जो आज मैं इस तपोवन में प्राप्त कर रहा हूं। भगवान् के दुर्लभ दर्शन पाकर मैं और कृतार्थ हुआ। प्रभो ! कलिंग के युद्ध में मैंने एक लक्ष प्राणियों का वध किया है। अब देखता हूं, वध करने से रक्षा करना श्रेष्ठ है। मैं समझता था कि पृथ्वी के महाराजा भी मेरा सम्मान करते हैं। परन्तु आज अधम प्राणी को घृणा करते देखकर मेरे मन में प्रबल आत्मग्लानि उदय हुई है। प्रभो, रक्षा करें। यह किंकर आपकी शरण है।

'सम्राट् !' भगवान् तिष्य ने कहा—आपकी धर्म में अभिरुचि हुई, यह बहुत शुभ हुआ। भगवान् बुद्ध ने भी इसी प्रकार अकस्मात् ज्ञान प्राप्त किया था। शक्ति-अधिकार द्वारा अधीनों को वश करने की अपेक्षा प्रेम और दया से प्राणिमात्र को जीतना श्रेयस्कर है। शरीर को अधीन करने की अपेक्षा आत्मा को वशीभूत कर

लेना सच्ची विजय है। आप पृथ्वी के चक्रवर्ती सम्राट् हैं; परन्तु जब आप पृथ्वी की आत्माओं को वशीभूत कर लेंगे तो आपकी अक्षय विजय होगी। आप अमर होंगे।

सम्राट् ने नतमस्तक होकर कहा—भगवन् ! मुझे सत् ज्ञान प्रदान कीजिए। मैं प्रेम और दया द्वारा प्राणियों की आत्मा को विजय करूंगा। क्षमा मेरा शस्त्र, दया मेरी नीति, और त्याग मेरा शासन होगा।

'तथास्तु, तब सम्राट्, आपका नाम 'चण्डाशोक' के स्थान पर 'देवानां प्रिय' प्रसिद्ध होगा। आपका कल्याण हो, आप आज से देवताओं के प्रिय हुए। कहें :

बुद्धं शरणं गच्छामि।
धम्मं शरणं गच्छामि।
संघं शरणं गच्छामि।'

सम्राट् ने पृथ्वी पर घुटने टेककर उपर्युक्त पंक्तियों को दुहराया। मोगली-पुत्र तिष्य ने पवित्र अभिसिंचन करके कहा—सम्राट् देवानां प्रिय अशोक की जय हो ! आइए सम्राट्, अब मैं आपको आपके आचार्य का परिचय कराऊंगा, जिनसे आपको गुरुवत् व्यवहार करना होगा, जो परम वीतराग, महान् धर्मात्मा और एकनिष्ठ महापुरुष हैं, जिनकी आत्मा में महान् बुद्ध का निवास है। वे सदैव आपके साथ रहकर आपको कल्याण का मार्ग बताएंगे और आपको सुमति की दीक्षा देंगे। उनके वचन का अनुसरण करके आप पृथ्वी पर और स्वर्ग में अक्षय कीर्ति प्राप्त करेंगे।

आचार्य तिष्य इतना कहकर पीछे को मुड़े। एक घने कुंज में छोटी-सी कुटिया के द्वार पर जाकर पुकारा—आचार्य उपगुप्त ! सम्राट् आपकी सेवा में उपस्थित हैं !

आचार्य उपगुप्त—वही श्रेष्ठिराज उपगुप्त—पीत परिधान किए, मुण्डित-शिर, विनम्रमुख कुटी से बाहर आए। सम्राट् अशोक ने पृथ्वी पर गिरकर उन्हें प्रणाम किया और कहा—आचार्य ! मुझे सन्मार्ग बताइए।

आचार्य उपगुप्त की मुद्रा भङ्ग न हुई, न उन्होंने दृष्टि उठाई। उनके नेत्रों से अश्रुधारा प्रवाहित हुई। आचार्य तिष्य ने कहा—आचार्य ! सम्राट् आपके तत्त्वावधान में पृथ्वी पर धर्म-विस्तार करेंगे। आप ही सम्राट् को धर्म बताने के योग्य हैं, आप सम्राट् का प्रणाम ग्रहण कीजिए।

आचार्य उपगुप्त ने अवरुद्ध कण्ठ से कहा—देवानां प्रिय सम्राट् की जय हो! परन्तु आचार्य! सम्राट् का भार मुझपर न डालें, सम्राट्! आचार्य तिष्य के रहते और कौन सम्राट् को सन्मार्ग बताएगा?

भगवान् तिष्य ने कहा—आचार्य! आत्मा पर सदैव अज्ञान का आवरण रहता है और इस आवरण का भेद न करने के लिए एक रहस्यविद् की आवश्यकता है। आप ही वह रहस्यविद् हैं। आचार्य! अपने शिष्य का कल्याण-चिन्तन कीजिए—मेरा कार्य समाप्त हुआ। यह कहकर मोगली-पुत्र तिष्य अन्तर्धान हुए। सम्राट् और उपगुप्त क्षणभर विमूढ़ रहे। अब आचार्य उपगुप्त ने नेत्र उठाकर कहा—चक्रवर्ती, भीतर कुटी में पधारकर कृतार्थ करें।

दोनों महान् आत्माएं कुटी में प्रविष्ट हुईं।

संध्या का समय था। सम्राट् वाटिका में धीरे-धीरे गम्भीर मुख-मुद्रा किए टहल रहे थे। समस्त भारत के चक्रवर्ती सम्राट् के सम्मुख ऐसी गहन समस्या न आई थी। उनका चिन्तनीय विषय था कलिंगराज का दुर्धर्ष अपघात। वे सोच रहे थे, मैंने एक हरे-भरे सुखी राज्य का अकारण विध्वंस किया। कलिंगराज न जाने कहां कैसे मारे गए। उनके युवराज बन्दी होकर आ रहे हैं। उनका परिवार न जाने किस दुर्दशा में है। कैसे मैं इस पातक से उऋण होऊंगा।

सम्राट् के ज्ञान-चक्षु खुल गए थे और उन्हें महान् दया-धर्म का तत्त्व प्रकट हो गया था। वे सोच रहे थे कि किस प्रकार इस दुष्कर्म का प्रतिशोध किया जाए।

हठात् एक दण्डधर ने निकट आकर अभिनन्दन करके कहा—देव, कलिंग-राजकुमार को लेकर महानायक आए हैं।

अशोक ने उत्फुल्ल होकर कहा—उन्हें अभी यहां ले आओ। क्षणभर ही में कलिंग राजकुमार को लेकर महानायक ने सम्राट् का अभिवादन करके राजकुमार से कहा—कुमार! सम्राट् का अभिवादन करो।

कुमार ने हंसकर कहा—महानायक, आपकी आज्ञा की आवश्यकता नहीं, आपके सौजन्य के लिए, जो आपने मार्गभर में मुझपर किया, मैं आभारी हूं। अब मैं, सम्राट् के प्रति कैसा व्यवहार करना चाहिए, स्वयं सोच-समझ लूंगा। आप सम्राट् की आज्ञा लेकर जा सकते हैं।

महानायक ने विमूढ़ होकर राजकुमार के इस प्रगल्भ भाषण को सुना। वह खड़ा रह गया। सम्राट् भी चकित हुए। उन्होंने दृष्टि गाड़कर राजकुमार की मुख-मुद्रा देखी।

कुमार ने एक कटाक्षपात करके मुख नीचा कर लिया और कहा—सम्राट्, महानायक को आज्ञा प्रदान करें तो मैं सम्राट् का अभिवादन करूं।

सम्राट् ने महानायक को जाने का संकेत किया और कुमार के निकट आकर कहा—कलिंग-राजकुमार! अभिनन्दन की आवश्यकता नहीं। मैंने तुम्हारे राज्य और परिवार के साथ बड़ा अन्याय और अत्याचार किया है। मैंने तुम्हें इसलिए बुलाया है कि अब तुम्हारे पूज्य पिता का पता लगाना कठिन है। राजकुमार, तुम चाहो तो मुझे उस अपराध का दण्ड दो। परन्तु मैं चाहता हूं कि तुम मुझे अपना शत्रु न समझो। प्रिय राजकुमार! क्या मेरा अनुरोध रखोगे?—छद्मवेशी राजकुमार कण्टकित होकर दो कदम पीछे हट गए। उन्होंने धरती पर घुटने टेककर सम्राट् का अभिवादन किया और कहा—चक्रवर्ती की जय हो। राजा राजाओं से युद्ध करते हैं, जय-विजय एक पक्ष की होती ही है। सम्राट् को विजित राज्य के बन्दी राजपुत्र के प्रति इतने शिष्टाचार की आवश्यकता नहीं।

'नहीं राजकुमार! अकारण ही मैंने उस समृद्धिशाली राज्य को भ्रष्ट किया और अब अकारण ही कुमार! तुम्हारे प्रति मेरे हृदय में अपूर्व प्रेम उमड़ रहा है—यह क्या बात है? अच्छा अपना हाथ तो मुझे दो प्रिय।' परम प्रिय कुमार ने पीछे हटकर कहा—नहीं श्रीमान्! यह सेवक इस सम्मान के योग्य नहीं। श्रीमान् को भी शत्रु-पुत्र का इतना सत्कार करना उचित नहीं।

'शत्रु-पुत्र नहीं, कुमार! मैंने निश्चय किया है कि मैं तुम्हारे पिता का राज्य तुम्हें युद्ध-क्षति सहित लौटा दूंगा, इसके सिवा और भी जो मांगोगे, मैं दूंगा।'

'सम्राट् क्या सत्य ही प्रतिज्ञाबद्ध होते हैं?'

'हां-हां, प्रिय कुमार! मैं वचन देता हूं।'

'सम्राट्, मुझे मेरी मांगी वस्तु देंगे?'

'अवश्य! चाहे वह सिंहासन ही क्यों न हो?'

'सिंहासन तक ही, बस?' छद्मी कुमार ने कटाक्षपात किया।

'प्राण भी, शरीर भी! प्यारे कुमार! तुम्हारी चितवन कितनी प्यारी है! लाओ, अपना हाथ तो दो।'

'तब आपके प्राण और शरीर मेरे हुए? श्रीमान्, फिर विचार लें। यह तुच्छ हाथ उपस्थित है।'

सम्राट् उसे पकड़ने के लिए लपके। आचार्य उपगुप्त ने उच्च स्वर से पुकारकर कहा, 'चक्रवर्ती? तनिक धैर्य!' चक्रवर्ती ने देखा: आचार्य दो व्यक्तियों के साथ आ रहे हैं। दोनों व्यक्ति दूर खड़े रह गए। आचार्य आगे बढ़े। सम्राट् ने आगे बढ़कर आचार्य के चरणों में प्रणाम करके कहा—आचार्य! कलिंग-राजकुमार जितेन्द्र उपस्थित हैं। मैंने इन्हें उनका राज्य और युद्ध-क्षति दे दी है, अपना शरीर और प्राण भी दिया। ये इसके स्वामी हैं। कुमार! आचार्य को प्रणाम करो!

छद्मवेशी कुमार आगे बढ़कर आंखें फाड़-फाड़कर आचार्य उपगुप्त की ओर देखने लगे। आचार्य ने आगे बढ़कर कुमार के मस्तक पर हाथ धरकर कहा—कल्याण! कल्याण!

छद्मवेशी राजकुमार के होंठ फड़ककर रह गए। उसके मुख से अस्पष्ट स्वर में निकला—श्रेष्ठि···व···र।—आचार्य ने सम्राट् के निकट पहुंचकर मधुर मुस्कान के साथ कहा—चक्रवर्ती ने बड़ी ही बुद्धिमत्ता से अपना प्राण और शरीर सुपात्र को दिया। हां, अब आप उस पवित्र हाथ का ग्रहण करिए! इतना कहकर आचार्य ने सम्राट् का हाथ पकड़ लिया।

सम्राट् चकित हुए। कुमार का मुख लाल हो गया। वे दो कदम पीछे हट गए। आचार्य ने कहा—कलिंग-महाराजकुमारी शैला! तुमने स्वयं ही यह क्रय-विक्रय किया है, अब संकोच क्यों?

सम्राट् के मुख से निकल गया—क्या कहा? कलिंग-महाराजकुमारी शैला देवी! आचार्य, आप क्या कहते हैं!

आचार्य ने उधर ध्यान न देकर कहा—महाराजकुमारी, अब अपना छलवेश त्याग दीजिए और तनिक निकट आइए! इतना कहकर उन्होंने कुमारी का हाथ सम्राट् के हाथों में पकड़ा दिया।

दोनों का हृदय-स्पन्दन क्षणभर को रुक गया। कुछ शान्त होने पर सम्राट् ने कहा—आचार्य! कुकर्म का यह सुफल क्यों!

आचार्य ने कहा—सम्राट्! यह सुकर्म का फल है। देखिए, वह कलिंगराज और महाराजकुमार खड़े हैं, उनका स्वागत कीजिए।

सम्राट् दौड़कर कलिंगराज के पैरों में झुके। कलिंग-महाराज महेन्द्र ने उठाकर उन्हें छाती से लगा लिया। दोनों महानृपति तन-मन से एक हो गए। इसके बाद आचार्य ने कुमारी के त्याग और साहस का सारा विवरण कह सुनाया। पिता ने पुत्री को छाती से लगाया और अपने हाथ से उसे सम्राट् के हाथों में सौंपकर कहा—सम्राट्! यद्यपि आप इसे भी मेरे देने से पूर्व ही ले चुके, परन्तु फिर भी मेरे हाथ से एक बार ग्रहण कीजिए।

सम्राट् ने नतमस्तक होकर कुमारी का पाणि-ग्रहण किया। साम्राज्य भर में आनन्दोत्सव की धूम हो गई। कलिंगराज वनवासी हुए और महाराजकुमार जितेन्द्र कलिंग की गद्दी पर विराजित हुए।

बर्मा रोड

द्वितीय महायुद्ध में अद्भुत कारनामे किए गए। उसीमें बर्मा रोड का निर्माण भी एक अदम्य साहस और लगन की कहानी है। लेखक ने उसीकी एक झांकी इसमें प्रकट की है।

सिंगापुर का पतन हो चुका था और बर्मा पर जापानी फौजें छा गई थीं। अंग्रेज हिन्दुस्तानी सेना को जापानियों के मुंह में डाल बर्मा से भाग खड़े हुए थे। जापानियों ने हिन्दुस्तानी सिपाहियों को कैद न कर कूटनीति का परिचय दिया था। उन्होंने उनकी प्रथम आज़ाद सेना जनरल मोहनसिंह की कमान में खड़ी कर दी थी। उसकी योजना यह थी कि अब भारत के मुख पर जो विकट युद्ध होने वाला था, उसमें इन हिन्दुस्तानियों को देशभक्ति का जुनून चढ़ाकर झोंक दिया जाए—और पीछे से मारकर भारत पर जापान का सूर्यमुखी झण्डा फहरा दिया जाए। इम्फाल के विकट वन, दुर्गम घाटियां और दुर्दम्य नद युद्धस्थलियां बने हुए थे—इसी स्थान पर यूरोप और एशिया के भाग्यों के फैसले होने वाले थे। अंग्रेज और अमेरिकन सेनाओं के दल-बादल आसाम पर छाए हुए थे। अनगिनत युद्ध-सामग्री मनीपुर के नाकों पर एकत्रित थी। तोपों की गड़गड़ाहट, बमों की धुआं-धार और मशीनगनों की मार से वन-पर्वत कम्पायमान हो रहे थे।

भारत-बर्मा राजपथ बनना अत्यन्त आवश्यक था। बिना ऐसा हुए बर्मा का उद्धार तथा भारत का बचाव सम्भव न था अंग्रेजों की जो सेनाएं इन जंगलों में छिपी थीं, वे बेसरो-सामान जापानियों का शिकार हो रही थीं। यह एंग्लो-अमेरिकन सैनिक-समूह के जीवन-मरण का प्रश्न था। विश्व की राजनीति केवल भारत-बर्मा रोड पर आ अटकी थी।

फील्डमार्शल जनरल···ने लेफ्टिनेंट जनरल वुड को इस फ्रण्ट पर तैनात करते हुए हुक्म दिया था कि प्रत्येक मूल्य पर भारत-बर्मा रोड तैयार होनी ही चाहिए। लेफ्टिनेंट जनरल वुड ने इस कठिन अभियान को स्वीकार किया था। पर यहां

आकर विकट परिस्थिति देख उनके भी छक्के छूट गए। जापानी बमबाज़ों ने सड़क के धुर्रे उड़ा दिए थे। वे चील की भांति सड़क पर मंडराते और फड़ाफड़ बम गिराते रहते थे। इन बमों से जो गढ़े सड़क में हो गए थे—वे गढ़े न थे, कुएं थे। बड़े से बड़ा साहसिक सैनिक भी उधर कदम रखना मौत के मुंह में जाना समझता था। कोई भी ठेकेदार इस काम में सहायता करने को तैयार न था। पहाड़ी असभ्य नागा लोगों की मार शत्रुओं से भी विकट थी। वे अवसर पाते ही मानो धरती फोड़कर निकल आते और खाने-पीने का तथा अन्य सब सामान लूटपाट जैसे धरती ही में समा जाते थे।

जनरल वुड बड़े जीवट के आदमी थे। मिस्र और एलेग्जेण्ड्रिया के मोर्चों पर इन्होंने बड़ी-बड़ी विजयें प्राप्त की थीं। कठिन से कठिन परिस्थिति में भी वे घबराने वाले न थे। वर्मा फ्रण्ट पर आते ही उन्होंने परिस्थिति का ठीक-ठीक अध्ययन किया। एक दिन वे घूमते हुए सन्ध्या-समय आसाम के पुलिस कमिश्नर सर वाल्टर के बंगले पर जा धमके। प्रधान सेनापति को इस प्रकार एकाएक अपने घर आया देख पुलिस कमिश्नर अवाक् रह गए। उन्होंने साधारण शिष्टाचार के बाद उनसे कहा—कहिए, मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूं?

जनरल वुड ने कहा—आपको तकलीफ देने ही मैं आया हूं। मैंने सुना है, इस इलाके के डाकू बड़े ज़बर्दस्त हैं; उनसे बड़े-बड़े अफसर थर्राते हैं—वे बड़े जीवट के पुरुष होते हैं।

'ओह, उनका क्या, वे पहाड़ के चूहे हैं, न जाने कहां से धरती फोड़कर निकल आते हैं और फिर एकाएक वहीं समा जाते हैं। जितनी पुलिस-सेना उन्हें पकड़ने भेजी गई, लौटकर नहीं आई।'

'क्या आप बता सकते हैं कि इन डाकुओं का सरगना कौन है?'

'क्यों नहीं? उसका नाम जंगबहादुर है। वह चालीस साल का अधेड़ आदमी है। पर उसकी एक-एक नस लोहे की बनी है। उसके सिर का मोल चालीस हज़ार रुपया है।'

'क्या उसके खिलाफ कोई संगीन जुर्म है?'

'एक जुर्म है? खून, डाके, कत्ल के दर्जनों मुकदमे उसके विरुद्ध हैं। उसके हज़ारों साथी सारे पार्वत्य-प्रदेश में फैले हुए हैं। कोई सरकारी रसद, खज़ाना

उसके भय से इस इलाके में सही-सलामत नहीं जा पाता। सौ-दो सौ की गारद की तो वह कोई हकीकत ही नहीं समझता।'

'लेकिन क्या आप यह जानते हैं कि वह रहता कहां है?'

'यह तो कोई नहीं जानता। वह सब जगह है और कहीं भी नहीं है।'

जनरल वुड हंस पड़े। उन्होंने कहा—गोया वह खुदावन्द करीम है।

सर वाल्टर भी हंस पड़े, बोले—ऐसा भी कहा जाए तो अत्युक्ति नहीं।

'पर मुझे उससे काम है। मैं उससे मिलना चाहता हूं।'

'यह तो एक प्रकार से असम्भव है।'

'उसे तो आप किसी तरह सम्भव बनाइए।'

बहुत सोचने के बाद सर वाल्टर ने कहा—एक रास्ता है।

'कहिए।'

'उसके दल के एक आदमी को हाल ही में फांसी की सजा हुई है। वह भी एक भारी डाकू है और बड़ी खून-खराबी के बाद पकड़ा गया था। उसके खिलाफ भी बहुत मुकदमे थे। यदि अभी तक उसे फांसी न हुई हो और आप उससे बात उगलवा सकें, तो यह आपके बूते की बात है। हमें तो उसने एक शब्द भी नहीं बताया।'

'उसे कब फांसी होने वाली थी?'

'यह मुझे याद नहीं है। परन्तु आप जेल से इसका पता पा सकते हैं।'

'धन्यवाद सर वाल्टर, मैंने आपका काफी समय लिया।'

जनरल वुड हाथ मिलाकर वहां से चल दिए। जेल को फोन करने पर ज्ञात हुआ कि उसे कल प्रातःकाल फांसी पर लटकाया जाने वाला है। पर जनरल ने व्याघात करके उसकी फांसी अनिश्चित काल के लिए मुल्तवी करा दी। फिर उन्होंने फोन पर गवर्नर से बात करके उसका माफीनामा तुरन्त मंगवा लिया। माफीनामा जेब में डालकर वे जेल में उस डाकू के पास मिलने गए। जेलर को माफीनामा दिखाया और कहा—उसे मैं अपने साथ ले जाऊंगा। पर आप उससे कुछ मत कहिए। मुझे उसके सेल में भेज दीजिए।

सेल में जाकर देखा—एक तरुण गठीले शरीर का गौरवर्ण पुरुष कम्बल पर चुपचाप पड़ा है। जेलर से उसका नाम उन्होंने जान लिया था। नाम था सफदर।

वह आसाम का मुसलमान था। जनरल ने सेल का द्वार खुलवाकर भीतर प्रवेश करते हुए कहा—गुड मार्निंग मिस्टर सफदर। कैसे हो?—मिलाने को हाथ बढ़ाया।

'खूब अच्छा हूं।' सफदर ने हाथ मिलाते हुए हंसकर कहा, 'आजकल चाय, टोस्ट, गोश्त सब मिलता है। ये साले जेलवाले समझते हैं फांसी का पंछी कै घड़ी का। खूब खिलाते-पिलाते हैं मेरे बेटे, शायद इसलिए कि उसकी गर्दन खूब मोटी हो जाए जिससे फांसी का फन्दा ढीला न पड़ जाए।' इतना कहकर सफदर खूब हंसा। जनरल भी जोर से हंस पड़े। वे उसके कम्बल पर बैठ गए।

एक उच्चकोटि के अंग्रेज अफसर की ऐसी आत्मीयता देखकर सफदर आश्चर्य-चकित रह गया। उसने कहा—आप कौन हैं, यह मैं नहीं जानता, मगर आपका खुश अखलाक देखकर मैं हैरान हूं। आपके तमगे और फीतों से आप कोई फौजी अफसर मालूम होते हैं। मगर जो हों, कहिए मैं आपकी क्या खिदमत बजा ला सकता हूं?

'यह बात तो फुर्सत में होगी मिस्टर सफदर, अभी तुम मेरे साथ चलो।'

'कहां?'

'मेरे बंगले पर।'

'यह कैसे हो सकता है? मैं तो फांसी पाया हुआ कैदी हूं।'

'तुम्हारे जैसे बहादुर आदमी को मैं फांसी पर लटकते नहीं देख सकता। मैं जनरल वुड बर्मा मोर्चे का मार्शल हूं। मैंने गवर्नर से सिफारिश करके तुम्हें माफी दिलवाई है। तुम आजाद हो।'

सफदर के मुंह से बात नहीं निकली। वह टुकुर-टुकुर साहब के मुख की ओर देखने लगा।

साहब ने माफी का परवाना निकालकर उसके हाथ में दे दिया। उसे देखकर उसने कहा—साहब, यह तो बड़े आश्चर्य की बात है। यदि मैं सपना नहीं देख रहा, तो कहिए इस अहसान का बदला मैं कैसे चुका सकता हूं?

'एक चीज देकर।'

'वह क्या?'

'दोस्ती। तुम आज से हमको अपना दोस्त, जिगरी दोस्त स्वीकार करो।'

सदा के लापरवाह, उद्दण्ड और दुर्दान्त खूनी डाकू की आंखों में पानी भर

आया। उसने चुपचाप अपना हाथ साहब की ओर बढ़ा दिया। उसने कहा—साहब, आपका मतलब चाहे जो कुछ हो, पर आज से यह सफदर तब तक फर्माबरदार गुलाम रहेगा, जब तक इसके जिस्म में एक बूंद खून भी गर्म रहेगा।—उसने साहब का हाथ झुककर चूम लिया।

दोनों उठे और कालकोठरी से बाहर आए। लोग देख रहे थे कि इतना बड़ा जनरल एक खूनी डाकू के साथ अकारण ऐसा उपकार करके भी बराबरी के मित्र की भांति हंसता-बोलता चला जा रहा है।

यह अंग्रेज़ चरित्र का एक नमूना था जिसे समझने की सामर्थ्य किसी हिन्दुस्तानी में नहीं है।

बंगले पर आकर जनरल ने सफदर को स्नान-क्षौर करा पोशाक पहनाई। फिर अपने हाथ से उन्होंने उसको कर्नल का फीता और तमगा लगाया और हाथ मिलाकर कहा—कर्नल सफदर, मैं तुम्हें एक हफ्ते की छुट्टी देता हूं। तुम घर के लोगों से मिलकर ठीक वक्त पर अपनी ड्यूटी पर आ हाज़िर हो। तुम एक बहादुर आदमी हो। अपनी ज़िन्दगी में तुमने अपनी बहादुरी ऐसे कामों में सर्फ की है कि जिससे नेकनामी नहीं मिली। खुदा का शुक्र मनाओ कि तुम फांसी के तख्ते से उतर आए और अब एक इज़्ज़तदार फौजी अफसर हो। वचन दो कि तुम इस तमगे की बेइज़्ज़ती न करोगे और तुम्हारे लिए मुझे कभी शर्मिन्दा न होना पड़ेगा।

सफदर ने फौजी सलाम किया और कहा—सर, जिस दिन सफदर अपने फर्ज से गिरेगा, उसी दिन उसकी मौत हो जाएगी। लेकिन आप क्या मुझसे इन छुट्टियों में कोई खिदमत नहीं लेना चाहते?

'नहीं कर्नल, मैं चाहता हूं कि तुम ये दिन अपने बाल-बच्चों में खुशी से बिताओ। वे इस वक्त परेशान होंगे। फिर भी तुम एक काम कर सकते हो…'

'हुक्म दीजिए।'

'मैं तुम्हारे पुराने सरदार जंगबहादुर से एक बार मिलना चाहता हूं। क्या तुम उसे मेरे पास ला सकते हो?' सफदर चौंका। उसने कहा, 'यह शायद मुश्किल होगा, मगर मैं कोशिश करूंगा।'

'ज़रूर करो, और इस काम को निहायत ज़रूरी समझो। इस बात के कहने की ज़रूरत नहीं है कि उसे मेरे पास आने में कोई डर नहीं है।'

'यह मैं समझ गया सर।'

सफदर चला गया। और ठीक आठवें दिन बहुत-से फल-फूल लाकर उसने जनरल के पैरों में रख दिए। फिर उसने फौजी सलाम किया और अदब से खड़ा हो गया।

साहब ने कहा—कर्नल, तुम्हारा सब बाल-बच्चा खुश है ?

'हुजूर की बदौलत, सर।'

'अच्छा तो मेरा काम ? याद रहा ?'

'सरदार हाजिर हैं सर।'

'कहां ? उन्हें अभी लाओ।'

सफदर ने डाकू सरदार जंगबहादुर को उपस्थित किया। ठिगना कद, छोटी-छोटी तेज आंखें, मोटी गर्दन, खिचड़ी बाल, कठोर रेखाओं से भरपूर चेहरा, सशंकित दृष्टि, सावधान चाल।

चुपचाप जंगबहादुर साहब के सामने आ खड़ा हुआ। साहब ने खड़े होकर हाथ मिलाया और कुर्सी की ओर बैठने का संकेत किया।

'आपने सफदर की जान बख्श दी है साहब, कहिए मैं आपकी क्या खिदमत बजा लाऊं ?'

'मगर मैंने तो आपको एक खुशखबरी देने बुलाया है सरदार।'

'साहब, आपने मेरे सफदर को फांसी के तख्ते से उतारकर मेरी गोद में डाल दिया। यह मेरा बहादुर बेटा है। इतना ही नहीं, उसे एक इज्जतदार बना दिया, यह खुशखबरी क्या कम है ?'

'उस बात को छोड़िए सरदार। गवर्नमेंट ने आपके खिलाफ जितने मुकदमात थे, सब उठा लिए हैं, आपको राजा बहादुर का खिताब दिया है, और आपको यह सब पहाड़ी इलाका जागीर में बख्श दिया है। यह आपकी सनद है, राजा बहादुर।'

डाकू सरदार पागल की भांति जनरल का मुंह ताकने लगा। उसने कहा—आप कौन हैं साहब, और ये इतने बड़े-बड़े अहसान बिना जाने-बूझे किसलिए कर रहे हैं ?

'मैं एक सिपाही हूं राजा बहादुर, और बहादुरी का कद्रदान हूं। जिस देश के बहादुरों को अपने खून की गर्मी दिखाने के मौके नहीं मिलते, वे इसी तरह डाकू बनकर जंगलों में मुंह छिपाते फिरते हैं या फांसी पाते हैं। मगर मैं एक ऐसा

उदाहरण पेश करना चाहता हूं कि आपके और सफदर जैसे जबर्दस्त जीवट के बहादुरों को बाइज़्ज़त अपनी बहादुरी काम में लाते और दुनिया की नज़रों में नेकनाम होते देखूं।'

'तो साहेब, राजा बहादुर तो हमने देखे हैं, वे बड़े पोच, दब्बू और मुर्दार होते हैं। उनका तो हमारी फटकार से ही दम निकल जाता है, गोली खर्च करने की तो ज़रूरत ही नहीं पड़ती।'

जनरल ने हंसकर कहा—अब राजा बहादुरों के रजिस्टर में यह नया रेकार्ड दर्ज होता है कि इस इलाके में सबसे बड़ा बहादुर इस रुतबे को सरफराज़ कर रहा है।

सरदार ने कहा—साहेब, आप जानते हैं कि हम लोगों की आदतें गन्दी हो गई हैं, आम तौर पर हम जंगली, असभ्य और दया-मायाहीन जानवर हैं, हमारे संगी-साथी सब ऐसे ही हैं। न तो हमसे घर बैठकर चुपचाप हराम की कमाई खाई जा सकती है, न हाथ ही ऐसे हैं कि हल-फावड़ा चलाएं।

'तब आप चाहें तो सरकार आपको ऐसा काम दे सकती है कि जिसमें आपके सब आदमी लगे रह सकते हैं और आप लाखों-करोड़ों रुपये कमा सकते हैं। मगर वह बहुत कड़ी मेहनत और हिम्मत का काम है।'

'यदि ऐसा है, तो मैं उसे ज़रूर करूंगा।'

'तब ये कागज़ात हैं। इनपर दस्तखत कीजिए।'

'ये कैसे कागज़ात हैं?'

'आप जानते हैं सरकार 'भारत-बर्मा रोड' बना रही है। जापानियों से बर्मा को और वहां घिरे हुए लाखों आदमियों के जान-माल को बचाने का सवाल है। पर यह काम मामूली ठेकेदारों के बूते का नहीं है। सरकार आपको उस सड़क के बनाने का ठेका देती है। अब यह देखना है कि आप कितने रुपयों का ढेर कमा सकते हैं।'

'यह आप देख लेना। आप कब तक यह सड़क तैयार चाहते हैं?'

'ज़्यादा से ज़्यादा छह माह में।'

'अजी चार माह में सड़क तैयार हो जाएगी। इसे बनाने में जो सबसे बड़ी रुकावट थी, वह तो आज आपके सामने है।' सरदार ने हंसकर कहा।

कागजात पर दस्तखत हो गए, और वह दुर्दान्त, खूनी, इस्तहारी डाकू, ठेके-

दार और राजा बहादुर होकर प्रतिदिन जनरल के बंगले से निकलता।

चार माह बाद। युद्ध-सामग्री, रसद और सैनिकों से भरी हज़ारों लारियां, सैकड़ों टैंक और दस्ते के दस्ते सफ बांधे रात-दिन बर्मा की ओर अग्रसर हो रहे थे। लेफ्टिनेण्ट जनरल वुड ने सरकार की सबसे बड़ी कठिनाई हल कर दी थी और भारत सरकार ने इसके लिए जनरल वुड को धन्यवाद का पत्र लिखकर आभार माना था।

लाल पानी

यह कहानी १५वीं शताब्दी के काठियावाड़ के सामन्ती युग के राजाओं के परस्पर घृणा, द्वेष, विश्वासघात और एक पेशेवर डाकू के परम उत्सर्ग की ऐतिहासिक कहानी है—जो हड्डियों को ठण्डा कर देती है।

यह घटना अब से कोई पांच सौ बरस पूर्व घटित हुई थी। ठीक-ठीक तारीख बताना तो सम्भव नहीं है, परन्तु ई० सन् १४७० और १५०० के बीच यह घटना घटित हुई। उन दिनों काठियावाड़ के कच्छ प्रान्त में अनेक छोटे-बड़े राजा, भायात और गिरासिए ठाकुर थे। एक गांव का ठाकुर भी बहुत हद तक स्वतन्त्र राजा की भांति रहता था। उसकी इच्छा और वचन ही कायदा-कानून होता। प्रत्येक बात का फैसला तलवार से होता था। वे दिन ही ऐसे थे।

कच्छ के अनेक राजाओं, भायातों और ठाकुरों में दो राजा प्रमुख थे। एक लखियार वियरा के जाम भीमजी और दूसरे पथरगढ़ के जाम रावणसिंह। दोनों राजा रिश्ते में भाईबन्द थे। पर दोनों राज्यों की सीमाएं मिली होने के कारण बात-बात में दोनों राज्यों में तलवार खिची रहा करती थी। रावणसिंह के पिता का नाम जाम लाखा था। बागड़ में उनकी ससुराल थी। एक बार जब वह अपनी ससुराल से वापस लौट रहे थे तब राह में कुछ ठाकुरों ने पुराने बैर के कारण उन्हें घेरकर मार डाला। पिता के परलोकवासी होने पर रावणसिंह सिंहासनारूढ़ हुआ। उसने पिता की उत्तरक्रिया बड़ी धूमधाम से की। उस अवसर पर रावणसिंह ने भारी यज्ञ किया। यज्ञ में आसपास से सब राजा, ठाकुर, भायात, गिरासिए आए। परन्तु वियरा के जाम भीमजी अपने बड़प्पन और बैर-भाव के विचार से नहीं आए। रावणसिंह के मन में यह कांटा चुभ गया। पर वह कूटनीतिज्ञ, कुटिल और धूर्त युवक था। अपमान के घूंट को पी गया। थोड़े दिन बाद जाम भीमजी का स्वर्गवास हो गया। तब रावणसिंह बड़ी ममता से उनकी उठावनी के अवसर

पर आया। और नये तरुण जाम हम्मीर से, जो भीमजी का पुत्र था, बड़े प्रेम और आधीनता से मिला। बहुत प्रेम और आदर प्रकट किया। अन्त में जब विदाई का समय हुआ तब स्नेहसिक्त भाषा में उसने कहा, 'हमारे और आपके पूर्वजों ने राज्य के सीमा सम्बन्धी झगड़े-टंटों में फंसकर और लड़कर उभय पक्ष की बहुत हानि की है, इसलिए अब मैं झगड़े वाले सब स्थान स्वेच्छा से छोड़कर आपके अर्पण करता हूं। और आपसे भी विनती करता हूं कि आप आनन्द से लखियार वियरा में राज्य करें। और मुझे अपना चिर किंकर समझें। इसीमें उभय पक्ष की शोभा हैं।' रावणसिंह के ये वचन सुन तरुण हम्मीर बहुत प्रसन्न हुआ और रावणसिंह को सम्मान-मान देकर विदा किया। इसके बाद भी रावणसिंह ने समय-समय पर बहुमूल्य भेंट-सौगात भेजकर और विनय-पत्र लिखकर जाम हम्मीर के मन में घर कर लिया और अच्छी मैत्री स्थापित कर ली।

लखियार वियरा आज भी कच्छ में एक छोटा-सा गांव है, पर उन दिनों वह कच्छ की राजधानी थी। जाम हम्मीर ही तब कच्छ के धनी कहाते थे। और वियरा राजनगर के नाम से प्रसिद्ध था। वह एक समृद्ध नगर था।

जाम हम्मीर के पांच सन्तान थीं। बड़ा पुत्र अलैयाजी था, परन्तु उसकी माता एक खवास रवायत थी, इससे हम्मीर ने दूसरे पुत्र खंगारजी को युवराज बनाया था। खंगार जी रानी के पेट से पैदा थे। अलैयाजी की सगी बहन कमा-बाई थी। कच्छ में उसके रूप-यौवन की बड़ी चर्चा थी। खंगारजी के दो सगे भाई और थे, सायबजी और नायबजी। इस प्रकार हम्मीर के एक पुत्र और एक पुत्री रवायत से, और तीन पुत्र रानी से थे।

खंगारजी को युवराज-पद दिया गया, इसका भारी उत्सव वियरा में मनाया गया। सारा नगर और राजप्रासाद सजाया गया। कच्छ के सभी राजा, भायात, ठाकुर, गिरासिए, इस अवसर पर वियरा में आए। राजधानी में बहुत धूम-धाम और चहल-पहल मच गई। इस अवसर पर जाम रावणसिंह भी बहुत-सी भेंट-भलाई लेकर मुबारकबादी देने आया था। परन्तु गुप्त रूप से उसने एक षड्यंत्र किया कि इसी अवसर पर गुजरात के सुलतान मुहम्मद बेगड़ा को वियरा पर चढ़ा लाया। अभी हम्मीर जाम मेहमानों की आवभगत ही में लगा था कि उसे सूचना मिली कि गुजरात का सुलतान मुहम्मद बेगड़ा बड़ी भारी सेना लेकर

बियरा पर आ धमका है। यह समाचार वज्रपात की भांति राजधानी में फैल गया। जाम रावण ने बहुत चिन्ता और क्रोध प्रकट किया तथा हम्मीर को युद्ध में भिड़ जाने के लिए उकसाया। सुलतान मुहम्मद शाह बेगड़ा बड़ा विकराल पुरुष था। वह नित्य एक मन भोजन करता था। सौ केले, आध सेर शहद और बहुत-सी सटर-पटर चीजें तो वह कलेवे में ही खा जाता था। एक बड़े बैल के सींग के समान उसकी मूंछें थीं। उसने अनेक युद्ध जीते थे। चांपानेर और जूनागढ़ के दुर्जय दुर्ग जीतकर उसने बेगड़ा की उपाधि पाई थी। उसीने सिंध के सब सूमरा और सोढ़ा राजपूतों को मुसलमान बनाया था।

हम्मीर जाम ने अपने वृद्ध दीवान भूधरशाह से परामर्श किया और उसीको बहुत-सी भेंट लेकर सुलतान के पास भेजा। भूधरशाह ने अपनी वचन-चातुरी से सुलतान को प्रसन्न कर लिया। और यह तय पाया कि यदि जाम हम्मीर अपनी पुत्री कमाबाई से सुलतान का विवाह कर दे तो वह बिना युद्ध किए लौट जाएगा और उसे और भी इलाके देगा। जाम हम्मीर ने निरुपाय यह शर्त स्वीकार की। धूम-धाम से राजपुत्री का सुलतान से विवाह हो गया। और वह नई बेगम कमा-बाई, उसके भाई राजपुत्र अलैयाजी तथा बहुत-सा दान-दहेज, दास-दासी लेकर वापस गुजरात लौट गया।

इस मामले में भी रावणसिंह ने बहुत दौड़-धूप और आत्मीयता प्रकट की। और जब इस विपत्ति से पार पाकर जाम हम्मीर ने सब मेहमानों को विदा किया तथा जब जाम रावणसिंह विदा होने लगा, तब उसने बहुत-बहुत प्रेम और अधी-नता प्रकट करके कहा कि आप एक बार राज-परिवार सहित मेरे गांव में पधार-कर मेरे घर को पवित्र कीजिए और मुझे कृतकृत्य कीजिए। जाम हम्मीर ने कृत-ज्ञतापूर्वक रावण का यह निमंत्रण स्वीकार किया।

छच्छरबूटा जाम हम्मीर का पुराना विश्वासी था। वह हम्मीर के पिता के समय का नौकर था। उसने हम्मीर को भी गोद खिलाया था और हम्मीर के पुत्रों को भी। यह वृद्ध सेवक भारी राजभक्त, बुद्धिमान और धर्मात्मा था। जाम रावण की दुरभिसन्धि को वह खूब जानता था। हम्मीर को उसने बहुत समझाया कि वह इस धूर्त रावण का निमंत्रण स्वीकार न करे और बीमारी का बहाना करके इसे टाल दे। उसने स्पष्ट कहा कि जाम रावण के गांव में जाकर हममें से कोई

भी जीता न लौटेगा। परन्तु जाम हम्मीर ने उसकी बात हंसी में उड़ा दी। और जब उसने देखा कि राजा राजपुत्रों सहित दुश्मन के घर जाने को तैयार है, तब उसने भी उनके साथ ही जाने का निश्चय कर लिया। खतरे का पूरा सामना करने और काल के मुंह में जाने की उसने पूरी तैयारी की। उसने बेटों, पोतों और परिवार के बूढ़े-बड़ों को इकट्ठा करके गुप्त रूप से कहा कि मैं अपने धर्म के लिए राजा के साथ बैरी के घर जा रहा हूं। जहां से हमारे जीता लौटने की बहुत कम संभावना है। सो तुम होशियार रहना और भीर पड़ने पर अपने धर्म को न छोड़ना और कदाचित् मैं या राजा बैरी के घर से जीते वापस न लौटें, तो तुम मौका पाकर बैरी से हमारे प्राणों का बदला लेना। इतना कहकर उसने भली भांति अपने को हथियारों से सज्जित किया, दो-दो तलवारें बांधीं और सांड़नी पर सवार हो राजा के साथ शत्रुपुरी को चला। जाम रावणसिंह ने राजा हम्मीर की बड़ी भारी खातिर और सेवा की। सारे नगर को सजाया। बड़े-बड़े नाच-रंग, खेल-तमाशे और गाजे-बाजे का जुगाड़ किया। शाम को नाच-रंग की महफिल जुड़ी। अवसर पाकर रावण ने हाथ जोड़कर हम्मीर से कहा, 'आप हमारे महाराज हैं, और हम आपके सेवक। सेवा और राजनिष्ठा ही हमारा धर्म है। उसीका मैंने पालन किया है। सिंहासन, राज्य, राजा, राज-परिवार और राज्याधिकारियों की एक-निष्ठा से सेवा करना मुझ अधीन का धर्म है। और हमारी सेवा प्रेम से स्वीकार करना आपका कर्तव्य है। आपके पधारने से हमारा कुल उज्ज्वल हुआ और हमारा घर पवित्र हुआ। अब रसोई रूखी-सूखी जैसी बन पड़ी है, तैयार है। कृपाकर आप महाराज और सब सरदार भोजनालय में पधारिए।'

जाम रावणसिंह ने हाथ जोड़कर इस प्रकार नम्रता से विनती की कि जिसे सुनकर जाम हम्मीर और सब सरदार हंसते हुए और रावण की प्रशंसा करते हुए उठकर भोजन के लिए अटाले की ओर चल दिए। रावणसिंह ने गांव के बाहर एक विशाल मैदान में डेरे-तम्बू और कनातें लगाकर काफी धूम-धाम से हम्मीरजी का उतारा किया था। खाने-पीने और दूसरे मौज-मजा के प्रबन्ध भी वहीं थे। जाम हम्मीर को रावण और उसके सरदारों ने एक सुसज्जित तम्बू में ले जाकर उत्तम आसन पर बैठाया। रावण भी एक आसन पर बैठा। दूसरे तम्बुओं में और सरदार बैठे। सेवकों ने सोने के थालों में विविध पकवान और भोज्य पदार्थ हम्मीर और

रावण के सम्मुख ला रखे। जाम रावण ने हाथ जोड़कर अधीनता से राजा से भोजन करने का अनुरोध किया। हम्मीर ने अभी ग्रास पर हाथ डाला ही था कि तम्बू में चारों द्वारों से चार जल्लाद हाथों में नंगी तलवार लिए घुस आए और हम्मीर पर टूट पड़े। जाम रावण उछलकर खड़ा हो गया और देखते-देखते ही हम्मीर के टुकड़े-टुकड़े कर डाले गए। चारों ओर मार-काट मच गई और कुछ ही क्षणों में हम्मीर के सब साथी भी काट डाले गए। अभी कुछ क्षण पहले जहां राग-रंग, जश्न मनाया जा रहा था, वहां अब तड़पती लाशें और खून का गारा चारों ओर नजर आ रहा था।

छच्छरबूटा बड़ा दूरदर्शी पुरुष था। वियरा में ही जब उसने यह देख लिया कि राजा अपने हठ पर तुले हुए हैं और रावण के यहां जरूर जाएंगे, और कुमारों को भी साथ ले जाएंगे तब उसने रानी से सलाह करके रातों-रात छोटे कुमार नायबजी को एक सांड़नी-सवार के साथ उसके नाना के घर भिजवा दिया। राजा युवराज खंगारजी और द्वितीय कुमार सायबजी के साथ रावणसिंह के गांव की ओर रवाना हुए। मार्ग में पिंजोड़ नाम का एक गाँव आया। वहां के ठाकुर अजाजी जाम हम्मीर के भायात और सम्बन्धी थे। उनकी रानी हम्मीर की रानी की सगी बहन थी। उन्होंने जाम हम्मीर और उनके कुमारों का बड़ा सत्कार किया और छच्छरबूटा के संकेत से हठ करके एक रात अपने घर ठहरा लिया। रात को एकांत में छच्छरबूटा ने अजाजी को सारी हकीकत समझा दी। अजाजी भी कुछ-कुछ रावणसिंह के मन्सूबों को समझते थे। छच्छरबूटा के साथ अजाजी और उनकी रानी ने गुप्त सलाह करके आग्रहपूर्वक दोनों कुमारों को अपने पास रोक लिया। इस प्रकार रावण के गांव में अकेले जाम हम्मीर दस-बारह मनुष्यों और छच्छरबूटा के साथ पहुंचे थे। चलते समय अजाजी की रानी ने एकान्त में छच्छरबूटा से कहा कि जो तुझे दगाबाज़ी का तनिक भी सन्देह दिखाई दे, तो तू सांडनी पर सवार होकर सीधा यहां आ पहुंचना।

अब, जब यहां मार-काट मची तब छच्छरबूटा की ओर किसीका भी ध्यान नहीं गया। वह भोजन करने भी नहीं बैठा। वह सबकी नजरों से छिपकर एक ओर बैठ गया था। उसकी आंखों के सामने उसके देखते ही देखते राजा के टुकड़े-टुकड़े काट डाले गए और सब सरदार मौत के घाट उतार दिए गए। किन्तु इस बूढ़े

सेवक ने इस कठिन समय में भी अपने मस्तिष्क का संतुलन नहीं खोया। वह वहीं धरती में चुपचाप लेट गया और देखता रहा। झपाक से रावणसिंह वहां आ पहुंचा। जल्लादों के सरदार का नाम था चामुण्डराय। वह रावण का सेनापति था। रावण ने मोतियों की कीमती माला उसके गले में डाल दी और कहा, 'शाबाश बहादुर, तूने बड़ा काम किया। अब चढ़ी सवारी दौड़ जा, सांप मर गया, पर सांप के बच्चे अभी जिन्दा हैं। हम्मीर के दोनों राजकुमार पिंजोड़ में अजाजी के घर पर हैं, अभी मारते घोड़े जा और दोनों कुमारों को अपने बाप की सेवा करने के लिए यमलोक में भेज आ और समझ कि यह काम कर चुकने के साथ ही तेरे भाग्य का उदय हुआ।' चामुण्डराय ने यह सुनते ही अपने जल्लादों को हांक लगाई। वे सब चढ़ी सवारी, खून से भरी हुई तलवारें हवा में हिलाते हुए पिंजोड़ गांव की तरफ दौड़ चले।

छच्छरबूटा ने सब सुना। सब देखा। उस अन्धकार में वे स्वार्थान्ध खूनी उसे नहीं देख पाए। वह कीड़े की भांति रेंगकर द्रुत गति से एक ओर को चल दिया तथा एकान्त होने पर उठकर उस स्थान की ओर दौड़ चला जहां उसने अपनी सांड़नी जंगल में छुपाई हुई थी। वह सांड़नी अत्यन्त द्रुतगामिनी थी। वह एक घड़ी में चार गांव का रास्ता पार करती थी। बूटा सांड़नी पर सवार हुआ और सांड़नी हवा में तैरने लगी। उसे उन जल्लादों की नजर से भी अपने को बचाना था और पिंजोड़ भी उनसे पहले पहुंचना था। वह खेतों और नालों में से रास्ता काटकर हत्यारों से पहले सही-सलामत पिंजोड़ जा पहुंचा। अब तक तीन पहर रात बीत चुकी थी। वह सूनी गांव की गलियों को पार कर सीधा अजाजी के महल के द्वार पर जा पहुंचा। सूचना पाते ही अजाजी की रानी घबराकर जाग उठी। उसने तत्काल छच्छर को बुलाकर कुशल पूछा। छच्छर ने माथे का पसीना पोंछते हुए कहा, 'रानी मा, कुशल कैसी, महाराज तो उस पापी रावण के हाथ मारे गए, अब कुमारों का घात करने कुछ ही पल में हत्यारे यहां पहुंच रहे हैं। आप अभी कुमारों को मेरे हवाले कीजिए। मेरी सांड़नी दमदार है। आपसे रोका जाए तो हत्यारों को रोकना, तब तक मैं कुमारों को लेकर जितनी दूर सम्भव होगा, निकल जाऊंगा।' अजाजी भी जागकर आ गए। सब सुनकर उन्होंने रानी से कहा, 'रानी, समय कम और काम बहुत है, जाओ, कुमारों को अभी ले आओ।' फिर छच्छर

की ओर रुख करके बोले, 'भाया, तेरे ही हाथ कच्छ के धनी की रक्षा का भार है, पर तू अब वियरा न जाना। सीधे अहमदाबाद सुलतान के पास जैसे बने दोनों कुमारों को ले जा।'

रानी दोनों कुमारों को ले आई। सुकुमार बालकों की आंखें नींद से भरी थीं। छच्छर ने कहा, 'बापू जब तक दम में दम है, चूक न होगी।' उसने कमर से फेंट खोलकर राजकुमारों को अपनी पीठ पर कसा। सांड़नी पर आसन जमाया और सांड़नी को अहमदाबाद की राह पर छोड़ दिया।

अजाजी और उनकी रानी आंखों में आंसू भरे एकटक उस जाते हुए को देखते रहे। जब सांड़नी आंखों से ओझल हो गई तब अजाजी ने सब सिपाहियों और पहरेदारों को ड्योढ़ी से हटा दिया और बूढ़े सेवक हीरजी को ऊंच-नीच समझा, पौर पर बैठा, आप महल में जा बैठे।

यह सब होते न होते जल्लाद भी घोड़ा दौड़ाते आ पहुंचे। सब मिलाकर पच्चीस नरघाती थे। सबके आगे नंगी तलवार हाथ में लिए चामुण्डराय था। इन्हें देखकर हीरजी तलवार गोद में रख पैर फैलाकर पौर में सो गया।

चामुण्डराय ने घोड़े से उतरकर हीरजी को ठोकर मारकर कहा, 'उठ रे बूढ़े, अभी अजाजी को हमारी अवाई की खबर कर।' परन्तु ठोकर खाकर भी हीरजी नहीं उठा। करवट फेरकर बड़बड़ाता हुआ फिर सो गया।

चामुण्डराय ने उसे पकड़कर झंझोड़ डाला। गुस्से में भरकर कहा, 'उठ हरामखोर, अभी अजाजी को खबर कर।' अब बूढ़े हीरजी ने आंखें खोलीं और देखकर कहा, 'क्या तुम लोग डाकू हो? ठहरो, मैं अभी सिपाहियों को हांक लगाता हूं।' उसने ज़ोर से सिपाहियों को हांक लगाई। चामुण्डराय ने अपना मुंह उसके निकट ले जाकर कहा, 'अरे बूढ़े, पहचानता नहीं? मैं जाम साहब का सेना-पति चामुण्डराय हूं।' बूढ़े हीरजी ने आंखें फाड़कर चामुण्डराय की ओर देखा, फिर हंसकर कहा, 'पधारो, पधारो, माई-बाप, मैं तो डर गया कि धाड़ पड़ी। मज़े में तो हो। बैठो-बैठो।'

'तू अजाजी को हमारी अवाई की खबर कर, राजकाज के लिए उनसे अभी मिलना ज़रूरी है।'

'तो आप विराजो तो सही अन्नदाता! घड़ी एक में मालिक जागते हैं, तब

तक अमल-पानी करो, मैं अभी बन्दोबस्त करता हूं ।'

'अमल-पानी नहीं रे, महाराज का हुक्म है। तू अभी खबर कर ।'

बूढ़े हीरजी ने सिर पर पाग बांधते हुए कहा, 'तो अभी इत्तला करता हूं।' वह पौर में चला गया। और चामुण्डराय अधीर होकर पौर पर टहलता रहा।

कुछ काल और बीता। तब अजाजी बाहर आए। चामुण्डराय से भुजभर भेंट की और नम्रता से कहा, 'इस असमय में सेनापति का पधारना किस मतलब से हुआ ?'

'मैं जाम साहब के हुक्म से आया हूं।'

'मैं जाम साहब का आज्ञाकारी दास हूं। मेरे लिए महाराज का क्या हुक्म है ?'

'हमारे महाराज के यहां वियरा के जाम हम्मीर अतिथि रूप में उपस्थित हैं। उनके दोनों राजकुमार आपके यहां हैं, उन्हें महाराज ने बुलाया है, आप उन्हें अभी हमारे हवाले कीजिए।'

'बड़े आनन्द की बात है। दोनों कुमार सो रहे हैं। आप रातोंरात चलकर आ रहे हैं। घोड़े भी थक गए हैं। कमर खोलिए। अमल-पानी कीजिए, रूखा-सूखा जो कुछ है स्वीकार कीजिए, तब तक कुमार भी जग जाएंगे।' अजाजी ने अधीनता दिखाते हुए कहा।

चामुण्डराय यह जानकर कि शिकार कब्ज़े में है, कुछ आश्वस्त हुआ। पर उसने कहा, 'ठहर नहीं सकता अजाजी, महाराजाधिराज का हुक्म है कि कुंवर साहबान को लेकर तुरन्त पीछे आओ। सो आप अभी दोनों कुंवरों को ले आइए।'

'तो जैसी राजाज्ञा, मैं अभी राजकुमारों को भेजता हूं।' यह कहकर अजाजी महलों में चले गए।

परन्तु बहुत समय बीत जाने पर भी राजकुमार नहीं आए। न कोई दास-दासी ही पौर पर आया। पूर्व में सफेदी फैली, सूर्योदय हुआ। चामुण्डराय ने ज़ोर से चिल्लाना और पुकारना आरम्भ किया।

हीरजी ने आकर हंसते हुए कहा, 'अन्नदाता से हमारे स्वामी की भेंट हुई न ?'

'पर अजाजी कहां हैं ?'

'दांतुन-कुल्ला कर रहे हैं, माई-बाप।'

'अरे, उन्हें अभी यहां बुला ला।' चामुण्डराय ने अधीर होकर क्रोधित स्वर में कहा।

'अभी लाया माई-बाप', कहकर हीरजी फिर पौर में घुस गया। थोड़ी देर में दांतुन हाथ में लिए अजाजी बाहर आए। उन्होंने आश्चर्य की मुद्रा में कहा, 'अरे, राजकुंवर अभी नहीं आए? बड़ी खराब बात है। मैं तो राजकुमारों को जगाकर और बाहर भेजने को कहकर कुल्ला-दांतुन में लग गया।' फिर उन्होंने हीरजी की ओर मुख करके कहा, 'जा, जा, रानी-महल में जाकर दोनों कुंवरों को ले आ।' हीरजी भीतर चला गया। अजाजी वहीं बैठकर चामुण्डराय से गप्पें लड़ाने लगे। सूरज ऊपर उठ आया, धूप फैल गई। चामुण्डराय ने कहा, 'बड़ी देर हो रही है, अजाजी!'

इसी समय हीरजी ने आकर कहा, 'राजकुमार को बहुत देर हुई, रानी-महल से आ गए?'

'अरे, तो वे हैं कहां? तुम सब हरामखोर हो। रानीजी से पूछ कि राजकुमार कहां हैं, यहां तो अभी आए नहीं।'

हीरजी फिर भीतर चला गया। और कुछ देर बाद आकर उसने कहा, 'सरकार, रानीजी पूजा में हैं।'

अब अजाजी गुस्से में बकते-झकते और यह कहते कि मैं देखता हूं, फिर महल में घुस गए।

आधा घंटा बीत गया। चामुण्डराय का रूप अब उग्र होने लगा। वह ज़ोर-जोर से बकने लगा। इसी समय अजाजी ने आकर कहा, 'बड़ी विचित्र बात है। राजकुमार महलों में नहीं हैं। उनके साथ वह दासी भी गायब है, जो उन्हें ला रही थी। पर वे गए कहां?'

चामुण्डराय ने अब अपना असली रूप प्रकट किया। उसने ललकारकर कहा, 'सिपाहियो, महल को घेर लो।' और अजाजी से कहा, 'अजाजी, मैं महलों की तलाशी लूंगा। आप राज-विद्रोह कर रहे हैं। सीधी तरह राजकुमारों को मेरे हवाले कर दीजिए, नहीं तो अच्छा न होगा, महाराज रावणसिंह महल को ढहाकर उसपर गधों से हल जुतवा देंगे।'

अजाजी ने कहा, 'सेनापति, तुम सेनापति होने पर भी राज्य के चाकर हो, और हम भायात हैं। ऐसी बात करके तुम हमारा अपमान करते हो, इसका नतीजा

पीछे देखना। अभी तुम अच्छी तरह महल की तलाशी लो और देखो कि राज-विद्रोही कौन है!'

महल की राई-रत्ती तलाशी ली गई। राजकुमारों को न मिलना था, न मिले।

चामुण्डराय भूखे बाघ की तरह बफरने लगा। उसने अजाजी से कहा, 'राजकुमारों को आपने जान-बूझकर भगा दिया है। निस्संदेह वे राजमहल में नहीं हैं, परन्तु कोई चिन्ता नहीं, मैं उन्हें सात पाताल से पकड़ लाऊंगा।' उसने सिपाहियों से कहा, 'जाओ, देखो, इस गांव में कोई पगी-खोजी है, यदि हो तो उसे पकड़ लाओ।'

गांव में कोई खोजी न था, पर वहां से दो गांवों के अन्तर पर एक प्रसिद्ध खोजी रहता था। चामुण्डराय ने उसे पकड़ मंगाया। खोजी ने आकर पैरों के चिह्न देख-जांचकर कहा, 'अन्नदाता, चोर सांड़नी पर सवार होकर भागा है।'

इस खोज-जांच में दो प्रहर काल बीत गया। और जब खोजी को आगे करके चामुण्डराय की खूनी टोली सांड़नी के पग-चिह्न देखती आगे बढ़ रही थी, तब सूर्य ढलने लगा था।

जब चामुण्डराय की हत्यारी टोली पिंजोड़ गांव की सीमा से चली गई तब अजाजी ने रानी से कहा, 'यह विपत्ति तो टली, परन्तु बात गम्भीर है। और कच्छ के धनी की रक्षा का प्रश्न है। यद्यपि छच्छरबूटा को भाग निकलने का यथेष्ट समय मिल गया है तथापि हमें राजकुमारों की ओर से निश्चिंत न रहना चाहिए। यदि उनका कुछ अशुभ हो गया तो हमारे कुल को भी दाग लग जाएगा। चामुण्डराय खोजी को साथ लेकर गया है। आश्चर्य नहीं कि छच्छर को पकड़ ले। अकेला छच्छर क्या कर लेगा! चामुण्डराय के साथ पच्चीस सिपाही हैं। वे और उनके घोड़े भी थके हुए हैं। इसलिए मैं अपने हथियारबन्द आदमियों को लेकर उनके पीछे जाता हूं। व्यर्थ झगड़ा मैं नहीं करूंगा। पर कदाचित राजकुमार इन हत्यारों के हाथ में पड़ ही गए, तो मैं भी दो-दो हाथ दिखाकर या तो उनका उद्धार करूंगा, या वहीं खेत रहूंगा।' इतना कह, रानी को समझा-बुझा, उसे बिलखती छोड़, पचास हथियारबन्द राजपूत संग ले अजाजी ने भी चामुण्डराय का अनुसरण किया।

छच्छरबूटा राजकुमारों को पीठ पर फेंट से कसे सांड़नी पर सवार झपाझप

अहमदाबाद की राह पर दौड़ा जा रहा था। न उसे भूख-प्यास थी, न थकान। उसकी सांड़नी भी जैसे पर लगाकर उड़ रही थी। वह दिनभर भागा-भागा चलता चला गया। सन्ध्या होते-होते वह सापर गांव में जा पहुंचा। सापर मियानाओं का गांव था। मियाना लोग वास्तव में कच्छ के मुसलमान और प्रसिद्ध चोर-डाकू थे। वे प्रकट में खेती-बाड़ी करते और अवसर-कुअवसर मार-धाड़ का काम भी करते थे। उनका संगठन ऐसा प्रबल था कि राजा भी उनसे डरते थे। गांव के पटेल का नाम भिया था। गांव के बाहर कच्ची दीवारों पर छप्पर डालकर उसने अपनी मढ़ैया बनाई थी, मढ़ैया में वह अपने परिवार और कुटुम्ब के साथ रहता था। मढ़ैया के सामने उसके हरे-भरे खेत थे और मैदान में घास की विशाल सात गंजियां लगी थीं।

छच्छर ने भिया की मढ़ी के सामने आकर सांड़नी रोकी। और भिया पटेल से सारी हकीकत कह सुनाई तथा राजकुमारों की शरण मांगी। भिया पटेल का शरीर स्थूल, मूंछें सफेद और बड़ी-बड़ी थीं। आयु उसकी साठ को पार कर गई थी। सब बात सुनकर भिया क्षणभर स्तब्ध खड़ा रहा और फिर उसने अपना कर्तव्य निर्णय किया। घास की एक गंजी में उसने जगह करके दोनों राजकुमारों को उसमें छिपा दिया। फिर वह एक घड़े में पानी और कुछ खाने का सामान लेकर छच्छरबूटा को निकट की पहाड़ी में ले गया। वहां एक गुप्त गुफा में छच्छर को छिपाकर, जल और आहार उसके निकट रख यह समझा दिया कि यहां तुझे कुछ भी भय नहीं है, तू यहां बैठ, समय पर और सूचना मैं तुझे दूंगा। किन्तु सांड़नी के अठारह अंग बेडौल होते हैं, यह छुपाए छिपने वाली नहीं, इसलिए उसे उसके आश्रय पर जंगल में छोड़ा। इसके लिए जंगल में चारा बहुत है। बात की उपयुक्तता को समझ छच्छरबूटा ने सांड़नी को तो पर्वत की घाटियों में चरने को हांक दिया और आप गुफा में छिपकर बैठ गया। छच्छर का सारा प्रबन्ध कर भिया अपनी मढ़ैया में आया। सब भाई-बन्दों को बुलाकर विचार-परामर्श कर, मन में निश्चय ठान आनेवाली विपत्ति का सामना करने मुस्तैदी से आ बैठा।

रातभर पग-चिह्न लेता हुआ चामुण्डराय भोर होते-होते मियानाओं के सापर गांव में आ पहुंचा। खोजी ने कहा, 'बस, यहीं सांड़नी रुकी है।' चामुण्डराय ने भिया के झोंपड़े के सामने आकर चारपाई पर सोते भिया मियाना को देख लल-

कारकर कहा, 'अरे, उठ खड़ा हो। तेरी झोंपड़ी में हमारे दो चोर हैं, उन्हें अभी हमारे हवाले कर, नहीं तो जान रख कि तेरे प्राण की खैर नहीं।'

भिया ने उठकर हाथ जोड़कर कहा, 'अन्नदाता, कैसा चोर, भला मैं राजा के चोर को अपने घर में छिपाकर मुफ्त में विपत्ति मोल लूंगा? ऐसा नादान मैं नहीं हूं। गरीबपरवर, मैं आपके चोर के सम्बन्ध में कुछ नहीं जानता।'

अभी भिया मियाना से चामुण्डराय की ये बातें हो ही रही थीं कि खोजी सांड़नी के पग-चिह्न लेता पर्वत की घाटी में जा पहुंचा और एक स्थान पर चरती सांड़नी को पकड़ लाया। चामुण्डराय ने दरबारी वाहन तरीके की सांड़नी को पहचानकर कहा, 'इसी सांड़नी पर हमारा चोर आया है। जब सांड़नी यहां है तब चोर भी यहीं है।' उसने सब सिपाहियों को पर्वत पर राई-रत्ती खोज करने की आज्ञा दी। पर राजकुमारों का पता नहीं लगा। वे थक-थकाकर फिर भिया मियाना की मढ़ी में आ धमके। सब बातें सुनकर चामुण्डराय ने भिया से कहा, 'पटेल, तेरे घर तक सांड़नी आई है। यहां से उसे डूगर की तलहटी में चरने तूने हांक दी है। राजकुमार पर्वत पर नहीं है तो अवश्य तेरे घर में या गांव में हैं। तू उन्हें जानता है। बहानेबाजी छोड़ और राजकुमारों को हमारे हवाले कर, नहीं तो तेरा सारा परिवार बुरी तरह मारा जाएगा। चोर को हमारे सुपुर्द करने से राजा तुझे इनाम में दस गांव देगा।'

भिया ने कहा, 'गरीबनिवाज़, आप इस सारे गांव में आग लगाकर यहां के सब निवासियों को मरवा डालें, तो भी हमारा क्या बस है। पर मैं अपराधी नहीं, सांड़नी हमारे गांव में आई भी नहीं और मैंने राजकुमारों को देखा भी नहीं। आपको मेरा विश्वास नहीं है तो आप भले ही मेरे परिवार का वध कर डालिए। आप हमारे मालिक हैं।'

परन्तु चामुण्डराय इन बातों में भूलने वाला न था। उसका पक्का विश्वास हो गया था कि राजकुमार यहीं हैं। उसने कहा, 'ठीक है, पर राजकुमार यहीं हैं। तेरे घर में नहीं हैं तो गांव में कहीं तूने छुपाए हैं। इसलिए सारे गांव को आग लगाकर खाक करना होगा। इतना कहकर उसने सिपाहियों को आज्ञा दी कि गांव को चारों ओर से घेरकर उसमें आग लगा दो। बूढ़ा-बच्चा जो भी भाग जाने की चेष्टा करे उसे वहीं काट डालो, जिससे यह बूढ़ा पटेल देख ले कि राज-विद्रोह की सज़ा क्या है।' देखते ही देखते गांव आग से सुलग उठा। आग की प्रचण्ड लपटों ने

आकाश को लाल कर दिया। जलते-झुलसते-तड़पते स्त्री, बालक, वृद्ध और बेचारे जानवरों की आर्त पुकार से प्रलय का दृश्य उपस्थित हो गया। गांव के सारे स्त्री, पुरुष, पशु, आर्तनाद करते-करते जल मरे।

परन्तु भिया के मुखमंडल पर किसी प्रकार का शोक, उद्वेग या मलिनता न थी। उसके नेत्रों में एक दिव्य चमक आ रही थी। वह अचल पर्वत की भांति खड़ा था। देखते ही देखते उसके सगे-सम्बन्धी जलकर खाक हो गए।

पटेल की यह दृढ़ मुद्रा देखकर चामुण्डराय भी विचलित हो गया। उसने सोचा, गांव में राजकुमार नहीं थे, परन्तु अब उन्हें कहां ढूंढ़ा जाए। इसी समय चामुण्डराय ने धूल का बादल उड़ता देखा। और कुछ ही क्षण में एक घुड़सवार सेना साथ लिए स्वयं जाम रावणसिंह वहां आ उपस्थित हुआ। सेना के सिपाहियों ने चारों ओर से पटेल की मढ़ैया को घेर लिया। घोड़ों ने खेत रौंद डाले, सिपाहियों ने पशु खोल दिए, चीज़ें नष्ट-भ्रष्ट कर दीं। परन्तु भिया पटेल उसी भांति अटल-अचल खड़ा रहा। वैसी ही उसकी मुख-मुद्रा, वैसी ही आंखों की चमक। भय-शंका से पाक-साफ।

चामुण्डराय ने सब हकीकत रावण को समझा दी। सब बात सुन-समझकर रावण की गृद्ध दृष्टि उन घास की गंजियों पर पड़ी। उसने आज्ञा दी, 'जैसे यह राज-विद्रोही गांव आग की भेंट हुआ है, उसी प्रकार एक-एक करके घास की इन गंजियों में भी आग लगा दो और इस कुएं और बावली को पत्थरों से पाट दो।'

सैनिक राजाज्ञा पालन करने आगे बढ़े। परन्तु इसी क्षण पटेल ने ललकारकर कहा, 'ठहरो!' और वह आगे बढ़कर जाम रावण के सम्मुख आया और राजा को प्रणाम कर कहा, 'महाराजाधिराज, राजाज्ञा हुई सो ठीक, पर राजाज्ञा पालन करने से प्रथम मेरी प्रार्थना सुन ली जाए। आप श्री हाल ही में कच्छ के स्वामी बने हैं, अतः आपको आरम्भ में ही रैयत की हाय लेना शुभ नहीं होगा। आगे जैसी महाराज की मरजी। आपके अधिकारी ने बिना अपराध हमारा गांव जलाकर खाक कर डाला। बूढ़ों और बच्चों पर भी दया नहीं की। अब यहां मेरा इतना-सा परिवार बच रहा है। सो आप कुआं-बावली पत्थर से पाटकर हमारा पीने का पानी नष्ट करना चाहते हैं। हमारी घास की गंजी में आग लगाकर हमारे पशुओं को भूखों मारना चाहते हैं। सो आप खुशी से कीजिए। परन्तु इससे पहले

इस दास का सिर काट लीजिए और मेरे सब बाल-बच्चों को भी तलवार के घाट उतार दीजिए, जिससे हमें भूखों मरना न पड़े। परन्तु इससे पहले आप सब मियानाओं को कच्छ से बाहर निकाल दीजिए। इसीमें आपका भला है, क्योंकि आज का यह जुल्म दुनिया की आंखों से छिपा न रहेगा। और जब मेरे जात-भाई यह सुनेंगे तब वे बलवा करेंगे, और आप जानते हैं कि उस बलवे को दबाने की ताकत आपकी सेना में नहीं है। यह विचार लीजिए। यही मेरी आपसे प्रार्थना है।'

पटेल की अभय मुद्रा और शान्त वाणी सुनकर रावणसिंह विचार में पड़ गया। उसने कहा, 'बुड्ढे, तेरी कोई सन्तान है?'

बूढ़े पटेल ने कहा, 'अन्नदाता, मेरे आठ पुत्र हैं।'

'तो उन सबको यहां बुला' रावण ने आज्ञा दी। पटेल के आठों पुत्र हाथ बांधे राजा के सामने आ खड़े हुए। राजा ने खटाक से म्यान से तलवार निकालकर पटेल के सबसे बड़े पुत्र की गरदन पर भरपूर वार किया। लड़के का सिर धड़ से जुदा होकर धूल में लोटने लगा। पुत्र का इस प्रकार अकल्पित रूप से घात होता देख पटेल की आंखों के आंसू सूख गए और उसकी आंखों में वही चमक आ गई। वह पर्वत की भांति अचल खड़ा रहा।

राजा ने उसे लक्ष्य करके कहा, 'यह है राज-द्रोह का दण्ड। अभी समय है, तूने अवश्य घास की इन गंजियों में राजकुमारों को छिपा रखा है। भलाई इसीमें है कि उन्हें निकालकर मुझे सौंप दे। और अपने परिवार को विनाश से बचा ले।'

पटेल ने धीर-गम्भीर स्वर में कहा, 'महाराज, यदि मेरे परिवार के भाग्य में इसी रीति से नष्ट होना बदा है तो मैं आपको दोष नहीं दूंगा। राजपुत्र मेरे पास नहीं हैं।'

क्रोध में उबलकर रावणसिंह ने मिया के दूसरे पुत्र का सिर धड़ से उड़ा दिया। पटेल की पुत्र वधुएं हाहाकार कर उठीं और खूनी हत्यारे सिपाही भी भय से थर्रा उठे। पर राज्य-लोभान्ध रावणसिंह का कठोर हृदय न पसीजा। उसने पटेल को लक्ष्यकर कहा, 'अब भी राजकुमारों को देगा कि नहीं?'

पटेल ने आंखों से आग बरसाते हुए करारा जवाब दिया, 'अरे राजा, जो तू मुझे अपना अपराधी मानता है तो मुझे मार डाल। निरपराध बालकों की हत्या से क्यों अपने कुल को कलंकित करता है।'

पटेल की बात पूरी भी न हुई थी कि जाम रावण ने पटेल के तीसरे पुत्र की छाती में भाले की अणी भोंक उसे भाले पर अधर उठा लिया। बालक की छाती में से खून की धारा बह चली और वह अधर में तड़पने लगा। रावण ने लाश धरती पर पटक दी और बालक के गरम लहू की अंजली भरकर पटेल के मुंह पर दे मारी। पटेल की धौली मूंछें लाल हो गईं। भिया की आंखों में अंधेरा छा गया और उसका शरीर पीपल के पत्ते की भांति कांपने लगा। यह देख पटेल की स्त्री घबराई। उसे शंका हुई कि कहीं दुःख से घबराकर पटेल राजकुमारों का भेद न बता दे, जिससे हमारी सारी कमाई धूल में मिल जाए और दुनिया में हमारा मुंह काला हो। वह झोंपड़ी से निकलकर पटेल के पास आई। उसने उसके कान के पास मुंह लगाकर धीरे से कहा, 'हिम्मत न हारना, हमारा जन्म तो कुत्ते का-सा है। मैं जिन्दा रही तो और पुत्र जनूंगी। पर तुम इस समय मोह में पड़कर राजवंश का नाश न करा बैठना। छाती को मजबूत रखना।'

पत्नी के वचन सुन पटेल ने आंसू पोंछ डाले। वह तनकर राजा के सामने खड़ा हो गया। राजा ने एक-एक कर उसके चार और पुत्रों को भी तलवार के घाट उतार दिए। पटेल और उसकी स्त्री उसी भांति अचल-अटल खड़े रहे। उनकी मुख-मुद्रा से अथवा अंग-चेष्टा से दुःख का कोई चिह्न नहीं प्रकट हो रहा था।

सारी धरती लहू से लाल हो गई थी। सात लाशें खण्ड-खण्ड भूमि पर पड़ी थीं, जिनसे रह-रहकर गरम रक्त रिस रहा था। पटेल और उसकी पत्नी अचल पर्वत की भांति सामने खड़े थे। यह सब हृदय-विदारक दृश्य देख रावण के भायात शिवजी लुहाणा, जो उस समय रावणसिंह के साथ था, का हृदय द्रवित हो उठा। उसने कहा, 'महाराज, जिसकी आंखों के आगे सात पुत्रों को बकरों के समान हलाल कर दिया गया, तो भी कुमारों के सम्बन्ध में कोई सूचना नहीं दी, अब आप उससे और क्या आशा रखते हैं। मेरी तो विनती है कि अब इस पटेल और इसकी स्त्री को तथा एक पुत्र को प्राण-दान दीजिए। यदि इस समाचार को जानकर ये सब मियाना लोग बिगड़ बैठे तो आपको और चामुण्डराय को इस राज्य में रहना दूभर हो जाएगा।'

पर रावण ने इस ठाकुर की बात सुनी-अनसुनी करके पटेल को लक्ष्य करके कहा, 'जो अब भी तुझे जीवित रहने की इच्छा है, तो कुमारों का पता बता दे,

मैं तुझे भारी जागीरदार बना दूंगा।'

परन्तु पटेल ने स्थिर शान्त कंठ से कहा, 'मैं कुछ नहीं कह सकता और जीवन का मुझे कुछ भी मोह नहीं है।'

पटेल का यह उत्तर सुनकर जाम रावण ने सिंह के समान गर्जना की। और शिवजी को सम्बोधन करके कहा, 'शिवजी भाई, तुम हमारे अत्यन्त विश्वासपात्र शुभचिन्तक हो। मैं तुम्हींको इन गंजियों में से राजकुमारों को ढूंढ़ निकालने का काम सौंपता हूं। सहायता के लिए आदमी ले लो और यत्न से तलाश करो। तुम यदि राजकुमारों को खोज निकालने में सफल हुए तो तुम्हारा मान-वैभव राज्य में अब से चौगुना हो जाएगा।'

'जैसी महाराज की आज्ञा', शिवजी ने नम्रता से कहा।

शिवजी लुहाणा एक वीर राजपूत था और उसके मन में रावणसिंह के इस क्रूर कर्म से उसके प्रति तिरस्कार का भाव उग आया था। उसने कुछ सिपाहियों को आज्ञा दी कि वे घास की गंजियों को चूंथ-चूंथकर राजकुमारों की खोज करें।

परन्तु एक बूढ़े सिपाही ने कहा, 'महाराज, इस प्रकार तो खोज-जांच में कई दिन लग जाएंगे। गंजियों को चारों ओर से भालों से छेदा जाए। यदि गंजी में राजकुमार छिपे होंगे तो भाले की अणी उनके अंगों में छिद जाएगी और जब लहू से भरी अणी बाहर निकलेगी तो उन्हें निकालकर कैद कर लिया जाएगा।'

शिवजी ने कहा, 'अच्छा, तो ऐसा ही करो।' यद्यपि उसने सिपाही के इस प्रस्ताव का अनुमोदन कर दिया था, परन्तु उसका धर्मभीरु मन यह चाह रहा था कि राजकुमारों का पता न चले तो ही अच्छा है। उसके मन में यह भी भावना दृढ़ हो रही थी कि कदाचित् राजकुमार मिल भी गए तो उन्हें बचाने के लिए आवश्यकता होगी तो वह रावण का सामना करेगा।

ज्योंही सिपाहियों ने गंजी में भाले भोंकने आरम्भ किए, भिया मियाना की आंखों का तेज बुझ गया और उसकी आंखों से गंगा-जमुना की धार बह चली। उसकी स्त्री भी आंचल में मुंह छिपाकर रोने लगी। पर अब तो और कोई उपाय ही न था।

सब मिलाकर सत्रह गंजियां थीं। सिपाही उनमें चारों ओर से भाले छेद-छेदकर देखने लगे। सोलह गंजियां देख ली गईं तब वे बीच की गंजी के निकट

आए । इस समय शिवजी भी इन सिपाहियों के साथ थे । सिपाही अब थक गए थे और उनके हाथ ढीले पड़ रहे थे । भिया मियाना मुंह फाड़कर शिवजी की ओर ताकने लगा । शिवजी को सत्य बात समझने में देर न लगी । उन्होंने आगे बढ़कर सिपाहियों से कहा, 'तुम सब हट जाओ और एक भाला हमें दो ।' एक सिपाही ने भाला उन्हें थमा दिया और सलाम करके पीछे हट गया । शिवजी ने भाला गंजी में भोंका । उसकी अणी युवराज खंगार की जांघ में घुसी और वह लहू से भरी निकली । शिवजी को अब निश्चय हो गया कि कुमार यहीं हैं । उसने तुरन्त निराशा का भाव प्रकट करते हुए भाले की अणी धरती में भोंक दी । लहू लगी अणी मिट्टी में धंस गई । शिवजी ने भिया पटेल से आंखें मिलाईं, आंखों ही में कुछ संकेत किया और रावण के सम्मुख जाकर कहा, 'महाराज, इन गंजियों में राजकुमार नहीं हैं ।'

यह सुनकर जाम रावण अत्यन्त निराश और क्षुब्ध हुआ । उसने कुएं और बावली में भी तलाश कराई । परन्तु कुमार नहीं मिले । कुछ लज्जा और पश्चात्ताप से उसने भिया पटेल को लक्ष्य करके कहा, 'पटेल, राजाज्ञा के कारण तुझे आज भारी संकट झेलना पड़ा । पर जो होना था, वह हो गया । आज से सीमासहित यह गांव तुझे बख्शीश देता हूं । और गांव में आग लगाई, लोगों की जानमाल की हानि हुई, उसका हरजाना राज्य से मिलेगा । हमारी आज्ञा है, तुम लोग फिर से घर-गांव बसाकर खुशी से रहो ।'

भिया पटेल ने कहा, 'महाराज, आपकी राज्य-प्राप्ति के शुभ क्षण में मुझ सेवक को ऐसी बख्शीश मिल गई है कि जिसे पीढ़ियों तक मेरे वंश में कोई नहीं भूल सकेगा । अब कृपा करके पटेल की यह पाग लीजिए और किसी दूसरे भाग्यवान के मस्तक पर सुशोभित कीजिए, जिससे इस दीन दास को और उसके वंश में किसीको भविष्य में ऐसी बख्शीश मिलने की सम्भावना न रहे ।'

पटेल के इस भाषण से अप्रसन्न होकर रावण ने वह पाग पटेल से लेकर एक दूसरे मियाना के सिर पर रख दी और फिर बिना एक शब्द कहे अपने लश्करसहित वहां से चला गया ।

जाम को दल-बल सहित वहां से जाता देख भिया मियाना ने खुदा का शुक्रिया

अदा किया। उसकी स्त्री ने कहा, 'हमारे बच्चों का बलिदान सफल तो हुआ। बड़ी बात हुई।' फिर सभी बचे हुए मियाने एकत्र हुए और सलाह करने लगे। इस जुल्म का बदला कैसे लिया जाए। तब वृद्ध भिया ने कहा, 'भाइयो, राजा से बैर का बदला राजा ही ले सकता है। हम तो रैयत हैं। बड़ी बात हुई कि हमारी आन रह गई। अब जैसे बने कुमारों को सही-सलामत यहां से रवाना करो।'

संध्या का अन्धकार बढ़ने पर भिया ने राजकुमारों को बाहर निकाला। दोनों राजकुमार अभी बालक ही थे, पर वे बहुत-कुछ अपनी विपत्ति और अपने जीवन-दाता के त्याग को समझ गए। उन्होंने वृद्ध पटेल को अपना धर्म-पिता कहकर प्रणाम किया। पटेल और उसकी पत्नी ने दोनों राजकुमारों को छाती से लगाकर बहुत-बहुत आंसू बहाए। छच्छरबूटा को टेकरी की गुफा से बुलाया गया। भिया मियाना पर जो बीती थी, उसे सुनकर उसने सिर धुन लिया। पर पटेल ने आंसू पोंछकर कहा, 'सरदार, यह तो संसार का चक्र है। जो होना था, हुआ। चलो, अब राजकुमारों को सुरक्षित स्थान पर पहुंचा दो।'

सवारी का कोई प्रबन्ध नहीं हो सकता था। परन्तु विलम्ब करना भी घातक था। छच्छरबूटा ने युवराज खंगारजी को कंधे पर उठा लिया और पटेल ने दूसरे राजकुमार को। और दोनों धीरे-धीरे वृद्ध लाठी टेकते अन्धकार में खो गए।

रूठी रानी

रूप और यौवन में अपूर्व उस सुन्दर राजकुमारी का मान भी अडिग था। पिता के दुश्मन की अर्धांगिनी बनकर भी २७ वर्ष तक पति-प्रेम को ठुकराते हुए एक दिन सती हो गई……

अब से पौने चार सौ वर्ष पहिले जैसलमेर के रावल लुनकरण को एक पुत्री का जन्म हुआ। उसके जन्म लेने से राजपूताने में हलचल मच गई। जैसलमेर की सुन्दरियां उन दिनों जगद्विख्यात थीं, पर लूनकरण की यह बेटी उन सबमें अलौकिक थी। ज्यों-ज्यों वह शशिकला बढ़ती गई उसके सौन्दर्य की धूम मचती ही गई। देखते-देखते राजपूताने भर के राजाओं ने उसकी याचना की। सखियां सोचती थीं—देखें, किस भाग्यवान् को यह अछूता पुष्प लाभ होता है। कुमारी का नाम उमा था, सखियां बड़े-बड़े राजकुमारों के रूप-गुण का बखानकर उसके मन की थाह लेती थीं, पर वह अपने रूप के नशे में किसीको कुछ गिनती ही न थी। उसकी हठ निराली थी, तथा साहस और आत्म-सम्मान का भाव बेढब था। संसार से निराला उसका स्वभाव था, वह छुई-मुई थी। उंगली दिखाई और वह मुर्झाई। जब वह सयानी हुई तो माता-पिता को उसके ब्याह की चिन्ता हुई।

'महाराज, आप बेसुध बैठे हैं, उमा सयानी हो गई। उसके हाथ पीले करने की चिन्ता कीजिए। बेटी बाप के घर नहीं खपती।'

'मुझे भी ध्यान है, पर चिन्ता क्या है? राजा लोगों में चर्चा हो रही है, सांझ-सबेरे कहीं न कहीं से सन्देश भी आ जाएगा। उमा को मांगते तो सब हैं पर उसके स्वभाव से डरता हूं—पराये घर कैसे निभेगी?'

'आप भी तो अपनी ओर से किसीको लिखिए?'

'मैं जिसे लिखूंगा उसका मिजाज आकाश पर चढ़ जाएगा। मैं भी तो राजपूत हूं, किसीका घमण्ड नहीं देख सकता।'

'सो तो ठीक है, पर जब बेटी जनमी है, तो किसीको दामाद तो बनाना ही पड़ेगा।'

'पड़ेगा तो, सोच रहा हूं। हां, मारवाड़ के राव मालदेव ने भी पत्र भेजा है।'

'मालदेव ने क्या लिखा है ?'

'लिखा है, आपका-हमारा सम्बन्ध ठेठ से चला आता है, कुछ नई बात नहीं है।'

'तो हानि क्या है ! घर-वर दोनों अच्छे हैं।'

'खाक अच्छे हैं, मेरा सारा देश लूट-पाट कर उजाड़ दिया, अब बेटी मांगता है।'

'बेटी तो देनी ही है, मालदेव ही को दो, जिससे दुश्मनी तो मिटे।'

(स्वगत) 'बात तो सच है, घर बैठे शिकार फंसाने का अवसर है, चूकना न चाहिए।'

'क्या सोचने लगे ?'

'कुछ नहीं, मैं सोचता हूं कि तुम्हारी बात ठीक है, राव मालदेव से कह देना चाहिए।'

'तो आज ही सोने, चांदी के नारियल का टीका भेज दीजिए।

'मैं अभी पुरोहित को बुलाता हूं, सब प्रबन्ध हो जाएगा।'

'क्या बरात द्वार पर आ गई ? तोरण बंधाने की तय्यारी करिए महाराज।'

'करता हूं रानी, तनिक झरोखे से दूल्हे को तो देखो, यही है वह जिसके डर से मुझे रात को नींद नहीं आती। अब यह मेरे द्वार पर तोरण बांधेगा। अहा हा ! मेरे उसी द्वार पर तोरण बांधेगा जो बहुधा उसीके भय से बन्द रहता है, पर देखती रहो, मैं भी क्या करता हूं। जो चौरी में से जीता निकल गया, तो मैं रावल नहीं। बेटी तो विधवा होगी पर दिल का कांटा निकल जाएगा, राजपूताने भर को चैन से सोना मिलेगा।'

'हाय-हाय ! यह क्या सोच रहे हो, क्या जमाई से दगा करनी बिचारी है।'

'चुप रहो रानी, रोओ-चीखो मत, रोओगी तो बात फूट जाएगी, फिर यह भेड़िया हम सबको खा जाएगा। देखती नहीं हो, ब्याहने आया है पर कितनी फौज साथ लाया है। यह तो एक दिन में ही घड़सीसर का सब पानी पी जाएगी, हम

और नगर के आदमी प्यासे ही मर जाएंगे।'

'हाय रे क्षत्रिय जाति ! क्या करूं ! फूल-सी बेटी को कैसे विधवा होने दूं ?'

'रानी, चुप रहने ही में भलाई है।'

'मैं चुप हूं महाराज, जो जंचे सो करो।'

'मां, रोती क्यों हो !'

'बेटी क्या करूं।'

'मैं चली जाऊंगी इसलिए......'

'हाय बेटी, कहने की बात नहीं।'

'कहो मां।'

'अरी बेटी, बेटी तो बिना सींग की गाय है, जब मां-बाप ही उसपर अत्याचार करें तो किससे कहे।'

'बात क्या है मां ?'

'तेरे भाग्य फूटे दीखते हैं।'

'समझ गई, तो पिता जी ने दगा बिचारी है, आज ही रात को मुझे सुहाग और रंडापा मिलने वाला है, क्यों ?'

'हाय, चुप रहो बेटी, बात फूटते ही अनर्थ हो जाएगा।'

'वाह मां, बात फूटने की एक ही कही।'

'बेटी, वह बड़ा ज़ालिम है।'

'देखा जाएगा मां, तुम अपना काम करो।'

'बस करो सखियो।'

'ठहरिए, यह मोतियों की मांग तो भरने दीजिए राजकुमारी।'

'हाय, पैर हिला दिया, मेंहदी गिर गई, अभी उसी तरह बैठी रहो।'

'मुझे यह सब नहीं सुहाता।'

'क्यों सुहाएगा, कुमारी जी ? अब सुहावना दूल्हा ही सुहाएगा, पर यह फूलों की चोटी तो गूंथने दो।'

'तुम सब बड़ी दुष्ट हो, छोड़ दो मुझे।'

'छोड़ना तो पड़ेगा ही, पर थोड़ी देर और।'

'बस अब नहीं, जाओ तुम सब।'
'चलो री सखियो, यहां से चलें।
'चलो फिर, कुमारी जी, किसीको भेज दें ?'
'भारेली को भेज दो।'
'ठीक है—संदेश ले जाने में वही चतुर है।'
'जाओ, बकवाद न करो।'

'भारेली !'
'बाईजी राज।'
'कुछ सुना ?'
'नहीं तो !'
'अम्मा को देखा ?'
'भरे हुए बादल-सी फिर रही हैं। आंसू रुकते ही नहीं।'
'कारण समझा ?'
'कारण तो समझा हुआ है—प्यारी बेटी की विदा।'
'अरी बावली, मेरा तो सुहाग और रंडापा सब आज ही हो जाएगा।'
'हैं !'
'कहती हूं न।'
'क्या बात है ?'
'कान में सुन।'
'अब क्या करना चाहिए ?'
'तू भेस बदलकर चुपचाप राघोजी जोशी के यहां जा और सब हाल कह आ।'
'अभी चली।'
'पर देख किसीको कानोंकान खबर न हो।'

'क्या आपने आज किसी कन्या के ब्याह का मुहूर्त शोधा है ?'
'केवल रावलजी की कन्या उमादे का ब्याह शोधा है।'
'आप नगर में और भी कहीं मुहूर्त शोधते हैं ?'

'सारे नगर में इस काम के लिए मैं ही बुलाया जाता हूं।'
'आप जिस कन्या का लग्न मुहूर्त शोधते हैं, वह कै घड़ी सुहागन रहती है?'
'तू क्या मुझसे दिल्लगी करती है?'
'नहीं।'
'फिर?'
'मैंने एक गड़बड़ी की बात सुनी है।'
'कौन-सी बात?'
'आप एक बार फिर मुहूर्त शोधकर देख लीजिए।'
'मुहूर्त में खोट नहीं है।'
'तो भाग्य में खोट होगा।'
'नहीं, मैंने जन्म-पत्र देख लिया है।'
'अजी कर्मपत्र तो नहीं देखा, आज बाईजी का कर्म फूटेगा।'
'क्या रावलजी ने कुछ दगा बिचारी है?'
'हां।'
'राम-राम, राजाओं को धिक्कार है।'
'महाराज, कुछ उपाय कीजिए, धिक्कार देने से क्या होगा?'
'मैं गरीब ब्राह्मण क्या कर सकता हूं।'
'सब कुछ कर सकते हैं।'
'तू ही बता क्या करूं?'
'अच्छे जोशी हुए। राजदरबार जाते हैं—और अब मुझसे उपाय पूछते हैं?'
'तू बुद्धिमती प्रतीत होती है—बता क्या करूं?'
'तुरन्त राव मालदेव के यहां जाकर उन्हें सावधान कर दीजिए।'
'बात तो ठीक है।'
'तो मैं बाईजी से कह दूं।'
'क्या तू भारेली है?'
'जी हां।'
'अच्छा कह दे, मैं अभी जाता हूं।'

'रावलजी की जय हो, महाराज वरौठी का मुहूर्त आ गया है, सवारी की

आज्ञा दीजिए।'

'अच्छा, बरात वालों को भी कहला भेजो।'

'हां, एक बात मुझे मारवाड़ के ज्योतिषियों से पूछनी है।'

'कौन-सी बात ?'

'जन्म-पत्र से तो नहीं, पर बोलते नाम से आज राव मालदेवजी को चौथा चन्द्रमा और आठवां सूर्य है, दोनों ग्रह घातक हैं, कोई ग्रह बारहवां नहीं है, नहीं तो...'

'जाने दीजिए, वहां ज्योतिषियों ने देख-भाल लिया होगा। आपके कहने से व्यर्थ आशंका बढ़ेगी।'

'नहीं, मेरा धर्म है कि उनसे कहकर समाधान करा दूं।'

'कैसा समाधान ?'

'यही दान-दक्षिणा आदि।'

'यह काम यहीं हमारी तरफ से करा दीजिए।'

'जी नहीं, यह उन्हींकी तरफ से होना चाहिए, मैं सामग्री बता आऊंगा।'

'खैर तो, आप झटपट आ जाइए।'

'बस गया और आया।'

'महाराज, राघोजी जोशी आए हैं।'

'आने दो, वे बड़े भारी ज्योतिषी हैं, उन्हें आदर से ले आओ।'

'पधारिए महाराज, आपका आना कैसे हुआ ?'

'कुछ मुहूर्त बताना था।'

'कहिए।'

'केवल आपही को सुनना चाहिए।'

यह सुन सब लोग वहां से हट गए।

'सावधान, रावल जी ने दगा बिचारी है, आप चौरी से लौटने न पाएंगे।'

'ऐसी बात है ?'

'आप धीर-वीर, बुद्धिमान हैं अधिक कहने का अवसर नहीं है, अब मैं जाता हूं।'

'आप चिन्ता न करें, मैं सब ठीक कर लूंगा।'

धौंसे बजने लगे। रावलजी अगवानी लेकर आगे बढ़े, राव मालदेव मौर बांध, सेहरा लगा घोड़े की पूजा कर सवार हुए। अगल-बगल जीता और कूपा सूरमा थे, कमर में दुहरी तलवार थी।'

आगे जाजम बिछी थी, गद्दी तकिए लगे थे। रावलजी ने आगे बढ़कर स्वागत किया, दोनों गले लगकर मिले, अब निशान का हाथी आगे बढ़ा। दोनों साथ-साथ किले में पहुंचे। रावजी ने तोरण बांधा, दोनों राजा मसनद पर बैठ गए। भीतर आंगन में ब्याह की तैयारियां हो रही थीं। नाज़र रावजी को बुलाने आया, रावल भी साथ उठे। जीता और कूपा ने दोनों ओर से हाथ पकड़कर उन्हें बैठाते हुए कहा, 'हमें छोड़कर कहां चले रावलजी, जब तक रावजी लौट न आएं यहीं विराजिए।'

रावलजी जान जोखिम में देख बौखलाए-से बैठे रहे। महल में ब्याह हो रहा था, ब्राह्मण वेद-मंत्र पढ़ रहे थे। हथलेवा और गठजोड़ा हो रहा था, फेरे फिर गए, ब्याह हो गया, मालदेव और उमादे पति-पत्नी हो गए। उमादे अपने महल को चली गई। सहेलियां रावजी को उमादे के महलों में ले चलीं।

महल में एक जगह भारेली आदि कुछ सुन्दरियां गा रही थीं; रावजी चलते-चलते ठिठक गए। खवासें दौड़ीं, एक ने चांदनी, दूसरी ने सोजनी, तीसरी ने मसनद लगाई, चौथी ने तकिये लगा दिए, दो-दो खवासें मोरछल ले दाएं-बाएं खड़ी हो गईं, पांच-सात ने शामियाना खड़ा कर दिया, दो चंवर और पंखा झलने लगीं। चैत की सुहावनी रात थी, चांदनी फैली हुई थी, ठण्डी हवा के झोंके चलने लगे, भीनी-भीनी फूलों की सुगन्ध वायु-मण्डल में फैल गई।

भारेली ने आगे बढ़कर मुजरा किया और सोजनी से कुछ हटकर बैठ गई। उसने गाने वालियों से संकेत किया।

दारूड़ा दाखांरो···

तबला खड़का और सारंगी ने सिसकारी ली। गाने वालियों ने आरम्भ किया :

भर ला, ए सुघड़ कलाल दारूड़ा दाखांरो···

जीवन बारां लाखांरो

एक खवास ने पन्ने के हरे प्याले में लाल अंगूरी शराब भरकर रावजी के आगे बढ़ाई। उन्होंने हंसकर पी और प्याला मुहरों से भरकर लौटा दिया। खवास ने उठकर मुजरा किया और गले के मोतियों को रावजी पर बार-बारकर गाने

वालियों पर फेंक दिया। गाने वालियों ने फिर गाया :

दारू पीवो रण चढ़ो राता राखो नैन
बैरी थारा जल मरे, सुख पावेला सैन ।।दारू।।

कलाली ने फिर प्याला भरकर दिया। गाने वालियों ने गाया :

सोरठ रो दोहो भलो, कपड़ो भलो सपेत।
नारी तो निबली भली, घोड़ा भलो कुमेत ।।दारू।।

प्याले पर प्याले बढ़ चले, रावजी मस्त हो सुरा, सुन्दरी और संगीत में डूब गए।

उमा के यहां महफिल सजी थी, मद्य के रत्न-जटित पात्र में गजक तैयार थी, रावजी को बुलाने दासी भेजी गई थी, उनके आने की आशा में गीत गाए जा रहे थे :

महलां पधारो महाराज हो,
दारूरा मारू, महलां पधारो महाराज हो,
कबरी जोऊंछ्र सोजा बाट हो ।। महलां पधारो ।।

उमा हंसकर लजा गई। गाने वालियों ने फिर गाया :

गैला-गैला भूलियां, महलां पड़ी पुकार।
आवण री वेला नहीं, अलबेला राजकुमार ।।महलां पधारो ।।

'दासी !'

'बाईजी राज !'

'रावजी कहां हैं ?'

'वे भारेली के यहां सहेलियों के बीच बैठे हैं, वहां 'दारूड़ो दाखांरो' गाया जा रहा है।'

बिजलियां मांडेलियां, ऊपर ले रलियां।
परदेसी री साजना पतीजे मिलियां ।।

उमा ने क्रोध से कहा :

'खामोश !'

'क्षणभर में सन्नाटा छा गया।

'सब बाहर चली जाओ। आरती के थाल के दीपक बुझा दो, उसे औन्धा

कर दो।

'मैं नहीं जाऊंगी जोशीजी।'

'बाईजी, यह कैसे हो सकता है?'

'मैंने सोच लिया।'

'बाईजी, कल तक तुम्हें रावजी की जान प्यारी थी, क्या आज नहीं है, अब भी तो उनकी जान जोखिम में है।'

'खैर, मैं जाऊंगी, परन्तु रावजी मेरे पास न आ सकेंगे।'

'आप जैसा कहेंगी, वे वैसा ही करेंगे।'

'मैं भी आपके साथ चलूंगा बाईजी, यहां अब मेरा ठिकाना नहीं है।'

'आप भी चलिए।'

'सुखपाल सेवा में उपस्थित है।

'चलिए फिर।'

बरात जोधपुर पहुंची, दीवान ने धूमधाम से स्वागत किया। कोसों तक सेना और दर्शकों का तांता बंध गया, उमा एक नये महल में उतारी गई। रावजी के अनेक रानियां थीं, नई सौत को देखने की सबको हौंस थी। उनमें स्वरूपदे झाली सबसे सुन्दरी थी। रावजी उसके महल में गए तो उसने दौड़कर गले की मोतियों की माला तोड़कर उनपर न्यौछावर की।

'नई रानी के दर्शन हमें भी होने चाहिएं।'

'अब इसमें बाधा क्या है?'

'सुना है महाराज, भट्टानीजी बड़ी मानवती हैं?'

'भट्टानीजी क्या है भाटा (पत्थर) है।'

(हंसकर) 'वाह आपने वड़ा आदर किया, भला भाटा क्यों है?'

'है तो भट्टानी, पर भाटे की वनी है। वड़ा घमण्ड है।'

'वाह! आपसे उसका मान भी न सहा गया?'

'मान की भी एक सीमा है, प्रिये।'

'महाराज, बड़े घर की बेटी, रूप-कुल में श्रेष्ठ, फिर मान न करे, भला मैं गरीब घर की लड़की क्या मान करूंगी!'

'ठीक है, पर है बड़ी कड़ी।'

'चलिए, हम साथ चलें, देखें तो।'

'देखा जाएगा, अभी उसका मान थोड़ा ठण्डा पड़ने दो।'

'देखा उसका घमण्ड ?'

'बड़ी रानी को तो उसने मान दिया, बोली भी उसीसे, हमें तो पूछा भी नहीं।'

'इसे घमण्ड की पूरी सज़ा मिलनी चाहिए।'

'वह तो रावजी से रूठी ही है, रावजी को भी उससे रुठा देना चाहिए।'

'सच कहती हो बहिन, जो उसने एक बार भी हंसकर रावजी की ओर देख लिया तो फिर हम कहीं की न रहीं।'

'चुप—रावजी आ रहे हैं।'

'कहो, देख ली भट्टानी; कैसी है ?'

'बहुत अच्छी, पर अल्हड़ बछेड़ी है।'

'तब दुलत्तियां भी झाड़ती होगी।'

'महाराज, हमें क्या, जो पास जाए वह लात खाए।'

'जिसे लात खाना होगा वह पास जाएगा।'

'बस बात तो यही है।'

'महाराज, हमें क्या, वह अपने बराबर तो महारानी जी को भी नहीं समझती।'

'मैं तो जाकर पछताई, अजब अनघड़ है, न आखों में लाज, न बातों में लोच।'

'अजी वह मिजाज़ में मरी जाती है, न आए का आदर, न गए का मान।'

'महाराज, रूपवती बहुत देखी हैं, पर उसका तो दिमाग ही निराला है।'

'गोरी-चिट्टी है तो क्या—लक्षण तो दो कौड़ी के भी नहीं। बड़े घर आ गई है, नहीं तो सब मान ठिकाने लग जाता।'

'अभी जवानी का नशा है, कल जवानी ढल जाएगी तो सब बल निकल जाएगा।'

'देखा जाएगा—मैं मालदेव हूं।

आकाश पर बदली छाई थी, रावजी उमा के रूठने से और सौतों के बहकाने

से गुस्से में भरे थे। झट जनाने से बाहर निकल आए; आंखों में नशा, दिल में क्रोध और हाथ में खांड़ा था।

'ड्योढ़ियों पर कौन हाज़िर है?'

'घणी खम्मा अन्नदाता, पृथ्वीनाथ पधारो, शुभचिन्तक हाज़िर है।'

'अच्छा, आप हैं ईश्वरदास जी, अभी आप जगते हैं! अच्छा, कोई कहानी तो कहिए।'

'जो आज्ञा विराजिए। सुनिए पृथ्वीनाथ :

मारवाड़ नर नीपजे, नारी जैसलमेर।
तुमरी तों सिन्ध साँतरां, करहल बीकानेर॥

'बस, बारहटजी, आपका यह दोहा तो बिल्कुल ही गलत है।'

'कैसे पृथ्वीनाथ?'

'जैसलमेर की नारी की प्रशंसा आप करते हैं, पर हमें तो वहां की स्त्रियों से कुछ कहना नहीं है।'

'क्यों अन्नदाता, यह क्या आज्ञा करते हैं? जैसलमेर की अच्छी से अच्छी स्त्री उमादे······'

'अजी वह तो फेरों की रात ही से रूठी बैठी है।'

'धन्य महाराज, चलिए अभी मेल करा दूं।'

'बारहटजी, आप चलते तो हैं, पर वह बोलेगी भी नहीं।'

'महाराज, मैं चारण हूं, चारण मरे को बुला सकता है, वह तो जीती है।'

'देखें फिर आपकी करामात।'

'मैं ईश्वरदास बारहट, बाईजी राज से कुछ कहने रावजी के पास से आया हूं।'

'बाईजी परदे के पास बैठी हैं, आप कहिए क्या कहते हैं?'

'बाईजी मुजरा, घणी खम्मा।'

'············'

'बाईजी राज से मेरा मुजरा।'

रावजी ने धीरे से कहा—मैं कहता न था कि यह न बोलेगी, मुरदा बोले, पर यह न बोले।

'बाईजी, मैं भी आप ही के घराने का हूं। इसीसे बाईजी-बाईजी करता हूं। ऐसा न होता तो देखतीं कि आपको और आपके घराने को कैसा लजाता। यह क्या बात है कि मैं तो मुजरा करता हूं और आप जवाब ही नहीं देतीं।'

रानी चुप रही।

'बाई जी, आपने अपने पूर्वज रावल दूदाजी का नाम सुना होगा; जब वे मुसलमानों से लड़कर काम आए तब उनकी रानी ने चारण हुंपाजी से कहा कि राजा का सिर ला दो, मैं सती होऊंगी। पर जब हुंपाजी रणक्षेत्र में गए तो वहां कटे सिरों में रावलजी का सिर मिलना मुश्किल हो गया। तब हुंपाजी ने उनकी प्रशंसा करनी प्रारम्भ की, जिसे सुन सिर हंस पड़ा। सो तुम भी उसी वंश की हो, वह मरकर भी बोला और तुम जीती भी नहीं बोलतीं, क्या तुम्हारे बड़ों का रक्त तुम्हारे शरीर में नहीं है?'

'बाबा जी, मैं देखना चाहती थी कि आपकी वाणी में कैसा प्रभाव है, कहिए क्या कहते हैं? क्यों आए हैं?'

'धन्य बाई, तुम्हारा जन्म चन्द्रवंश में हुआ है, तुम्हारी सौतें कहती हैं, कि तुम चांद को चीरकर निकाली गई हो, पर कुछ कलंक है, वह क्या है, यही पूछने आया हूं।'

'उन्हींसे पूछिए।'

'वे तो स्पष्ट कुछ भी नहीं कहतीं, पर सुना है तुम रावजी से रूठी हो, इसी-को वे कलंक कहती हैं।'

'यह तो उनके लिए सुख की बात है।'

'तुम भी खूब हो बाईराज, सौतों को सुखी और पति को दुखी करती हो।'

'रावजी को रानी-बांदी की पहचान नहीं।'

'रानी रानी है, बांदी बांदी।'

'इसके लिए आप बचन दे सकते हैं?'

'हां।'

'अच्छा हाथ बढ़ाइए।'

ईश्वरदास ने रावजी का हाथ पर्दे में बढ़ा दिया।

'आ! यह तो वही कठोर हाथ हैं।'

'तो और हाथ कहां से आए।'

उमा उठकर चली गई, रावजी भी चले गए। पर बारहटजी बैठे रहे।

'बारहटजी भोजन कीजिए।'

'मैं भोजन नहीं करूंगा।'

'किसलिए ?'

'मुझे बाईजी का बड़ा भरोसा था, पर उन्होंने मेरा तनिक भी लिहाज़ नहीं किया। मैं तो इसीसे रावजी को साथ लाया था। अब तो मुझे यहीं मरना है। क्या कभी बाईजी ने चारणों की चांदी करने की बात नहीं सुनी ?' (रानी आती है।)

'आप भोजन क्यों नहीं करते ?'

'चारण यदि किसी झगड़े में पड़ते हैं और राजपूत उनकी बात नहीं मानते तो चारण को चांदी करके प्राण त्यागना पड़ता है।'

'तो आप क्या मुझपर चांदी करेंगे ?'

'अवश्य करूंगा, नहीं तो रावजी को क्या मुंह दिखाऊंगा।'

'तो आपने मुझे वचन क्यों नहीं दिया ?'

'राजा-रानी के बीच वचन कौन दे ? बीच वाले का काम मेल करा देना है, सो मैं रावजी को ले ही आया था।'

'उन्हें लाने से क्या हुआ ?'

'मेरे प्राणों पर बन आई।'

'आज भोजन तो करें।'

'दूसरे जन्म में करूंगा।'

भारेली ने आगे बढ़कर कहा :

'बारहटजी, बाईजी ने भी अभी भोजन नहीं किया है।'

'वे भोजन करें, उन्हें कौन रोकता है ?'

'भला ऐसा कहीं हुआ है, चारण ड्योढ़ी पर भूखा बैठा हो, और राजपूत जाई भोजन करे।'

'तो बाईजी चारणों का जब इतना आदर करती हैं, तो उनकी बात क्यों नहीं मानतीं।'

'आप क्या कहते हैं ?'

'यही कि रावजी से मेल कर लें।'

'रावजी भी कुछ करेंगे या नहीं ?

'आप जो कहेंगे वही करेंगे, कहिए हाथ जोड़ें, कहिए पांव पड़ें !'

'बाबाजी, यह आप क्या कहते हैं, वे मेरे स्वामी और मैं उनकी दासी हूं। मैं तो रूठने में भी उनसे सब भांति प्रसन्न हूं, वे भी मेरा पूरा मान करते हैं, इसीसे जीती हूं।'

'धन्य बाई, धन्य, अब कहो क्या कहती हो ?'

'आप क्या चाहते हैं ?'

'रूठना छोड़ दो।'

'मेरा तो जी नहीं चाहता, पर खैर लाचार हूं।'

'रावजी वही करेंगे जो तुम कहोगी।'

'मुझे कुछ कहना नहीं है, हां, कोई बात स्वभाव विरुद्ध न हो।'

'तो रावजी को लाऊं या सुखपाल और अर्दली मंगाऊं ?'

अभी नहीं, रात को चलूंगी आप भोजन करें।'

'पहले मैं रावजी से मिल आऊं।'

रावजी की वाछें खिली थीं, आज बहुत दिन की रूठी रानी मिलेगी, राज-भवन सज रहा था। डाड़नें, पातरें इकट्ठी हो रही थीं। शराब के पात्र भरे धरे थे। सर्वत्र रोशनी हो रही थी। गायन प्रारम्भ हुआ। शराब का दौर चला। उमादे को बुलाने बांदी पर बांदी आ रही थीं। अभी उसका शृंगार ही नहीं निबटा था। मांग में मोती भरे जा रहे थे, मन मचल रहा था। बांदी ने कहा :

'पधारिए महारानी, अन्नदाता ताकीद कर रहे हैं।'

'आते-आते आएंगे, जल्दी क्या है। जा भारेली, तू कह दे।'

'बाईजी राज मुझे न भेजिए, अन्धेर हो जाएगा।'

'तू ही जा और लौटकर मेरे साथ चल।'

'वाह भारेली, आज तो तुम्हारे खूब ठाठ हैं। पियो एक प्याला।'

'अन्नदाता क्षमा करें, बाईजी पधार रही हैं।'

'आने दो फिर, उन्होंने तुझे मेरा मन बहलाने को ही भेजा है।'

'महाराज, अनर्थ हो जाएगा मुझे जाने दें।'

'बैठ जा, आने दे उन्हें।'

'महाराज, आप गज़ब कर रहे हैं।'

'उस दिन की तरह आज भी एक प्याला दो।'

भारेली ने मद्य से प्याला भरकर दिया ही था कि उमा ने आकर देख लिया। वह उल्टे पांव लौट गई।

भारेली ने उसे देखकर कहा :

'महाराज अनर्थ हो गया!'

और वह खिड़की से कूदकर बाहर चली गई।

'वाह, दोनों तोते उड़ गए, बारहटजी को बुलाओ।

'अब क्या करूं।'

बारहटजी ने सब कुछ सुनकर कहा—अन्नदाता, आपने अनर्थ किया।

'एक बार फिर मनाकर देखिए।'

'जाता हूं, पर कठिन है।'

'कहिए बारहटजी आपके तो होश उड़े हैं, खैर तो है?'

'पृथ्वीनाथ, राजभवन सूना पड़ा है, रानी बुर्ज में जा बैठी हैं, सखियों ने सफेद चांदनी तानकर परदा कर दिया है। लौंडियां पहरे पर हैं। उर्दू बेगमें नंगी तलवार के लिए खड़ी हैं, मेरा निकट जाने का साहस नहीं हुआ।'

'क्या भट्टानी बुर्ज में जा बैठीं? यह क्या किया?'

'महाराज, बुर्ज का भाग्य खुल गया, आज उसपर सती का वह तेज बरस रहा है, जो पृथ्वीराज के सिंहासन पर भी न बरसा होगा। चांदनी का परदा पड़ा है, नंगी तलवारों का पहरा है!

'तब तो उसे मनाना कठिन है।'

'बहुत कठिन, आपने बहुत अन्धेर किया।'

'अब क्या हो, मैं पछताता हूं।'

'अभी तो बाईजी दो-चार दिन महल में आती दीखतीं नहीं; क्या प्रबन्ध किया जाए?'

'मैं तो कल ही बीकानेर पर चढ़ाई करूंगा, आप वहां बुर्ज के पास कनातें

खड़ी कराकर चौकी पहरे का प्रबन्ध करा दीजिए। जब उसका मिजाज ठण्डा हो जाए तो समझा-बुझाकर जोधपुर ले आइए।'

'जो आज्ञा महाराज।'

'बाई से अर्ज़ करो, दीवान हाज़िर है।'

'दीवान जी क्या चाहते हैं?'

'रावजी के हुक्म से यह रामसर का परगना बाईजी राज के नाम लिखा है, सो हाज़िर है।'

'उसका प्रबन्ध हमारी तरफ से तुम स्वयं करो।'

'जैसी मर्ज़ी।'

'ड्योढ़ी पर किलेदार ने तम्बू-परदे का सब प्रबन्ध कर दिया है, वह सुबह-शाम स्वयं हाज़िर होगा।'

'उसे इस चाकरी का सिरोपाव दिया जाए।'

'जो हुक्म, अजमेर का हाकिम मुजरा करता है।'

'वह क्या कहता है?'

'बाईजी राज, रावजी ने बीकानेर जीत लिया है। पर शेरशाह हुमायूं को भगाकर आगरे आ पहुंचा है। बीकानेर के राजा-रईस सब उससे मिलकर उसे रावजी पर चढ़ाने को ला रहे हैं, रावजी अस्सी हज़ार सेना ले उससे मोरचा लेने आ रहे हैं, सो किले पर जंगी बन्दोबस्त जारी करने का हुक्म हुआ है, आपके लिए जोधपुर पधारने की मर्ज़ी हुई है।'

'मुझे क्या भय है, मैं राजपूत की बेटी हूं, विपत आई, तो जलकर नहीं मरूंगी,—मर्द की तरह लड़ूंगी, रावजी को लिख दो, किला मेरे भरोसे छोड़ दें, और बाकी राज्य का प्रबन्ध स्वयं कर लें।'

'बाईजी राज, ऐसी ही मर्ज़ी है तो जोधपुर का किला आप अधिकार में कर लें, यहां तो भारी मोर्चे की जोखिम है।'

'अच्छा, अजमेर न सही, जोधपुर ही सही, सवारी का प्रबन्ध कर दो। यह मौका न आ जाता, तो मैं यहां से जाना नहीं चाहती थी।'

'बारहटजी, यह क्या बात है, सौत हमारी छाती पर चली आ रही है, इस बला

को टालिए । वह किले का अधिकार लेगी तो हम उसकी दबैल होकर रहेंगी ?'

'क्या करूं, मेरा भतीजा ईश्वरदास उसे ला रहा है, वह कपूत तो मेरे कहे में नहीं ।'

'भट्टानी यहां न आने पाए ।'

'न कैसे आने पाए, सवारी तो चल चुकी, कल-परसों जोधपुर आ ही पहुंचती है।'

'उसे राह ही में रोक दो, हम आपको खुश करेंगी ।'

'जाकर देखता हूं, सवारी कोसाना तक आ चुकी है।'

'जाओ और उसे रोको।'

रूठी रानी की सवारी आ रही थी, आगे निशान का हाथी था। सवारी का तांता बंधा था, हाथी के पीछे नौबतखाना था, उसके पीछे घोड़ों पर नक्कारा बजता था जिसकी आवाज़ बारह कोस से सुनाई देती थी। पीछे सजे हुए ऊंट और चीलों का झंडा हवा में उड़ता दिखाई देता था । झण्डे के पीछे रणबंका बरछैत राठौरों का एक रिसाला था, फिर एक कतार बन्दूकचियों की, उनके पीछे तीरन्दाज़, फिर ढाल-तलवार वाले राजपूत थे, आगे कुछ दूर मैदान खाली रखकर कोतल हाथी और घोड़े चलते थे, उनके पीछे नकीब, चोबदार, सोने-चांदी के आसे लिए हुए प्रबन्ध करते चलते थे। बारहट ईश्वरदास भी पांचों हथियार लगाए एक चालक घोड़े पर अकड़े बैठे थे।

आसाजी को देख ईश्वरदास ने घोड़े से उतर मुजरा किया, दोनों खड़े हो सवारी देखने लगे। सवारी बढ़ रही थी।

एक झुण्ड सजी और कसी-कसाई पालकियों का आया, उनमें कुछ के पास तीर-कमान और तलवारें थीं। उन्हींके झुरमुट में रानी का सुनहला सुखपाल था, उसपर गुलाबी पर्दा पड़ा था, पर्दे पर जगह-जगह चमकीले नग जड़े थे, जिसपर निगाह नहीं ठहरती थी। सुखपाल के पीछे नंगी तलवारों का पहरा था। इसके बाद ज़नानी सवारियां पालकियों, पीनसों और रथों में थीं। उनके पीछे राठौरों का एक रिसाला था और रिसाले के पीछे जुलूस के बाकी कोतल घोड़े, हाथी और ऊंट थे। सबके पीछे फर्राशखाना, तोपखाना और मोदी आदि लाव-लश्कर की ऊंटगाड़ियां थीं।

ज्योंही रूठी रानी का सुखपाल वहां पहुंचा, आसाजी ने ड्योढ़ीदार को पुकार-कर कहा—बाईजी से अर्ज़ करो कि आसा बारहट मुजरा गुज़ारता है और कुछ विनय भी किया चाहता है। इसके बाद उन्होंने ऊंचे स्वर में यह दोहा पढ़ा—

मान रखे तो पीव तज, पीव रखे तज मान।
दोय गयन्द न बाँधिये, एकण खूंटे ठान॥

दोहा सुनते ही रानी ने तुरन्त सवारी रोकने का हुक्म दे दिया। सब चकित रह गए। ईश्वरदास ने बहुत ज़ोर मारा, पर आसा का जादू चल ही गया। रानी ने वहीं कोसाना गांव में डेरे डाल दिए, आसा ने ड्योढ़ी पर जाकर कहा :

'धन्य बाईजी, मान तुम्हारा ही सच्चा और सब कहने की बात है।'

'बाबाजी, यह दोहा फिर पढ़ो, बड़ा सच्चा दोहा है।'

(फिर पढ़कर) 'बाई जी, आप सच्ची मानधनी हैं, आपका यह मान अमर रहेगा।'

बाबाजी, जो यह मान जन्मभर निभे तो बात है।'

'बाईजी, तुम्हारे बाद जीता रहा तो तुम्हारा नाम अमर कर दूंगा।'

'घणी खमा अन्नदाता बाईजी राज, रावजी वीरगति को प्राप्त हुए।'

'रावजी रण में खेत रहे?'

'महाराज, उन्होंने महावीर की मृत्यु पाई।'

'सब रानियां सती हो गईं?'

'स्वरूपदे झाली के सिवा सब रानियां, पातुरें, खवासें सती हो गईं, सब इक्कीस थीं।'

'झाली रानी सती नहीं हुई?'

'उनके पुत्र ने उन्हें रोक लिया था कि सरदार आ जाएं तो उन्हें राजतिलक देने का वचन लेकर सती हों। उन्होंने वचन तो सरदारों से ले लिया पर पुत्र को श्राप दिया कि तूने मुझे पांच दिन अटकाया इससे तेरा राज अटल न रहेगा। कल वह पगड़ी के साथ सती हो गईं।'

'पगड़ी आई है?'

'कार्तिक सुदी पूर्णिमा को आ पहुंचेगी।'

'अब मैं किससे रूठूंगी, जिससे रूठी थी, वही न रहा तो अब जीकर क्या

करूंगी, चिता की तैयारी करो।'

चिता तैयार हुई, वाजे बजे, चन्दन, कपूर, अगर से चिता सजाई गई, दूर-दूर से लोग रूठी रानी को सती होते देखने आए। रूठी रानी घोड़े पर चढ़कर मुहर और रत्न लुटाती, गहने बखेरती बाजार से निकल, चिता में आ बैठी, गोद में पति की पगड़ी थी, आग देनेवाला गांव में कोई न था।

'देखो, यहां कोई राठौर है?'

एक बूढ़ा जेत मालोत कांपता हुआ हाथ जोड़े आया।

'सती माता, मुझपर दया करो, मैं भूखा मरता मारवाड़ छोड़ यहां पेट पालता हूं।'

'डरो मत ठाकरां, स्नान करके चिता में आग दे दो, तुम राठौर हो इसीसे तुम्हें बुलाया है।'

'सती माता, आग तो मैं दे दूंगा, पर जाजम डालकर बारह दिन मैं कहां बैठूंगा, मेरा तो घर भी इतना बड़ा नहीं, कि जोधपुर की रानी को दाह करके शोक की जाजम बिछाकर बैठूं।'

'मुन्शी हाज़िर है?'

'हुक्म अन्नदाता, सती माता।'

'अभी रानाजी को हमारी ओर से चिट्ठी लिख दो कि इस केलोह गांव का और दस हज़ार की पैदा का इस ठाकुर के नाम पुश्त-दर-पुश्त का पट्टा कर दें।'

'जो आज्ञा माता।'

स्नान करके ठाकुर ने चिता में आग दे दी।

इस प्रकार रूठी रानी ब्याह के सत्ताईस वर्ष बाद इस भांति सती होकर अमर हुई।'

जैसलमेर की राजकुमारी

एक राजपुत्री के शौर्यपूर्ण चरित्र और वीरतापूर्ण कार्य-क्षमता की झलक इसमें वर्णित है। अकेली राजकन्या ने कुछ मास तक जैसलमेर दुर्ग की मुगल सैन्य से रक्षा की।

राजकुमारी ने गर्व से हंसकर कहा—पिता, दुर्ग की चिन्ता न कीजिए। जब तक उसका एक भी पत्थर पत्थर से मिला है, उसकी मैं रक्षा करूंगी। चाहे अलाउद्दीन कितनी ही वीरता से हमारे दुर्ग पर आक्रमण करे, आप निर्भय होकर शत्रु से लोहा लीजिए।

यह जैसलमेर के राठौर दुर्गाधिपति महाराव रत्नसिंह की कन्या थी। यह इस समय बलिष्ठ अरबी घोड़े पर चढ़ी हुई थी और मर्दानी पोशाक पहने थी। उसकी कमर में दो तलवारें लटक रही थीं। कमरबन्द में पेशकब्ज, पीठ पर तरकस और हाथ में धनुष था। वह चपल घोड़े की रास को बलपूर्वक खींच रही थी जो एक क्षण भी स्थिर रहना नहीं चाहता था।

रत्नसिंह जिरह बख्तर पहने एक हाथी के फौलादी हौदे पर बैठे आक्रमण के लिए प्रस्थान कर रहे थे। सामने सहस्रावधि राजपूत सवार नंगी तलवारें लिए मैदान में खड़े थे। उनके घोड़े हिनहिना रहे थे और शस्त्र झनझना रहे थे।

रत्नसिंह ने पुत्री के कंधे पर हाथ धरके कहा—बेटी, तुझसे मुझे ऐसी ही आशा है; मैंने तुझे पुत्री की भांति नहीं, पुत्र की भांति पाला और शिक्षा दी है। मैं दुर्ग को तुझे सौंप कर निश्चिन्त हो गया हूं। देखना सावधान रहना। शत्रु केवल वीर ही नहीं, धूर्त और छलिया भी है।

बालिका ने वक्र दृष्टि से पिता को देखा और हंसकर कहा—नहीं, पिता जी, आप निश्चिन्त होकर प्रस्थान करें, किले का बाल भी बांका न होगा।

रत्नसिंह ने एक तीव्र दृष्टि अपने किले के धूप से चकमते हुए कंगूरों पर डाली और हाथी बढ़ाया। गगनभेदी जयनिनाद से धरती-आसमान कांप उठे। एक

विशालकाय सैन्य अजगर की भांति किले के फाटक से निकलकर पर्वत की उपत्यका में विलीन हो गया। इसके बाद घोर चीत्कार करके दुर्ग का फाटक बन्द हो गया।

टिड्डीदल की भांति शत्रु ने दुर्ग घेर रखा था। सब प्रकार की रसद बाहर से आनी बन्द थी। प्रतिदिन यवनदल गोली और तीरों की वर्षा करते थे, पर जैसलमेर का अजेय दुर्ग गर्व से मस्तक उठाए खड़ा था। यवन समझ गए थे कि दुर्ग-विजय करना हंसी-ठट्ठा नहीं है। दुर्ग-रक्षिणी राजनन्दिनी रत्नवती निर्भय अपने दुर्ग में सुरक्षित बैठी शत्रुओं के दांत खट्टे कर रही थी। उसकी आधीनता में पुराने विश्वस्त राजपूत वीर थे जो मृत्यु और जीवन को खेल समझते थे। वह अपनी सखियों समेत दुर्ग के किसी बुर्ज पर चढ़ जाती और यवन सेना का ठट्ठा उड़ाती हुई वहां से सन-सनाते तीरों की वर्षा करती। वह कहती—मैं स्त्री हूं, पर अबला नहीं। मुझमें मर्दों जैसा साहस और हिम्मत है। मेरी सहेलियां भी देखने भर की स्त्रियां हैं। मैं इन पापिष्ठ यवनों को समझती क्या हूं?

उसकी बातें सुन सहेलियां ठठाकर हंस देती थीं। प्रबल यवनदल द्वारा आक्रान्त दुर्ग में बैठना राजकुमारी के लिए एक विनोद था।

मलिक काफूर एक गुलाम था, जो यवन-सेना का अधिपति था। वह दृढ़ता और शान्ति से राजकुमारी की चोटें सह रहा था। उसने सोचा था कि जब किले में खाद्यपदार्थ कम हो जाएंगे, दुर्ग वश में आ जाएगा। फिर भी वह समय-समय पर दुर्ग पर आक्रमण कर देता था, परन्तु दुर्ग की चट्टानों और भारी दीवारों को कोई क्षति नहीं पहुंचती थी। राजकुमारी बहुधा बुर्ज पर से कहती—ये धूर्त गर्द उड़ाकर और गोली बरसाकर मेरे किले को गन्दा कर रहे हैं। इससे क्या लाभ होगा?

यवनदल ने एक बार दुर्ग पर प्रबल आक्रमण किया। राजकुमारी चुपचाप बैठी रही। जब शत्रु आधी दूर तक दीवारों पर चढ़ आए तब भारी पत्थरों के ढोंके और गर्म तेल की वह मार पड़ी कि शत्रु-सेना छिन्न-भिन्न हो गई। लोगों के मुंह झुलस गए। कितनों की चटनी बन गई। हज़ारों तौबा-तौबा करके प्राण लेकर भागे। जो प्राचीर तक पहुंचे, उन्हें तलवार के घाट उतार दिया गया।

सूर्य छिप रहा था। प्राची दिशा लाल-लाल हो रही थी। राजकुमारी कुछ चिन्तित भाव से सुदूर पर्वत की उपत्यका में डूबते हुए सूर्य को देख रही थी। उसे चार दिन से पिता का सन्देश नहीं मिला था। वह सोच रही थी कि इस समय पिता को क्या सहायता दी जा सकती है। वह एक बुर्ज के नीचे बैठ गई। धीरे-धीरे अन्धकार बढ़ने लगा। उसने देखा, एक काली मूर्ति धीरे-धीरे पर्वत की तंग राह से किले की ओर अग्रसर हो रही है। उसने समझा, पिता का सन्देशवाहक होगा, वह चुपचाप उत्सुक होकर उधर ही देखती रही। उसे आश्चर्य तब हुआ जब उसने देखा, वह गुप्त द्वार की ओर न जाकर सिंह-द्वार की ओर जा रहा है। तब अवश्य वह शत्रु है। राजकुमारी ने एक तीखा बाण हाथ में लिया और छिपती हुई उस मूर्ति के साथ ही द्वार की पौर के ऊपर आ गई। वह मूर्ति एक गठरी को पीठ से उतारकर प्राचीर पर चढ़ने का उपाय सोच रही थी। राजकुमारी ने धनुष पर बाण चढ़ाकर ललकारकर कहा—वहीं खड़ा रह, और अपना अभिप्राय कह?

कालरूप राजकुमारी को सम्मुख देख वह व्यक्ति भयभीत स्वर में बोला—मुझे किले में आने दीजिए, बहुत ज़रूरी सन्देश है।

'वह सन्देश वहीं से कह?'

'वह अतिशय गोपनीय है?'

'कुछ चिन्ता नहीं, कह।'

'किले में आकर कहूंगा।'

'उससे प्रथम यह तीर तेरे कलेजे के पार हो जाएगा।'

'महाराज विपत्ति में हैं, मैं उनका चर हूं।'

'चिट्ठी हो तो फेंक दे।'

'ज़बानी कहना है।'

'जल्दी कह?'

'यहां से नहीं कह सकता।'

'तब ले।' राजकुमारी ने तीर छोड़ दिया। वह उसके कलेजे को पार करता हुआ निकल गया। राजकुमारी ने सीटी दी। दो सैनिक आ उपस्थित हुए। कुमारी की आज्ञा पा रस्सी के सहारे उन्होंने नीचे जा मृत व्यक्ति को देखा—यवन था। दूसरा व्यक्ति पीठ पर गठरी में बंधा था। यह देख राजकुमारी ज़ोर से हंस पड़ी। इसके बाद वह प्रत्येक बुर्ज पर घूम-घूमकर प्रबन्ध और पहरे का निरीक्षण कर रही

थी। पश्चिमी फाटक पर जाकर उसने देखा, द्वार-रक्षक द्वार पर न था। कुमारी ने पुकारकर कहा—यहां पहरे पर कौन है ?

एक वृद्ध योद्धा ने आगे बढ़कर कुमारी को मुजरा किया। उसने धीरे से कुमारी के कान में कुछ और भी कहा।

वह हंसती-हंसती बोली—ऐसा ? अच्छा वे तुम्हें घूस देंगे, बाबाजी साहब ?

'हां, बेटी', बूढ़ा योद्धा तनिक हंस दिया। उसने गांठ से सोने की पोटली निकालकर कहा—यह देखो इतना सोना है।

'अच्छी बात है। ठहरो, हम उन्हें पागल बना देंगे। बाबा जी, तुम आधी रात को उनकी इच्छानुसार द्वार खोल देना।' वृद्ध भी हंसता हुआ सिर हिलाता हुआ चला गया।

दो बज गए थे। चन्द्रमा की चांदनी छिटक रही थी। कुछ आदमी दुर्ग की ओर छिपे-छिपे आ रहे थे। उनका सरदार मलिक काफूर था। उसके पीछे सौ चुने हुए योद्धा थे। संकेत पाते ही द्वारपाल ने प्रतिज्ञा पूरी की। विशाल महराबदार फाटक खुल गया। सौ व्यक्ति चुपचाप दुर्ग में घुस गए। काफूर ने मन्द स्वर में कहा—यहां तक तो ठीक हुआ। अब हमें उस गुप्त मार्ग से दुर्ग के भीतरी महलों में पहुंचा दो जिसका तुमने वादा किया है।

राजपूत ने कहा—मैं वादे का पक्का हूं, मगर बाकी सोना तो दो।

'यह लो।' यवन सेनापति ने मुहरों की थैली हाथ में धर दी। राजपूत फाटक में ताला बन्दकर चुपचाप प्राचीर की छाया में चला। वह लोमड़ी की भांति चक्कर खाकर कहीं गायब हो गया। यवन सैनिक चक्रव्यूह में फंस गए, न पीछे का रास्ता मिलता था, न आगे का। वास्तव में सब कैद हो गए थे और अपनी मूर्खता पर पछता रहे थे। मलिक काफूर दांत पीस रहा था। राजकुमारी की सहेलियां इतने चूहों को चूहेदानी में फंसाकर हंस रही थीं।

यवन-सैन्य का घेरा दुर्भेद्य था। खाद्य सामग्री धीरे-धीरे कम हो रही थी। घेरे के बीच से किसीका आना अशक्य था। राजपूत भूखों मर रहे थे। राजकुमारी का शरीर पीला हो गया था। उसके अंग शिथिल हो गए थे, पर नेत्रों का तेज वैसा ही था। उसे कैदियों के भोजन की बड़ी चिन्ता थी। किले का प्रत्येक आदमी

उसे देवी की भांति पूजता था।

उसने मलिक काफूर के पास जाकर कहा :

'यवन सेनापति, मुझे आपसे कुछ परामर्श करना है, मैं विवश हो गई हूं। दुर्ग में खाद्य-सामग्री बहुत कम हो गई है और मुझे यह संकोच हो रहा है कि आपकी कैसे अतिथि-सेवा की जाए। अब कल से हम लोग एक मुट्ठी अन्न लेंगे और आप लोगों को दो मुट्ठी उस समय तक मिलेगा जब तक कि अन्न दुर्ग में रहेगा। आगे ईश्वर मालिक है।'

मलिक काफूर की आंखों में आंसू भर आए। उसने कहा :

'राजकुमारी, मुझे यकीन है कि आप बीस किलों की हिफाजत कर सकती हैं।'

'हां, यदि मेरे पास हों तो', राजकुमारी चली आई।

अठारह सप्ताह और बीत गए।

अलाउद्दीन के गुप्तचर ने आकर सुलतान को कोर्निस किया।

सुलतान ने पूछा, 'क्या राजकुमारी रत्नवती किला देने को तैयार हैं।'

'नहीं, खुदाबन्द, वहां किसी तरकीब से रसद पहुंच गई है। किला नौ महीने और पड़े रहने पर भी हाथ न आएगा। फिर पानी अब किसी तालाब में नहीं है।'

'और क्या खबर है ?'

'रत्नसिंह ने मालवे तक शाही सेना को खदेड़ दिया है।'

अलाउद्दीन हतबुद्धि हो गया और महाराव से सन्धि का प्रस्ताव किया।

सुन्दर प्रभात था। राजकुमारी ने दुर्ग-प्राचीर पर खड़ी होकर देखा, शाही सेना डेरे-डंडे उखाड़कर जा रही है। और महाराव रत्नसिंह अपने सूर्यमुखी झंडे को फहराते विजयी राजपूतों के साथ दुर्ग की ओर आ रहे हैं।

मंगल-कलश सजे थे। बाजे बज रहे थे; दुर्ग में प्रत्येक वीर को पुरस्कार मिल रहा था ! मलिक काफूर महाराव की बगल में बैठे थे। महाराव ने कहा—खां साहिब, किले में मेरी गैरहाजरी में आपको तकलीफ और असुविधाएं हुई होंगी, इसके लिए आप माफ करेंगे। युद्ध के नियम सख्त होते हैं, फिर किले पर भारी मुसीबत आई थी, लड़की अकेली थी, जो बन सका किया।

काफूर ने कहा—महाराज, राजकुमारी तो पूजने लायक हैं, यह इन्सान नहीं

फरिश्ता हैं। मैं ताज़िन्दगी इनकी मेहरबानी नहीं भूल सकता।'

महाराव ने एक बहुमूल्य सरपेच उन्हें दिया, और पान का बीड़ा देकर विदा किया।

दुर्ग में धौंसा बज रहा था।

वीर बादल

चित्तौड़ की महारानी पद्मिनी की प्रतिष्ठा एक अल्प वयस्क वीर बालक ने किस शौर्य और साहस से बचाई, इस कहानी में यही चित्रित है।

तेरहवीं शताब्दी बीत रही थी। निर्दय और इन्द्रियलोलुप पठान अलाउद्दीन खिलजी भारत का सम्राट् था। उसने अपनी दुर्धर्ष सेना के बल पर राजपूताना को कुचल डाला था। और अब वह राजपूताने की बची-खुची आबरू को लूटने के लिए दलबल सहित चित्तौड़ पर चढ़ आया था। चित्तौड़ पर दुर्भाग्य उदय हुआ था। इस बार उसका इरादा चित्तौड़-विजय का न था प्रत्युत चित्तौड़ की महारानी पद्मिनी को हरण करने का था। चित्तौड़ की आंतरिक अवस्था अच्छी न थी, राणा लक्ष्मणसिंह नाबालिग थे और उनके चाचा भीमसिंह चित्तौड़ के कर्ता-धर्ता थे, पद्मिनी भीमसिंह की पत्नी थी। वह पद्मराग मणि के समान सुन्दर और कान्ति वाली थी। उसके सौन्दर्य की तारीफ राजपूताने भर में फैली हुई थी और सौन्दर्यलोलुप अलाउद्दीन खिजली पूरी शक्ति से उस सौन्दर्य-कुसुम को लूटने चित्तौड़ पर चढ़ आया था।

किला चारों ओर से घिरा हुआ था और किसी भी आदमी का किले से बाहर जाना या बाहर से भीतर आना सम्भव न था। किले में खाद्य-सामग्री अभी इतनी थी कि वर्षों घेरा पड़ा रहने पर भी उसकी कमी न होती। परन्तु पानी का अभाव था। लोगों ने प्रथम स्नान आदि बन्द किए। अब पीने में भी किफायत पर नौबत आ पहुंची। अलाउद्दीन को चित्तौड़ को घेरे नौ मास हो चुके थे। किला फतह होने की कोई युक्ति उसे सूझ न पड़ी थी। भारतीय राजनीति का वातावरण उस समय अत्यन्त क्षुब्ध था। मालवा, गुजरात, बंगाल और दिल्ली से अशान्तिपूर्ण खबरें आ रही थीं। अलाउद्दीन ने समझा कि इस सौन्दर्य की देवी के पीछे कहीं हिन्द का तख्त ही न खोना पड़े, वह जल्द से जल्द चित्तौड़ के मामले को खतम करने का मन्सूबा बांधने लगा। मन ही मन उसने कपट का जाल बिछाया और फिर सुलह का झण्डा

लेकर किले में संवाद भेज दिया।

सुलह का झण्डा देखकर किले का फाटक खुल गया। दूत भीत मुद्रा से किले में गया। विकट आकृति राजपूत उसे सन्देह और क्रोध से देख रहे थे। उसने राणा भीमसिंह की राजसभा में जाकर विनयपूर्वक यह निवेदन किया कि सुलतान चित्तौड़ के राणा से बराबर की दोस्ती करना चाहते हैं। उनकी मन्शा, न चित्तौड़ छीनने की है न महारानी को हरण करने की। अगर महाराणा अपनी दोस्ती का सबूत दें तो सुलतान अभी दिल्ली को लौट जाएं। दोस्ती के सबूत में सुलतान केवल यह चाहते हैं कि उन्हें केवल एक बार महारानी की झलक दिखा दी जाए। और कुछ नहीं।

गर्वीले राजपूतों को दूत का यह प्रस्ताव अत्यन्त अपमानजनक प्रतीत हुआ, उन्होंने तलवारें खींच लीं, और भांति-भांति के कुवाक्य दूत और सुलतान को कहा। प्रत्येक राजपूत इस अपमान के बदले अपने प्राण देने के लिए तैयार था, पर राणा भीमसिंह गम्भीर चिन्ता में निमग्न थे। उनके ऊपर चित्तौड़ की रक्षा एवं हज़ारों राजपूतों की जीवन रक्षा का दायित्व था। उन्होंने सोचा, क्या सर्वनाश से बचने के लिए यह अपमान सह लिया जाए? उन्होंने अपने मन्त्रियों, सरदारों और भाई-बंदों से और दरबारियों से परामर्श किया और रानी पद्मिनी से भी सब हकीकत कह दी। रानी ने साहसपूर्वक कह दिया कि यदि मेरा यह अपमान करके वह दैत्य टल जाए तो मैं अपनी आबरू का बलिदान देने को तैयार हूं परन्तु प्रत्यक्ष नहीं, दर्पण में ही वह पशु मेरी छवि की एक झलक देख सकता है।

राणा भीमसिंह ने सभासदों को सब ऊंच-नीच समझाकर अन्त में प्रस्ताव की स्वीकृति दे दी। उन्होंने यह शर्त की कि सुलतान अकेले निःशस्त्र किले में आएंगे और दर्पण में महारानी की एक झलक देखकर तुरन्त लौट जाएंगे, तथा तुरन्त ही चित्तौड़ का घेरा उठा लेंगे।

अलाउद्दीन ने राणा की इस उदारता की बड़ी तारीफ की। और मित्रता की बहुत लम्बी-चौड़ी बातें राणा के पास भेजीं। ठीक समय पर निःशस्त्र, अकेले किले में आ पहुंचा।

सुलतान का प्रस्ताव अभूतपूर्व था और वह विश्वासी व्यक्ति न था। किले का प्रत्येक राजपूत इसे अपना जातीय अपमान समझे हुए था। परन्तु राणा अपने विचार पर दृढ़ था। वह गम्भीर और मौन था। आज महलों में अद्भुत गम्भी-

रता छाई हुई थी। राजपूत बड़ी-बड़ी काली दाढ़ियों के बीच दांतों की बत्तीसी भींचे, सम्पुटित होंठ किए, बिना बड़ी-बड़ी ढाल कन्धे पर लिए, तलवारें म्यान में किए लाज और अपमान से नीचे आंखें किए खड़े थे। सुलतान सबके बीच साहस और उत्साह की मूर्ति बना धीरे-धीरे आगे बढ़ रहा था। राणा ने किले के फाटक पर उसका स्वागत किया था। राजपूतों के वचन पर उसे भरोसा था। वह निःशस्त्र तथा एकाकी था। वह चपल घोड़े पर सवार था और आगे बढ़ रहा था। उसके बाईं ओर राणा चुपचाप एक घोड़े पर सवार आगे बढ़ रहा था, और पीछे चुने हुए सवार थे। सुलतान अपनी मित्रता और प्रसन्नता प्रकट करने के लिए बहुत-सी बातें करता जाता था।

ज़नाने दरवाज़ों पर सब घोड़ों से उतर पड़े। वे उन सीढ़ियों पर चढ़े जहां किसी यवन के पांव नहीं पड़े थे। राजपूत क्रोध से एवं बांदियां भय से थर-थर कांपती जा रही थीं, सन्नाटा था, विरद गाने वाले चुप बैठे थे, डाढ़िनें अपने मुंह पर घूंघट डालें सिमटी खड़ी थीं। नौबतखाने के नक्कारे औंधे पड़े थे।

सुलतान ने कहा—महाराणा, आज से हम दोनों दोस्त हुए, हुए न, कहिए ?

महाराणा ने खिन्न मन होकर धीरे से कहा—सुलतान की यदि यही इच्छा है तो मैं वचन देता हूं कि राजपूत हमेशा सच्ची दोस्ती निभाएंगे।

'इसका मुझे पूरा भरोसा है, आप देखते हैं कि आपपर मैं यकीन करके खाली हाथ किले में आ गया हूं। उम्मीद है, आप भी मुझे भरोसा देंगे।'

राणा ने गम्भीर स्वर में कहा—तो क्या सुलतान मित्रता की ओर इतना कदम उठाकर भी वह अपमानजनक काम करने का इरादा रखते हैं, जो राजपूतों के लिए बिलकुल नया है ?

'यकीन रखिए, राणा साहब, मेरी नीयत कुछ बुरी नहीं, जैसा हम लोगों में कौल करार हुआ है, उसके पूरा होते ही मैं तुरन्त दिल्ली लौट जाऊंगा।'

राणा ने ठण्डी सांस लेकर एक बार सरदारों की ओर देखा—वे नीची आंखें किए खड़े थे। फिर उसने चांदी की भांति सफेद महलों के आकाश को छूने वाले सुनहरी कंगूरों को देखा जो सूर्य की धूप में चमक रहे थे, तब सूर्यवंश के उस अधिकारी ने एक ठण्डी सांस ली और कहा—तब आइए, राजपूत अपनी बात पूरी करेंगे। दोनों आगे बढ़े, दो कदम बाद सुलतान झिझककर खड़ा हो गया, उसने देखा—सामने पूरे कद के आइने में वह अलौकिक सुन्दरी—जसे रत्नों से जड़ी तस्वीर

हो---लाज से सिर नवाए खड़ी है, एक झलक सुलतान ने देखा, और वह झलक दर्पण से गायब हो गई। सुलतान निश्चल हो गया, इस सौन्दर्य की उसने कभी कल्पना भी न की थी। महाराणा ने कंपित कण्ठ से कहा---राजपूतों का वचन पूरा हुआ, अब सुलतान को अपना वचन निभाना चाहिए।

सुलतान चौंका और सोते हुए मनुष्य की भांति उसने कहा---हां, हां, जरूर, अब मुझे आपकी दोस्ती पर यकीन हो गया है। महाराणा दरहकीकत मैं आपको मुबारकबादी देता हूं, आपकी महाराणी इन्सान नहीं हैं, इन्सान में इतनी खूबसूरती नहीं हो सकती।

राजपूत धीरज खो रहे थे। राणा ने अधीर होकर कहा---राजपूती मर्यादा को निभाने के लिए, सुलतान जैसे प्रतिष्ठित मेहमान को विदा करने हम बाहर की ड्योढ़ी तक चलेंगे, परन्तु सुलतान अपना वचन कब पूरा करेंगे ?

'मैं अभी अपनी छावनी उठाता हूं', सुलतान ने वापस लौटती बार कहा था।

वे धीरे-धीरे चुपचाप लौट रहे थे। दोनों चुप थे। राणा उस अपने अपमान की बात सोच रहे थे, जो अभी हो चुका था और सुलतान उस घात की, जो वह अभी करने वाला था।

फाटक आ पहुंचा, राणा ने कहा---मैं सुलतान के कष्ट करने के लिए क्षमा चाहता हूं।

'नहीं, नहीं, माफी मुझे मांगनी चाहिए। क्योंकि मैंने आपको बड़े भारी तरद्दुद में डाल दिया है; मगर खैर, इससे हमारी और आपकी दोस्ती पक्की हो गई। अरे, आप रुक क्यों गए, जरा और आगे चलिए, वहां मेरे आदमी हैं, मैं आपके लिए कुछ सौगात लाया हूं, जो आपको बाइज्जत कबूल करनी होगी। आशा है आप इनकार नहीं करेंगे।'

राणा झिझका पर आगे बढ़ा। उसने कहा---आपकी दोस्ती ही मेरे लिए सबसे बड़ी सौगात है।

सुलतान ने अत्यन्त आग्रह से कहा---नहीं, नहीं, अगर आप इनकार करेंगे तो मैं समझूंगा कि आपका दिल मेरी तरफ से साफ नहीं है।

फाटक कदम-कदम पर दूर हो रहा था, राणा कुछ कह न सके। एकाएक पठानों का एक बड़ा दल जंगल से निकल आया और बात की बात में राणा को घेर लिया। राणा तलवार भी न निकाल पाया, उसकी मुश्कें कस ली गईं। राणा ने

लाल-लाल आंखें करके कहा—यही सुलतान की दोस्ती है ?

'दोस्ती ? काफिर की और दीनदार की कैसी दोस्ती ? या तो वह परी पैकर मेरे हवाले कर, वरना चित्तौड़ की ईंट से ईंट बजा दूंगा, और तेरी बोटियां चील और कव्वे खाएंगे ।'

राणा ने घृणापूर्ण दृष्टि से देखकर कहा—धिक्कार है, तुझ विश्वासघाती पर।

सुलतान ने कहा—ले जाकर बन्द कर दो बदबख्त को।—और वे तेजी से चल दिए।

किले में हाहाकार मच गया। राजपूतों ने तलवारें सूंत लीं। सबने इरादा किया, किले का फाटक खोल दो, और जूझ मरो। पद्मिनी ने सुना तो कहलाया—सब कोई शान्त रहे, मैं महाराणा का मुक्ति की उपाय करूंगी। लोग आश्चर्यचकित हो, महाराणा की मुक्ति की प्रतीक्षा करने लगे।

'बादल, क्या तुम अपने काका जी को छुड़ाने का साहस कर सकते हो ?'

'हां काकी जी, मैं अभी अपने प्राण दे सकता हूं।'

'परन्तु बेटे, शत्रु छली और बली है, हमें भी छल और बल से काम लेना होगा ?'

'छल-बल से कैसे, काकी जी।'

'मैं सुलतान से कहलाए देती हूं, मैं स्वयं उसके पास आने को राजी हूं। आप राणा को छोड़ दें।

'छी, छी काकी, क्या आप उस म्लेच्छ सुलतान के पास जाएंगी !'

'नहीं बेटे, मेरी जगह मेरी डोली में तुम जाओगे।'

'क्या, मैं ?'

'हां, तुम मेरी जगह, यद्यपि तुम अभी बारह वर्ष के बालक हो पर क्षत्रिय-पुत्र को जूझ मरने के लिए यह आयु काफी है। तुम यह काम कर सकोगे ?'

'मुझे क्या करना होगा ?'

'तुम सब हथियार बांधकर मेरी पालकी में बैठोगे। पालकी के साथ ७०० डोली में मेरी सहेलियां होंगी। प्रत्येक डोली में बांदी की जगह दो-दो शूरवीर हथियार बांधकर बैठेंगे। और चार-चार शूरमा कहार का भेस धरे डोली उठाएंगे, जिनके हथियार कपड़ों में छिपे होंगे।'

'इसके बाद काकी जी।'

'इसके बाद राणी-राणा में अकेले में भेंट होगी। पास में तुम्हारे काका गोरा घोड़े पर सवार होंगे। वे तुरन्त ही राणा जी को घोड़ा और हथियार दे देंगे। और किले की ओर चलता कर देंगे। फिर तुम डोली से निकल अपने राजपूती जौहर के हाथ दिखलाना।'

'ऐसा ही होगा काकी जी, हम सुलतान को दगाबाजी का वह पाठ पढ़ाएंगे, जिसका नाम है।'

'तब जाओ बेटे, अपने गोरा काका से कहो। वह सुलतान से कहला भेजें कि राणी आपके पास आने को राजी है। मगर वह अपनी बांदियों और सहेलियों के साथ आएंगी। उन्हें परदे में उतारने का बन्दोबस्त कीजिए, और राणा को छोड़ दीजिए तथा राणी को एक घण्टे राणा से एकान्त में मिलने की आज्ञा मिलनी चाहिए, बस।'

'समझ गया। अभी जाकर गोरा चाचा से सब हकीकत बयान करता हूं।'

'जाओ पुत्र, ईश्वर तुम्हें सफलता दें।'

सुलतान की छावनी में जश्न मनाया जा रहा था। उसे खबर लग चुकी थी कि पद्मिनी अपने महल से चल चुकी है। वह पहाड़ से उतरती हुई डोलियों को देख-देखकर प्रसन्न हो रहा था। वह अपनी चालाकी पर खुश हो रहा था। सिपाही शराब ढाल रहे थे और नाच-गान में सब मस्त थे। किसीको किसीकी सुध न थी।

धीरे-धीरे डोलियां पठानों के शिविर में आ गईं। और वे सब एक बड़े तम्बू में उतार दी गईं। रानी ने कहला भेजा—अब आप एक घण्टे के लिए मुझे राणा से मिलने की इजाज़त दें। इसके बाद तो मैं आपकी हूं ही।

बादशाह ने हंसकर कहा—अच्छा, अच्छा, इसमें कोई हर्ज नहीं है। राणा अच्छा आदमी है, मगर एक घण्टे बाद मैं कुछ न सुनूंगा।

'यह मैं क्या देख-सुन रहा हूं, अच्छा होता कि इससे पहले ही मर गया होता। पद्मिनी, तुमसे ऐसी आशा न थी। अब तुम मुझे अपना मुंह दिखाने का साहस करती हो!' राणा भीमसिंह ने क्रोध से थर-थर कांपते हुए पालकी के सुनहरी काम की ओर अग्निमय नेत्रों से देखते हुए कहा।

पर्दा हिला। बादल ने घूंघट से मुंह निकालकर कहा, 'काका जी, सावधान!'

'कौन, तुम हो बादल?'

'जी हां, और सात सौ डोलियों में जुझाऊ वीर भरे हैं। हम, हम सुलतान से निबट लेंगे। बाहर गोरा काका घोड़ा लिए खड़े हैं। आप घोड़े पर चढ़कर किले में जा पहुंचें। और फिर सेना लेकर सुलतान की सेना पर टूट पड़ें तब तक हम निबट लेंगे।

'शावाश बेटे, हम आज दगाबाज़ी का···'

'चुप, ज़्यादा बातें न कीजिए। खीमे के पीछे घोड़ा खड़ा है, आप जाइए, हम शत्रुओं को रोकते हैं। बादल पालकी से निकलकर खड़ा हुआ। संकेत होते ही हज़ारों राजपूत हर-हर करके तलवारें सूंतकर निकल पड़े। रंग में भंग पड़ गया। छावनी में उथल-पुथल मच गई। जो जहां था, वहीं काट डाला गया। तैयारी का अवसर ही न था। मारो, मारो की आवाज़ सुनाई पड़ती थी। घायलों के चीत्कार मारते हुए कराहने की आवाज़ और राजपूतों की हर हर महादेव तथा पठानों की अल्ला हो अकबर की तुमुल ध्वनि हो रही थी। रुण्ड-मुण्ड कट-कटकर गिर रहे थे। राणा भीमसिंह तीर की भांति किले की ओर जा रहे थे। किले पर राजपूत तलवारें झनझना रही थीं।

बादल को पठानों ने घेर लिया था। पर वह बालक किले के नीचे पथ पर खड़ा दोनों हाथों से तलवार चला रहा था। गोरा ने तलवार चलाते-चलाते कहा, 'वाह बेटे, खूब खेत काट रहे हो!'

'सावधान काका जी, वह पीछे से वार होता है!'

तलवार चलाते-चलाते गोरा ने कहा—हर्ज नहीं, राणा जी महल में पहुंच गए हैं, वह तोप छुटी।'

तलवारें और तीर बरस रहे थे। गोरा ने कहा—बादल, अब मेरे हाथ नहीं चलते।

बादल ने कहा—काका जी, हम उस लोक में मिलेंगे।—गोरा घाव खाकर गिर पड़ा। बादल ने देखा और शत्रुओं को चीरते हुए ज़ोर से उनके कान के पास पुकारा, मैं, काका जी, आपकी वीरता का बखान करूंगा! महाराणा सेना लेकर आ रहे हैं!

राणा ने आते ही शत्रुओं को गाजर-मूली की तरह काटना आरम्भ कर दिया। शत्रु के पैर उखड़ गए। सुलतान पिटे कुत्ते की तरह सब सामान छोड़कर भागा। उसकी छावनी जला दी गई। बादल के शरीर पर अनगिनत घाव थे। उसके मुमुर्षु शरीर को महलों में लाया गया। शरीर से एक-एक बूंद रक्त निकल गया था। और उसके होठों पर हंसी की रेखा थी।

बाणा-वधू

इस कहानी में वीरबाला तारा के अप्रतिम शौर्य का अनोखा रेखाचित्र है।

'प्रिये, यह सब भाग्य का खेल है, लक्ष्मी अति चपल है। वह सदा एक ठौर नहीं रहती; जो कल महाराज था, आज भिखारी है।'

'स्वामिन्, क्षत्रिय-पुत्री हूं, मैं भाग्य को नहीं मानती। वीर पुरुष अपने पौरुष से भाग्य का निर्माण करते हैं।'

'किन्तु विश्वधारा के प्रतिकूल, क्षीण मनुष्य का बल…'

'किन्तु कर्मक्षेत्र में दृढ़ता से खड़े रहना उसका कर्तव्य है।'

'और यदि युद्ध में पराजय हुई?'

'तो वहीं प्राण त्यागे, क्या वीर पुरुष तिनके हैं, जो प्रवाह में पड़कर जिधर लहर ले जाए उधर ही बह निकले?'

'क्या नल पर विपत्ति नहीं पड़ी? राज्य गया, स्त्री छूटी, अन्त में नौकरी करनी पड़ी, यह सब विधाता के खेल हैं।'

'यह अवैध जुआ खेलने के खेल हैं।'

'प्रिये, एसी बातें क्यों करती हो? तुम्हें यहां क्या कष्ट है, कैसी सुन्दर वन-स्थली है, झरने का मीठा जल, फल और हरियाली…'

'पराधीनता में एक क्षण भी रहना धिक्कार की बात है, कायर ही ऐसी युक्तियों से सन्तोष किया करते हैं।'

'प्रिये, पति से ऐसे कठोर वाक्य कहने उचित नहीं, द्रौपदी ने भी कठोर वचन कहे थे, पर फल क्या हुआ?'

'सच है, क्षत्रिय को रण में पीठ दिखाना शोभा देता है, तुम पुरुष जब से स्त्रियों के विधाता बन गए हो तब से उन्हें सदा अपने प्रति कर्तव्य का उपदेश देते रहते हो, पर अपने कर्तव्य का पालन नहीं करते। यदि तुम कायरों की भांति युद्ध से भाग

न आते और सम्मुख युद्ध में प्राण देते तो देखते कि तुम्हारी पत्नी किस आनन्द से चिता पर चढ़ती है !'

'पर प्रिये, समय के लिए बच रहना भी युक्ति है।'

'कायर ही ऐसी युक्तियां दिया करते हैं, पर जो सच्चे शूर हैं वे जय या मृत्यु—इन दो वस्तुओं को ही प्राप्त करते हैं, शोक तो यह है कि मुझे कन्या जन्मी, पुत्र भगवान् ने न दिया।'

'और जो पुत्र भी युद्ध से भागता ?'

'सिंहनी कभी स्यार नहीं पैदा करती।'

'आह, मैंने नारी-जन्म पाया, मुझे धिक्कार है, मैं पुत्र क्यों न हुई। परन्तु स्त्री अबला क्यों ? क्या उसके हाथ-पैर नहीं, मस्तिष्क नहीं, हृदय नहीं ? शक्ति, तेज, बल—सभी तो शिक्षा और अभ्यास से प्राप्त होता है। देखूं ! सुकोमल बाहुओं को वज्र भुजदण्ड बना लूं। इन कलाइयों में दुधारा खड्ग धारण करूं। माता, तुम क्षोभ मत करो, मैं पिता का राज्य शत्रु से छीनूंगा तो मेरा नाम तारा रहा, मैं राजपूतानी की बच्ची हूं। मैं तुम्हारे पुत्र का काम करूंगी।'

'प्रिये, तारा पुत्री कहां गई ?'

'शिकार को गई है।'

'अरे, उस दिन इतना मना किया था, क्या वह बालक है ? उसे रोका नहीं ?'

'तुम्हीं रोक देखो।'

'वह विवाह के योग्य हो गई।'

'इसका विचार भी तुम्हीं करो।'

(तारा का प्रवेश)

'पिता जी, आपने यह बाघ का बच्चा देखा ?'

'अरे-अरे, उसे यहां लाया कौन ?'

'झाड़ी में घुसकर लाई हूं, इसकी बेचारी माता आज मेरे वर्छे से विद्ध होकर मर गई।'

'मर गई ? तुमने बाघिन को मारकर बच्चा छीन लिया ?'

'पिता जी, कैसा प्यारा बच्चा है !'

'तारा बेटी, तुम्हारा यह कार्य प्रशंसा के योग्य नहीं, तुम राजकुल की कन्या हो; यों पुरुष-वेश में घूमते फिरना और शिकार करना तुम्हें उचित नहीं। जाओ भीतर बैठो।'

'पिता जी, जब मर्दों ने मर्द के सब काम और बर्ताव तक छोड़ दिए, स्त्री जैसे बन गए—पर स्त्री का प्रधान गुण लज्जा एक बार ही तज बैठे—और चुपचाप शत्रु की लात सहते बैठे हैं, तब स्त्रियों को विवश यह वेश लेना पड़ता है।'

'तारा, ऐसा तर्क, ऐसी प्रगल्भता तुमने किससे सीखी?'

'पिता जी, तब बाघ का बच्चा न देखोगे? मां, आओ तुम देखो।'

'चलो बेटी, देखूं तेरा बाघ।'

'मैं सुन चुकी, मेरे कान पक गए। यह सड़ा हुआ वाक्य—'तुझे चाहता हूं' मैं नहीं सुनना चाहती, मैं इससे घृणा करती हूं।'

'तारा, तुम्हें सुनना ही होगा।'

'कुंवर तुम चाहे चाहो, चाहे न चाहो, इससे किसीका कुछ बनता-बिगड़ता नहीं।'

'आह! कैसी पाषाणहृदय नारी हो, किसने तुम्हें यह रूप दिया?'

'मूर्ख विधाता ने, जिसने तुम्हें मर्द और मुझे औरत बनाया।'

'तारा, तुम प्रेम का तत्त्व नहीं समझतीं।'

'नहीं समझती, वह तत्त्व मुझे सिखाया नहीं गया, वह विधर्मियों के सम्भोग की विद्या है, घर-द्वार और राज्य से विहीन सामन्त की दरिद्र कन्या के लिए उपयुक्त नहीं।'

'तुम्हारी इच्छा क्या है?'

'जब तक पिता का राज्य वापस न लूंगी, किसी विषय को मन में स्थान न दूंगी।'

'यह किस भांति होगा?'

'मैं नहीं जानती, पर मेरे सोचने का यही विषय है, मैं अकेली स्त्री हूं। माना कि शस्त्र-विद्या जानती हूं पर जब सभी मर्द निश्चिन्त बैठे हैं, मैं अकेली क्या करूंगी?'

'क्या ब्याह की रुकावट यही है?'

'यही है। प्रेम विलासियों का स्वप्न है, साधकों का नहीं।'

'यदि मैं तुम्हारी मातृभूमि का उद्धार करूं ?'

'तो मैं तुम्हें ब्याहूंगी—चाहे तुम्हें चाहूं या न चाहूं।'

'सच ?'

'सच, यह रूप, यौवन, यह सतीत्व-रत्न सब तुम्हारे चरणों में बलि होगा।'

'अच्छा, ब्याह के बाद प्रेम करोगी ?'

'नहीं कह सकती, तो भी अपना रूप, यौवन सभी बे-उज्र बेच दूंगी। वह तुम्हारी सम्पत्ति होगी।'

'तब यही होगा।'

'तब जाइए कुंवर, जब तक प्रतिज्ञा पूरी न करें मेरे सामने न आना।'

—अर्द्ध रात्रि है, चोर की भांति आया हूं, पर प्रेम अन्धा है, अहा ! कैसा छलकता यौवन है ! वैशाखी वायु में इसकी बहार तो देखो, आकाश में कितने नक्षत्र हैं। पर पृथ्वी में एक यही है, कैसी सुन्दर है, बेसुध सो रही है, कैसी विशाल आंखें, भवें, अहा ! चिकने केश, निखरा हुआ रंग, बलिष्ठ और कोमल शरीर, वक्षस्थल का उभार, फड़कते होंठ, मानो चुम्बन मांग रहे हैं, यह कम्पित वक्षस्थल, मानो आलिंगन मांग रहा है—हैं, पैर में क्या अड़ गया...

'कौन ?'

'प्रिये, चरणों का दास।'

'कुंवर, तुम इस समय यहां ?'

'प्रिये, क्षमा।'

'एक क्षण भी बिना ठहरे चले जाओ।'

'नहीं तारा, मैं बिना इच्छा पूर्ण किए न जाऊंगा।'

'नीच, कापुरुष, कुमार्गी—मेवाड़-कुल-कलंकी, धिक्कार है ! तू चोर की भांति छिपकर कन्या के शयन-गृह में घुस आया है !'

'तारा, प्रेम अन्धा है।'

'फिर कहती हूं, चले जाओ।'

'वरना...?'

'वरना प्राण जाएंगे।'

'मैंने द्वार बन्द कर लिए हैं, तुम्हें कौन बचाएगा ?'

'अरे मूढ़, क्षत्रिय-बाला स्वयं रक्षा करती है, क्या तुम जानते हो ?'

'नहीं प्रिये, एक बार इच्छा-पूर्ति कर दो।'

'तब लो।' (तलवार का प्रहार)

'तारा, ठहरो, दूसरा...'

'अरे पतित, अब नहीं...'

'क्षमा करो, निहत्थे...'

'अरे घृणित चोर...'

'यह आखेट मेरा है।'

'क्या कहा, तुम्हारा इतना साहस ?'

'तुम कौन हो इतने गर्वीले ?'

'अरे, तुम कौन हो इतने सुन्दर, कोमल और निर्भय।'

'पहला प्रश्न मेरा है।'

'तब सुनो, मैं पृथ्वीपाल हूं।'

'मेवाड़ के राजपुत्र ?'

'हां वही, तुम कौन हो ?'

'इससे प्रयोजन नहीं, आखेट तुम ले जाओ।'

'वाह, परिचय तो देना पड़ेगा।'

'मुझे क्षमा करो, कुमार।'

'अरे यह कैसी भाषा, मुझे ही तुम क्षमा करो, आखेट तुम ले लो।'

'नहीं, वह तुम्हारा है।'

'मन में शंका होती है, पर तुम स्वयं ही परिचय दो।'

'मैं तारा हूं।'

'वाह! राजकुमारी, अच्छा मेल हुआ, यह आखेट तो मेरा है, मैं तुम्हारा आखेट हूं।'

'कुमार! मेरी प्रतिज्ञा तो राजपूताने भर में प्रख्यात है, आप इस प्रकार की चर्चा न करें; अपने रास्ते जाएं।'

'कुमारी, आज ही वह प्रतिज्ञा पूरी होगी।'

'क्या यह सत्य है ?'

'आज मुहर्रम है, अभी तीन पहर दिन शेष है, मुसलमान सब मुहर्रम में लग रहे हैं, मेरे पांच सहस्र शूर छिपे तैयार खड़े हैं, केवल एक घण्टे का मार्ग है। क्या तुम स्वयं तमाशा देखना चाहती हो ?'

'सहर्ष।'

'तब चलो, क्या पिता से आज्ञा लोगी ?'

'आवश्यकता नहीं।'

'तब चलो।'

'कुमारी, समस्त सेना कोट के बाहर खाई में छिपी रहने दो, हम लोग दुर्ग में चलेंगे।'

'अकेले ?'

'क्या भय लगता है ?'

'नहीं कुमार, तुम्हारे साथ भय !'

'कुमारी, तुम्हारा असली आखेट तो वही है।'

'तब चलो।'

'विजय सिंह !'

'महाराज !'

'संकेत का शब्द सुनते ही दुर्ग में बलपूर्वक घुस पड़ना।'

'जो आज्ञा।'

'कुमारी !'

'कुंवर !'

'चलो।'

'चलो।'

'कुमारी, तुम्हारा अश्व बड़ा चपल है, इसे तनिक वश में रखो नहीं तो नागरिक लोग इधर ही देखने लगेंगे, यह शत्रुपुरी है।'

'कुंवर, आज इसे स्वच्छन्द विचरण करने दो।'

'क्षणभर ठहरकर देखो, कितनी भीड़ है, आज सभी मस्त हो रहे हैं।'

'ठहरो, देखो ये दोनों सवार हमें घूर-घूरकर देख रहे हैं, सन्देह न करने लगें, आओ, उनके निकट चलो।'

'भाई, आज क्या त्योहार है ?'

'तुम लोग परदेशी मालूम होते हो, आज मुहर्रम है।'

'ओह हमें, यह नहीं मालूम था, हम लोग अभी-अभी आ रहे हैं, परन्तु हमलोग क्या यह सब देख सकते हैं ?'

'अभी सुलतान की सवारी आ रही है, तुम्हें कौन रोकता है, खुशी से देखो।'

'सच, सुलतान के दर्शन तो हमें अनायास ही हो जाएंगे। अरे यह सुलतान की सवारी आ रही है !'

(कान में) 'कुंवर, यही समय है।'

'कुमारी, क्षण भर ठहरो, और निकट ठहरो। आओ, उस घर की आड़ में खड़ी हो जाओ।'

(एक तीर छांटकर) 'यही यथेष्ट होगा। कुंवर, अपने आखेट को मैं ही विद्ध करूंगी।'

"और कौन यह साहस करेगा कुमारी ! पर सुलतान को ठीक पहचान लेना।'

'वही न, जो श्वेत अश्व पर सवार है।'

'वही जिसकी हरी पगड़ी में हीरा चमक रहा है।'

(तीर धनुष पर सन्धान करके) 'कुंवर देखना, सूअर विद्ध होता है या नहीं।'

'तुम निर्भय बाण छोड़ो कुमारी।'

'वह मारा, तीर सुलतान की छाती के आर-पार हो गया ! वह घोड़े से गिर गया ! हलचल मच गई। देखो वे इधर ही आ रहे हैं ! कुमारी, अपना बर्छा सम्भाले रहो। मेरे बाएं कक्ष से दूर न रहना, सीधी बढ़ी चलो, अभी फाटक खोलना है।'

'कुंवर सावधान !' (एक यवन को बर्छे से मारती हुई)

'कुमारी, सावधान !' (तलवार से एक सिपाही को काटकर)

'कुंवर, बढ़े चलो !'

'आह, द्वार पर मस्त हाथी खड़ा है, सारी सेना दौड़ी आ रही है।'

'चिन्ता नहीं !' (बढ़कर एक ही तलवार के वार से हाथी की सूंड काट डालती है। हाथी चिंघाड़ता भागता है। झटपट द्वार खोलकर--)

'विजयसिंह ?'

(सेना का दुर्ग में प्रवेश, भयानक मार-काट, दुर्ग-विजय)

'तारा पुत्री, ये मेवाड़ के राजकुमार पृथ्वीपाल हैं, इन्हें प्रणाम करो। इन्होंने सुलतान को मारकर तुम्हारे पिता का राज्य उद्धार किया है।'

'पिता जी, मैं इनका यश सुन चुकी हूं।'

'राजकुमार, यही मेरी कन्या तारा है, मुझ दरिद्र के मस्तक का मुकुट, मेरे जीवन की डोर। तारा !'

'पिताजी !'

'तुम्हें अपनी प्रतिज्ञा याद है ?'

'जी हां, पिता जी !'

'कुंवर, तुम्हें मैं जामाता बनाता हूं, यदि तुम दरिद्र का यह दान स्वीकार करो। मैं तो नहीं, पर तारा तुम्हारे योग्य है।'

'महाराज, यदि आपकी पुत्री स्वीकार करें......'

'वह तो कर चुकी, हाथ आगे लाओ पुत्री, तुम भी आगे बढ़ो पृथ्वी, मेवाड़ के वीर, मैंने तुम्हें अपनी पुत्री दी।'

'पिता, हम आपको प्रणाम करते हैं।'

'दोनों चिरंजीव रहो; सुपुत्र और सुयश के भागी बनो।'

नवाब ननकू

'नवाब ननकू' एक भावकथा है, जिसमें चरित्र और आचार का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण है। कहानी में कुल तीन मुख्य पात्र हैं। राजा साहब, एक शराबी-कबाबी-वेश्यागामी-लम्पट रईस, जिन्होंने इसी काम में अपनी सारी सम्पत्ति फूंक दी और अब दारिद्र्य और रोग का भोग भोग रहे हैं। दूसरी है एक विगलितयौवना वेश्या, और तीसरे हैं एक रईस के औरस से उत्पन्न वेश्यापुत्र, जो अपने को नवाब समझते हैं। कहानी में तीनों दोस्तों की एक मुलाकात का रेखाचित्र है। मुलाकात में जीवन के आगे-पीछे के समूचे जीवन की स्पष्ट झांकी अंकित करने में लेखक ने अपनी अपरिसीम कथा-निर्माण-कला का परिचय दिया है। इससे भी अधिक अपनी उस विश्लेषण-सामर्थ्य को मूर्त किया है—जब कि वह चरित्र को आचार से पृथक् मानता है। तीनों ही पात्र हीन चरित्र हैं। परन्तु उनके हृदय की विशालता, विचारों की महत्ता, भावों की पवित्रता ऐसी व्यक्त हुई है कि बड़े से बड़ा सदाचारी भी उसकी समता नहीं कर सकता। पूरी कहानी पढ़कर तीनों में से किसी भी पात्र के प्रति मन में विराग और घृणा नहीं होती, आत्मीयता और सहानुभूति के भाव पैदा होते हैं। आचारहीन व्यक्ति भी उच्च चरित्र वाले होते हैं। तथा आचार और चरित्र में मौलिक अन्तर क्या है—यह गम्भीर मनोवैज्ञानिक और आचारशास्त्र-सम्बन्धी नया दृष्टिकोण लेखक ने कहानी में व्यक्त किया है।

सरदी के दिन और सनीचर की रात, कल इतवार। न दफ्तर जाने की फिक्र न किसी काम की चिन्ता। बस, बेफिक्री से खाना खाकर जो रजाई में घुसे तो अम्बरी तमाखू का कश खींचते-खींचते ही अण्टागफील हो गए।

मगर उस मीठी नींद में शुरू में ही विघ्न पड़ गया। नीचे कोई कर्कश स्वर में चिल्ला रहा था—बाबू साहब, अजी बाबू साहब। उस वक्त आराम में यों खलल पड़ने से तबियत झल्ला उठी। क्या मजे की झपकी आई थी। मैंने उठकर खिड़की से सिर निकालकर कहा—कौन है भई; इस वक्त ?

'अजी हम हैं नवाब साहब । गजब करते हैं आप भाई साहब, अभी लम्हा भर हुआ है सूरज छिपे; और आपके लिए आधी रात हो गई, चीखते-चीखते गला फट गया । मुहल्ला भर सिर पर उठा डाला ।'

बड़ा गुस्सा आया उस नवाब के बच्चे पर। जी में आया, कच्चा ही चबा जाऊं। परन्तु जब्त करके कहा—कहिए नवाब साहब, इस वक्त कैसे ?

'अजी, दरवाजा तो खोलिए, या गली में खड़े ही खड़े राग अलापूं ।'

मन ही मन दाव-पेंच खाता नीचे उतरा और कुण्डी खोली । नवाब साहब चुपचाप पीछे-पीछे ज़ीना चढ़कर ऊपर आए; आते ही मसनद पर बेतकल्लुफी से उठंग गए । कहने लगे—खुदा की मार इस सरदी पर। हड्डियां तक ठण्डी पड़ गईं। मगर उस्ताद, खूब मजे में आप मीठी नींद ले रहे थे ।

मैंने कहा—आपके मारे कोई सोने पाए तब तो । कहिए, इस वक्त कैसे तकलीफ की ?

नवाब साहब ने बेतकल्लुफी से हंसकर कहा—यों ही, बहुत दिन से भाभी साहिबा के हाथ का पान नहीं खाया था, सोचा : पान भी खा आऊं और सलाम भी करता आऊं ।

गुस्सा तो इतना आ रहा था कि मर्दूद को धकेल दूं नीचे । मगर मैंने गुस्सा पीकर कहा—पूरे नामाकूल हो तुम । कल इतवार था । कल यह सलाम की रस्म पूरी नहीं कर सकते थे, जो इस वक्त आराम में खलल डाला ?

नवाब साहब खिलखिलाकर हंस पड़े । जेब से सिगरेट का बक्स और दियासलाई निकालकर एक होंठों में दबाई, दूसरी मेरी ओर बढ़ाते हुए कहा—खैर, सिगरेट तो पिओ और गुस्सा थूक दो । हां, चालीस रुपये मेरे हवाले करो और इसे रखो संभालकर ।

उन्होंने बगल से पोटली निकालकर मेरे आगे सरका दी ।

मैंने कहा—यह क्या बला है, और इस वक्त रुपयों के बिना कौन कयामत बरपा हो रही थी ?

नवाब साहब को भी गुस्सा आ गया । कहने लगे—कयामत नहीं बरपा हो रही थी, तो मैं यों ही झख मारने आया हूं इस वक्त ? हज़रत, यह मेरी भी पीनक का वक्त था ।

'मगर इस वक्त रुपये तुम क्या करोगे ?'

'फेंक दूंगा सड़क पर, तुम्हें इससे मतलब ?'

'रुपये नहीं हैं ।'

'रुपये न होने की खूब कही, बुलाऊं भाभी को ?'

'भाभी तुम्हारी क्या तोप से उड़ा देंगी, बुलाओ चाहे जिसको, रुपये नहीं हैं ।'

'समझ गया, बेहयाई पर कमर कसे हुए हो। लाओ, चुपके से रुपये दे दो, अभी मुझे सदर तक दौड़ना होगा ।'

'सदर तक क्यों ?'

'एक बोतल व्हिस्की और गज़क लेने, और क्यों।'

'अच्छा, तो हज़रत को शराब के लिए रुपये चाहिएं ।'

'जी हां, शराब के लिए, और कबाब के लिए भी, निकालो जल्दी से ।'

'कह तो दिया, रुपये नहीं हैं ।'

'तुमने तो कह दिया, पर हमने तो सुना ही नहीं ।'

'नहीं सुना तो जहन्नुम में जाओ ।'

'कहीं भी हम जाएं तुम्हारी बला से, लाओ तुम रुपये दो ।'

'रुपये नहीं दूंगा, अब तुम खसकन्त हो यहां से नवाब ।'

'चे खुश । रुपये तो मैं खड़े-खड़े अभी लूंगा तुमसे ।'

'क्या तुम्हारा कर्ज़ चाहिए मुझपर ?'

'कर्ज़ ही तो मांगता हूं ।'

'मैं कर्ज़ नहीं देता ।'

'देखता हूं कैसे नहीं दोगे, बुलाओ भाभी को अपनी हिमायत पर।' नवाब ने गुस्से से आस्तीन चढ़ानी शुरू की ।

मुझे बुरी तरह हंसी आ गई। कहा—क्या मारपीट भी करने पर आमादा हो ?

'मारपीट ! तुम मारपीट की कहते हो, मैं तुम्हें गोली न मार दूं तो नवाब ननकू नहीं ।'

मैंने हंसकर कहा—गोली मार दोगे तो फिर रुपया कहां से वसूल करोगे नवाब साहब ?

'बस, इसी बात को सोचकर तो तरह दे जाता हूं, निकालो रुपये ।'

'लेकिन नवाब, तुम तो कभी नहीं पीते थे, आज यह क्या बात है ?'

'तो क्या मैं अपने लिए मांगता हूं। मैंने कभी पी है ?'

'फिर किसके लिए ?'

'राजा साहब के लिए।'

'अच्छा—यह बात है, अब समझा। कोई नई चिड़िया आई है क्या ?'

'राजेश्वरी आई है बनारस से।'

'तो तुम क्यों उस शराबी के लिए झख मारते फिरते हो ?'

'तब कौन झख मारे। तुम चाहते हो, राजा साहब खुद तुम्हारे दरवाज़े पर आकर चालीस-चालीस रुपल्ली के लिए जलील होते फिरें।'

'वे कुछ भी करें, तुम्हें क्या। जो जैसा करेगा, भोगेगा। जिसने लाखों की जमीन-जायदाद, ज़र-जवाहरात, सब शराब और रण्डी-भड़ुओं में फूंक दी, तुम उससे क्यों इतनी हमदर्दी रखते हो ?'

'क्या मैं हमदर्दी रखता हूं ?'

'तब ?'

'मैं मुहब्बत करता हूं उनसे भाई, उनकी इज़्ज़त करता हूं।'

'किसलिए ? आखिर सुनूं तो।'

'किसलिए ? सुनो, पहले तो वे मेरे बड़े भाई, दूसरे ऐसे दाता, ऐसे प्रेमी, ऐसे बात के धनी, ऐसे दिल वाले···कि दुनिया में चिराग लेकर ढूंढो तो कहीं मिल नहीं सकते।'

'शराबी और रंडीबाज़ भी क्यों नहीं कहते ?'

'वह तुम कहो। वे शराब पीते हैं और रण्डियों से आशनाई करते हैं, इसमें किसीका क्या लेते हैं ? उन्होंने अपनी लाखों की जायदाद उन्हें दे दी, जिन्हें उन्होंने प्यार किया। आज उनका हाथ खाली है, मगर दिल बादशाह हैं। वे जीते जी बादशाह रहेंगे। मैं उन्हें पसन्द करता हूं, प्यार करता हूं, इज़्ज़त करता हूं। मैं नहीं बर्दाश्त कर सकता कि वे दुनिया के आगे हाथ फैलाएं।'

'और तुम उनके लिए भीख मांगते फिरते हो।'

किससे मैंने भीख मांगी है, कहो तो', नवाब ने तैश में आकर कहा।

'यह अभी तुम चालीस रुपये मांग रहे हो ?'

'और यह क्या है ?'

नवाब ने सामने की पोटली की ओर इशारा किया।

उसे तो मैं भूल ही गया था। मैंने देखा, वह एक जरी के काम का कीमती लंहगा है।

नवाब ने कहा—बेचना चाहूं तो खड़े-खड़े दो सौ में बेच दूं। तुमसे तो मैं चालीस ही मांग रहा हूं।

'लंहगा क्या राजा साहब ने दिया ?'

'वे क्यों देने लगे ? अम्मी जान का है। राजेश्वरी आज आई थीं। मुझे बुलाकर राजा साहब ने कहा—नवाब, हाथ में इस वक्त कुछ नहीं है, राजेश्वरी के लिए कुछ खाने-पीने का बन्दोबस्त कर दो। आंखें उनकी शर्म से झुकी थीं, और लाचारी से भीग रही थीं। बस इतनी ही तो बात है।'

'अच्छा और तुम चुपके से घर आए, यह लंहगा उठाया और यहां आ धमके।'

'जी हां, और तुम्हारी नींद हराम कर दी ! बहुत हुआ अब, बस अब लाओ रुपये दो।'

मैंने चुपके से दस-दस के चार नोट नवाब के हाथ पर रख दिए। मेरी आंखों में आंसू आ गए, और मैंने वह लंहगा उसी तरह लपेटकर नवाब की ओर बढ़ाते हुए कहा—इसे लेते जाओ।

नवाब ने आपे से बाहर होकर चारों नोट फेंक दिए। लाल होकर कहा—अच्छा, तो हजरत मुझे भीख देने की जुर्रत करते हैं !

'नहीं भाई, ऐसा क्यों सोचते हो, मगर यह लंहगा मैं नहीं रख सकता।'

'तो तुम्हारे रुपये भी नवाब नहीं ले सकता। आज राजा कामेश्वरप्रसादसिंह खाली हाथ हैं, और नवाब ननकू अपनी अम्मी जान का लंहगा गिरवी रखने पर लाचार हैं, मगर आप यह मत भूलिए कि वे दोनों सलीमपुर के राजा महाराज नन्दनसिंह के नुतफे से पैदा हुए हैं, जो तीन बार सोने से तुले थे, और जिन्होंने ग्यारह हाथी ब्राह्मणों को दान दिए थे। जिनकी दी हुई जागीरों को सैकड़ों शरीफजादों की आस-औलाद आज भोग रही है। इलाके भर में जिनके पेशाब से चिराग जलते थे।' मैंने खड़े होकर खुशामद करते हुए कहा—वह सब ठीक है नवाब साहब, मगर ये रुपये तुम मेरी तरफ से राजा साहब को नजर करना।

'हरगिज नहीं, राजा साहब कभी किसीकी नजर कबूल नहीं करते। तुम यह लंहगा गिरों रखकर चालीस रुपये देते हो तो दो।'

लाचार मैंने हामी भर ली। मैंने लंहगे को उसी तरह लपेटकर रख लिया और

नवाब रुपये जेब में रखकर उठ खड़े हुए।

मैंने कहा—यह क्या नवाब, भाभी का पान बिना खाए और बिना सलाम किए चले जाओगे ?

'हरगिज नहीं' नवाब ने बैठते हुए कहा—बुलाओ तो उन्हें।

मैंने पत्नी को नीचे से बुलाया। वे बच्चों को दूध पिलाने और सुलाने की खटपट में थीं; नवाब को एक लफंगा आदमी समझती थीं। मेरे पास उसका आना-जाना और चाहे जब रुपये-पैसे ले जाने को वे हमेशा नापसन्द करती थीं। उन्होंने आकर कहा—इस वक्त मेरी तलबी क्यों हुई है ?

'यह इन नवाब साहब से पूछो।'

'यही कहें।'

'पान खिलाइए, तो कहूं।'

'कहो, पान भी मिल जाएगा।'

'वादे की सनद नहीं, झपाके से दो बीड़ा बढ़िया पान ले आइए।'

पत्नी चली गईं और एक तश्तरी में कई बीड़े पान लेकर लौटीं। उनमें से दो बीड़े उठाकर नवाब ने हाथ में लिए, अदब से मेरी पत्नी के सामने खड़े हुए और जमीन तक झुककर कहा—सलाम बड़ी भाभी, आपका यह गुलाम नवाब ननकू आपको सलाम करता है, और आपकी दुआ की इस्तुजा रखता है।

पत्नी मुस्कराईं। उन्होंने कुछ झेंपते हुए कहा—कभी बच्चों को भी नहीं भेजते नवाब साहब; एक बार भेजो।

'जो हुक्म बड़ी भाभी, सलाम।'

नवाब साहब ने और एक सलाम झुकाई और चले गए।

मेरी नींद बहुत रात तक गायब रही। मैं अन्दाजा न लगा सका कि यह व्यक्ति संसार के सब मनुष्यों से कितना ऊंचा है ?

कमरे में एक ओर अंगीठी जल रही थी। राजा साहब पलंग पर लेटे थे और एक खिदमतगार धीरे-धीरे उनके पांव सहला रहा था। राजेश्वरी नीचे फर्श पर बैठी छालियां काट रही थी। चांदी का पानदान सामने खुला रखा था। राजा साहब गंगा-जमुनी की गुड़गुड़ी पर अम्बरी तम्बाकू पी रहे थे और धीरे-धीरे राजेश्वरी से बातें कर रहे थे।

राजेश्वरी की उम्र चालीस को पार कर चुकी थी। बदन उसका कुछ भारी हो चला था, और माथे पर की लटों में चांदी की चमक अपनी बहार दिखा रही थी। फिर भी उसकी पानीदार आंखों और मृदु मुस्कान में अभी भी मोह का नशा भरा था।

राजेश्वरी ने कहा—सरकार ने यों नज़रें फेर लीं, मुद्दत हुई पैगाम तक न भेजा, सुनती रहती थी, हुज़ूर के दुश्मनों की तबियत खराब रहती है। आखिर जी न माना, बेहया बनकर चली आई।

'मुझे निहाल कर दिया तुमने इस वक्त आकर राजेश्वरी, दिल बाग-बाग हो गया। क्या कहूं, बहुत याद करता हूं तुम्हें—मगर…'

'हुज़ूर की नज़रे इनायत पर मैंने हमेशा फख्र किया है, और मरते दम तक करूंगी।'

'तुम जिओ राजेश्वरी, ईश्वर तुम्हें खुश रखे। यह मूज़ी बीमारी—क्या कहूं, अब तो हिलने-डुलने से भी लाचार हो गया हूं। पर यह सब उस भगवान् की दया है। फिर मुझे अपनी लाचारी का क्या गम है, जब तुम दुनिया की तमाम खुशी लेकर यहां आ जाती हो।'

राजेश्वरी ने चार बीड़ा पान बनाकर राजा साहब को अदब से पेश किए। राजा साहब ने मुस्कराकर पान लेकर मुंह में रखे।

खिदमतगार ने आकर अर्ज़ की—हुज़ूर, कुंवर साहब सलाम के लिए हाज़िर हुए हैं।

'आएं वे'—राजा साहब ने धीरे से कहा।

कुंवर साहब ने झुककर राजा साहब को सलाम किया और पैताने की ओर अदब से खड़े हो गए।

राजा साहब ने कहा—चाची को सलाम नहीं किया बेटे।—कुंवर साहब ने आगे बढ़कर राजेश्वरी को सलाम किया, और दो कदम पीछे हट गए।

राजेश्वरी खड़ी हुई। आगे बढ़कर कुंवर साहब के पास पहुंची, उनके मुंह पर प्यार से हाथ फेरा, और दो अशर्फियां निकालकर उनकी मुट्ठी में जबरन थमा दीं।

कुंवर साहब ने पिता की ओर देखा।

राजा साहब ने कहा—ले लो, और चाची को फिर मुकर्रर सलाम करो।

कुंवर साहब ने फिर झुककर सलाम किया। राजेश्वरी ने दोनों हाथ उठाकर

आशीर्वाद दिया। राजा साहब ने इशारा किया और कुंवर साहब चले गए।

एक ठण्डी सांस खींचकर राजा साहब ने कहा—इस निकम्मे बाप ने अपने बेटे के लिए भी कुछ न छोड़ा राजेश्वरी, मगर तसल्ली यही है कि ज़हीन है, पेट भर लेगा।

'हुज़ूर ऐसा क्यों फर्माते हैं। इन मुबारक हाथों से भीख पाकर लोगों ने रियासतें खड़ी कर ली हैं। दुनिया में दिल ही तो एक चीज़ है हुज़ूर, भगवान् भी यह सब देखता है। वह उस आदमी की औलाद पर बरकत देगा जिसने अपनी ज़िन्दगी में सबको दिया ही है, लिया किसीसे भी कुछ नहीं।'

राजा साहब ने हाथ बढ़ाकर राजेश्वरी का हाथ पकड़ लिया। बहुत देर तक कमरे में सन्नाटा रहा। दो पुराने किन्तु पानीदार दिल मन ही मन एक दूसरे को यत्न से संचित स्नेह से अभिषिक्त करते रहे।

आखिर राजा साहब ने एक ठण्डी सांस भरी, और गुड़गुड़ी में एक कश लगाया।

नवाब ननकू हांफते हुए आ बरामद हुए। उनकी नाक पर की ऐनक नाक की नोक पर खिसक आई थी। आते ही उन्होंने खिदमतगार को एक डांट दी—अरे कम्बख्त, बदनसीब, अंगीठी में और कोयले क्यों नहीं डाले, वह बुझ रही है। नवाब साहब जब तक हुक्म न दें, ये नवाब के बच्चे काम न करेंगे। राजा साहब को दौरा हो गया, तो याद रख कच्चा चबा जाऊंगा। उठ, जल्दी कोयले डाल।

खिदमतगार चुपके से उठ गया। नवाब ने ही-ही हंसते हुए कहा—देखा, राजेश्वरी भाभी, खिदमतगार साले नवाब ननकू के आगे बन्दर की तरह नाचते हैं। मगर मुंह पर कहता हूं, बिगाड़ दिया है राजा साहब ने, नौकरों को बहुत मुंह लगाना अच्छा नहीं।

'लेकिन नवाब, उन गरीबों को छह-छह महीने तनख्वाह नहीं मिलती है, बेचारे मुहब्बत के मारे पड़े हैं।'

'तो इससे क्या ? उनके बाप-दादों ने इतना खाया है कि सात पीढ़ी के लिए काफी है।'

'मगर उन्होंने खिदमत भी तो की है।'

'तो रियासतें भी तो पाई हैं।'

'अच्छा देखूं तो, राजेश्वरी के लिए क्या-क्या चीज़ लाए हो।'

'देखिए, और दाद दीजिए नवाब को।'

नवाब ने बोतल बगल से निकाली। और भी बहुत-सा सामान।

'अरे, यह इतनी खटपट किसलिए की, नवाब साहब।' राजेश्वरी ने कहा।

'जी, जैसे आप चिऊंटी के बराबर तो खाती ही हैं ? फिर आई कितने दिन बाद हैं राजेश्वरी भाभी। जानती हैं; राजा साहब कितना याद करते हैं। जब राजेश्वरी ज़बान पर चढ़ती हैं, आंखें गीली हो जाती हैं। अम्मी जान कहती थीं, बड़े महाराज का भी यही हाल था, ज़रा-सी बात पर दिल भारी कर लेते थे।'

'वे देवता थे नवाब साहब।'

'और ये ?'

'ये; इन्हें पहचाना किसने है अभी।'

'दुनिया ऐसों को कभी न पहचान पाएगी।'

खिदमतगार अंगीठी टंच करके रख गया। नवाब साहब ने खुश होकर कहा—यह बात है रामधन, मगर देखो, मैंने तुम्हें एक गाली दी है, और यह दो रुपये इनाम देता हूं।

नवाब ने दो रुपये निकालकर रामधन की ओर बढ़ा दिए।

रामधन ने नवाब के पैर छूकर कहा—हुज़ूर, आपकी गालियां खाकर ही तो जी रहा हूं। रुपया-पैसा सरकार का दिया बहुत है।

'मगर यह भी रख लो, महरिया को एक बढ़िया-सी चुनरी ला देना।'

'वह उस दिन हवेली गई थी सरकार, तो बेगम साहिबा ने जाने क्या-क्या लाद दिया था, गट्ठर भर लाई थी।' नवाब ने तैश में आकर कहा—अबे, रुपये लेता है या मंतिख छांटता है, क्या लगाऊं धौल ?—रामधन ने रुपये लेकर उन्हें और राजा साहब को सलाम किया।

राजा साहब ने हंसकर कहा—देखा राजेश्वरी, नवाब का इनाम देने का तरीका।

नवाब खिलखिलाकर हंस पड़े। उन्होंने कहा—भग्गाके से तश्तरियां ला, गिलास ला, पैग ला। जल्दी कर।

क्षणभर में ही सब साधन जुट गए। राजा साहब तकिये के सहारे उठंग गए। शराब का दौर शुरू हुआ। नवाब ने गिलास में सोडा और शराब भरकर कहा—

राजेश्वरी, राजा साहब की तन्दुरुस्ती और बरकत के लिए।—तीनों ने हंसती हुई आंखें मिलाईं और शराब की चुस्कियां लेने लगे।

राजेश्वरी ने कहा—इस सरदी में बहुत दौड़-धूप की, नवाब साहब।

'मान गईं न आप नवाब को, लीजिए इसी बात पर दूसरा पैग।'

'नहीं नवाब, मैं तो कभी पीती ही नहीं। बहुत मुद्दत हुई, जब से महाराज की तबियत नासाज़ रहने लगी। आज मुद्दत बाद मुंह से लगा रही हूं।'

'तो पूरी कसर निकालिए राजेश्वरी भाभी, नवाब को इस ठण्डी रात में उस साले ठेकेदार से बहुत मगजपच्ची करनी पड़ी। साला वही रद्दी माल पटील रहा था। मैंने कहा: वह बोतल निकाल जो उस दिन हमारे सरकार की खिदमत में गई थी। और ये कवाब, सच कहता हूं राजेश्वरी भाभी, कस्बे में दूसरा नहीं बना सकता।'

'वाकई बहुत अच्छे बने हैं, मगर आप तो खाते ही नहीं नवाब साहब।'

'वाह, खिलाने में जो मज़ा है, वह खाने में कहां? देखा था अम्मी को, यही एक शौक उन्हें मरते दम तक रहा—एक से एक बढ़कर चीज़ें बनाना और खिलाना।'

'मुझे याद है नवाब, मैं तब बहुत बच्ची थी, आपा के साथ आती थी, वे छोड़ती ही न थीं—खींच ले जाती थीं। कितना खिलाती थीं; क्या कहूं।'

'मगर अब अम्मी तो हैं नहीं, नवाब उनका नालायक लड़का है, उसने विरासत में अम्मी की वह आदत पाई है। लीजिए, यह पैग तो पीना होगा।'

'मगर उधर तो देखो नवाब, महाराज ने सिर्फ होंठों को छूकर ही गिलास रख दिया है, पी कहां?'

'क्या कहूं, राजेश्वरी, तकलीफ देती है, पी नहीं सकता। डाक्टरों ने भी मना कर दिया है। मगर तुम पियो राजेश्वरी, आज मैं बहुत खुश हूं। लाओ नवाब, राजेश्वरी को एक पैग मैं भरकर दूं।'

'और हुजूर, एक नवाब को भी।'

'अरे, यह कब से? तुम तो कभी पीते नहीं थे।'

'आज ही से, अभी-अभी एक पैग पिया है मैंने।'

राजा साहब ने दो पैग भरकर तैयार किए। गिलास में भरकर कहा—लो राजेश्वरी, और तुम भी नवाब।'

'वाह हुजूर, यों नहीं, ज़रा-सा जूठा कर दीजिए कि यह जाम पाक तबर्रुक हो

जाए।' नवाब ने कहा।

राजा साहब हंस दिए। उन्होंने नवाब का हाथ पकड़कर और खींचकर छाती से लगा लिया। फिर आंखों में आंसू भरकर कहा—ननकू, मेरे प्यारे भाई, हमारी मां दो थीं, मगर वालिद एक थे। फिर भी तुम मेरे भगे भाई हो। ऐसे, जैसा दूसरा मिलना मुश्किल है। और ननकू, मैं सिर्फ प्यार की बदौलत ही जी रहा हूं।—उन्होंने प्याला ओठों से छुआकर नवाब को दिया और नवाब गटागट पी गए। उनकी आंखों में आंसू और होंठों में हंसी बिखर रही थी।

नवाब ने कहा—राजेश्वरी भाभी, बहुत दिन से सूने-सूने दिन जा रहे थे। आज तो कुछ जंच जाए।

'मगर नवाब, गले में अब सुर तो रहे ही नहीं।'

'बेसुरा ही सही।'

महाराज ने हंसकर—राजेश्वरी, आज नवाब को बहुत मिहनत करनी पड़ी है, उसकी बात रख लो।

'जो हुक्म, मगर मेरी एक अर्ज है।'

'कहो।'

'नवाब साहब को जो तबर्रुक बख्शा गया है, वही लौंडी को भी इनायत हो।'

'ओह, अच्छा ठहरो, सब्र करो।'

नवाब ने इशारा किया। रामधन तबला, हारमोनियम ले आया।

हारमोनियम नवाब खींच बैठे, और रामधन ने चारों ओर तकिये लगाकर राजा साहब को आराम से बैठाकर तबले उनकी गोद में रजाई में लपेटकर रख दिए। अम्बरी तमाखू की एक नई चिलम चढ़ा दी। तबले पर एक हल्की चोट देते हुए राजा साहब ने कहा—राजेश्वरी, अभी उंगलियों पर लकुए का असर नहीं है, काम दे रही हैं।

राजेश्वरी ने चुपचाप आंखों में प्यार भरकर राजा साहब पर उंडेल दिया। और आलाप लिया। हारमोनियम पर नवाब की अभ्यस्त उंगलियां नाचने लगीं, और तबले पर मृदु मन्द ताल नृत्य करने लगा।

राजेश्वरी की प्रौढ़ स्वर-लहरी ने वातावरण में एक प्यास उत्पन्न कर दी। यह वैसी न थी, जैसी वासना और यौवन की आंधी के झोंकों में मिली रहती है। यहां तीन प्रेमी विश्वस्त, पुराने और ऊंचे हृदय, अपने भौतिक आनन्द की चरम

अनुभूति ले रहे थे। वे लोग आप ही अपनी कला पर मुग्ध थे, आप ही अपनी तारीफ कर रहे थे, आप ही अपने में पूर्ण थे।

'तो हुज़ूर, अब कब ?'

'जब मर्ज़ी हो राजेश्वरी।'

'तबियत होती है कि कुछ दिन कदमों में रहूं।'

'मैं भी चाहता तो हूं राजेश्वरी, पर तुम्हारी तकलीफ का ख्याल करके चुप रह जाता हूं। देखती हो, मकान कितना गन्दा है, सिर्फ दो ही खिदमतगार हैं। इन्हें भी महीनों तनख्वाह नहीं मिलती, पर पड़े हुए हैं। तुम इन तकलीफों की आदी नहीं हो।'

'मगर हुज़ूर, क्या मैं उन खिदमतगारों से भी गई-बीती हूं ?'

'नहीं, नहीं, राजेश्वरी, मैं तुम्हें जानता हूं।'

'मगर हुज़ूर अपने को नहीं जानते, मेरी वह कोठी, जायदाद, नौकर-चाकर सब किसकी बदौलत हैं, हुज़ूर ने जो पान खाकर थूक दिया उसीकी बदौलत। अब हुज़ूर गरीब हो गए तो पुराने खादिम क्या बेगाने हो जाएंगे ?'

राजेश्वरी की आंखें भर आईं। कुछ ठहरकर उसने कहा—शर्म के मारे मैं खिदमतगारों को नहीं लाई, और इस टुटहे इक्के पर आई हूं। मैं कैसे बर्दाश्त कर सकती थी कि मालिक जब इस हालत में हों तो उसकी बांदियां ठाठ दिखाएं।

'नहीं-नहीं, राजेश्वरी, यह बात नहीं। पर मैं अपनी आंखों से तुम्हें तकलीफ पाते देख नहीं सकता। कभी देखा ही नहीं।'

'इसीसे हुज़ूर, मुझे अभी जबर्दस्ती भेज रहे हैं, मेरी नहीं सुनते ?'

'इसीसे राजेश्वरी।'

'और इस लौंडी का कभी कोई तोहफा भी नहीं कबूल करते ? उस बार जब जनाना महल नीलाम हो रहा था, मैंने कितनी आरज़ू की थी कि मुझे रुपया चुकता कर देने दीजिए, पुरखों की यादगार है। सब रियासत गई, मगर रहने का महल—आप मेरे आंसुओं से तो नहीं पसीजे हुज़ूर, आप बड़े बेदर्द हैं।'

राजेश्वरी फूटकर रो पड़ी, और राजा साहब के सीने पर गिर गई। राजा साहब उसके सिर पर हाथ फेरते रहे। फिर कहा—तुम भी बच्ची हो गई हो राजेश्वरी, अब भला उतना बड़ा महल मैं क्या करता ? अकेला पंछी। फिर उसमें

अब खुल गया जनाना अस्पताल, कितने लोगों का भला होता है। बोर्ड ने खाम-खाह मेरा नाम अस्पताल के साथ जोड़ दिया है।

'जी हां, खामखाह ही। वह लाखों की स्टेट जो कौड़ियों में दे दी। और अब हुज़ूर इस किराये के मकान में बहुत खुश हैं।'

'बहुत खुश, राजेश्वरी, बहुत खुश। न ऊधो का लेना, न माधो का देना। लेकिन बहुत देर हो रही है राजेश्वरी, गाड़ी पकड़नी है। स्टेशन काफी दूर है, और रास्ता बड़ा खराब है। तुम्हारा इक्का आ गया?'

'धक्के दीजिए मुझे, बुढ़िया जो हो गई हूं, अब आप यही तो करेंगे।'

राजा साहब असंयत होकर पलंग से आधे उठ गए। राजेश्वरी को खींचकर छाती से लगा लिया। फिर प्यार से उसके गंगा-जमुनी बालों की लटों को उंगलियों में लपेटते हुए कहा—बुड्ढा-बुढ़िया कौन होता है राजेश्वरी, मेरी आंखों में तुम वही, नये केले के पत्ते से रूप वाली, अछूते यौवन और अपार प्यार वाली, मेरे दिल और दिमाग की तरावट राजेश्वरी हो। तुम या मैं भले ही बूढ़े हो जाएं, लेकिन इन आंखों में झांककर जिसने तुम्हें देखा है, वह बूढ़ा नहीं। और तुम्हारे भीतर बैठकर जो एक-एक मोती तुम्हारी आंखों से सजाता जा रहा है, वह भी बूढ़ा नहीं।

राजेश्वरी धीरे से राजा साहब के मुंह के बिल्कुल पास फर्श पर बैठ गई। रामधन अम्बरी तमाखू चढ़ाकर गुड़गुड़ी रख गया। राजा साहब चुपचाप तमाखू पीने लगे। तमाखू की खुशबू ने कमरे को मस्त कर दिया।

राजेश्वरी ने कहा—हुज़ूर वादा-वक्फ हो।

राजा साहब ने भौंहें सिकोड़कर राजेश्वरी की ओर देखकर कहा—वादा?

'जी'

'क्या?'

'तबर्रुक।'

'ओह, भूली नहीं राजेश्वरी।'

'भूलने की एक ही कही, कल से आस लगाए हूं। नवाब के सामने फिर नहीं कहा।'

राजा साहब कुछ देर चुपचाप गुड़गुड़ी पीते रहे। फिर कहा—जरा और पास आओ तो राजेश्वरी।

राजेश्वरी बिल्कुल राजा साहब के मुंह के पास खिसक गई।

राजा साहब ने गुड़गुड़ी की सोने की मूनाल उसके होंठों में लगाकर कहा—एक कश खींचो तो राजेश्वरी।

'लेकिन, लेकिन हुज़ूर—'

'ऐन खुशी होगी, खींचो एक कश।'

राजा साहब की आंखों में प्यार का सारा ही रस उमड़ आया। राजेश्वरी ने आनन्द-विभोर होकर गुड़गुड़ी से कश खींचा।

'खुश हुई अब राजेश्वरी।'

'ओह हुज़ूर, कहीं खुशी से मेरी छाती न फट जाए। हुज़ूर ने गुड़गुड़ी-खास इनायत करके मेरी सात पीढ़ियों को तार दिया।'

राजा साहब ने खिदमतगार से कहा—रामधन, चिलम ठण्डी कर दे और गुड़गुड़ी उस अखबार में लपेटकर इक्के में रख आ।

राजेश्वरी का मुंह सूख गया। उसने कहा—यह आप क्या कर रहे हैं?

'मेरा दिल बाग-बाग है, तुम दुलखो मत।'

'मगर हुज़ूर...'

'मैं हुक्म देता हूं—मत बोलो।'

राजेश्वरी का सिर नीचे को झुक गया। उसने खड़े होकर, झुककर राजा साहब को सलाम किया और रोती हुई चली गई। राजा साहब चित्त अपने पलंग पर पत्थर की मूर्ति की भांति निश्चल-निर्वाक् पड़े रहे।

'यह क्या तमाशा है रामधन, महाराज मिट्टी की गुड़गुड़ी में तमाखू पी रहे हैं। गुड़गुड़ी-खास क्या हुई?' नवाब ने कमरे में आते ही हैरान होकर पूछा। रामधन चुपचाप खड़ा रहा। उसे बाहर जाने का इशारा करते हुए राजा साहब ने मुस्कराकर कहा—यहां आओ नवाब, मैं बताता हूं।

नवाब ननकू एकदम पलंग के पास जा खड़े हुए, राजा साहब ने हंसकर कहा—बैठो।

'मगर मैं पूछता हूं गुड़गुड़ी-खास क्या हुई?'

'बैठो तो कहूं।'

नवाब ने बैठकर कहा—कहिए।

राजा साहब ने रजाई से हाथ बाहर निकालकर नवाब का हाथ पकड़ लिया। कहा---नाराज न हो नवाब, राजेश्वरी को दे दी।

'क्या उन्होंने मांगी थी ?'

'नहीं, मगर उसे खाली हाथ कैसे जाने देता। तुम देखते ही हो, खानदान की वही एक चीज़ मेरे पास बची थी।'

नवाब कुछ देर होंठ चबाते रहे, फिर बोले---मगर आप मिट्टी की गुड़गुड़ी में तमाखू नहीं पी पाएंगे। मैं गुड़गुड़ी लाता हूं।

'कहां से ?'

'घर से।'

'कहां पाई।'

'अम्मी जान की है, बड़े महाराज ने बख्श दी थी। मेरे पास यह अब तक पाक धरोहर थी। अब आज काम आएगी।'

राजा साहब ने कहा—बड़े महाराज ने जो चीज़ बख्श दी, वह मैं वापस कैसे ले सकता हूं !

'तो अब हुज़ूर नवाब को जीने न देंगे ?'

राजा साहब हंस दिए। मीठे स्वर से बोले—खैर, इस प्रश्न पर पीछे गौर कर लिया जाएगा। पर मिट्टी की गुड़गुड़ी में तम्बाकू बहुत मीठा लगता है नवाब। हां, यह कहो, रात सामान कैसे जुटाया था। मैं जानता हूं तुम्हारे पास छदाम न था।

'जुट गया यों ही। नवाब हूं, कोई अदना आदमी नहीं।'

'मगर सच-सच कहो।'

'झूठ से फायदा ? चालीस रुपये बाबू साहब से लिए थे।'

'बड़ी तकलीफ दी उन्हें। अब ये रुपये दिए कैसे जाएं ?'

'जल्दी नहीं है सरकार, रहन पर लाया हूं। यों ही नहीं, जब हाथ खुला होगा, दे देंगे।'

'रहन क्या रखा ?'

'एक अदद था।'

'क्या अदद, बताओ ?'

'आप तो धांधली करते हैं, आपको मतलब ?'

'तुम्हें मेरी कसम नवाब।'

'ओफ!'

'कहो, कहो।'

'अम्मी का लंहगा था।'

राजा साहेब निश्चल पड़ गए। उनकी आंखों की कोर से आंसू बह रहे थे और उनका कांपता हुआ हाथ नवाब के हाथ में था।

द्वितीया

प्रथम पत्नी की मृत्यु के उपरान्त पति का हृदय व्यथित था, फिर भी उन्हें दूसरा विवाह करना पड़ा।
विवाहित पति और क्वांरी युवा बालिका के मानसिक घात-प्रतिघात का हृदय-ग्राही वर्णन इस कहानी में है।

उस दिन को सिर्फ चार मास और कुछ दिन व्यतीत हुए थे, इसी बीच में चन्द्रनाथ फिर से हल्दी चढ़ा और कंगना बांधकर एक मुग्धा बालिका को ब्याह लाए।

बालिका का नाम था आनन्दी। आयु चौदह वर्ष, रंग मोती के समान, कण्ठ-स्वर सितार की मूर्छना जैसा, चाल भीता-चकिता हरिणी जैसी, उंगलियां चम्पे की कली के समान, उत्तप्त स्वर्ण की मानो सजीव प्रतिमा। परन्तु मुख? मुख हमने देखा नहीं। एक बात देखी—पास-पड़ोस, मुहल्ले और कुटुम्ब की, सभी जाति, आयु और स्थिति की स्त्रियां झुण्ड की झुण्ड उस मुंह को देखने गईं, अपनी-अपनी हैसियत के अनुसार भेंट चढ़ाई और बालिका का मुंह देखा। वे नेत्रों में रहस्य का हल्का गुलाबी रंग लिए लौट रही थीं; वह रंग भला किस वस्तु की छाया थी? उसी मुंह की!

चन्द्रनाथ ने भी सुयोग पाकर उसे देखा। उस देखने के मूल्य में उन्हें मुंह-मांगे दाम अर्थात् 'हीरों का हार' देना पड़ा। स्तब्ध रात्रि में, विमल चांदनी में, चन्द्रनाथ ने वह उत्फुल्ल लज्जावान् मुख देखा। वे हंसे नहीं, बोले नहीं। कम्पित हाथों से घूंघट हटाया, फिर चुपचाप वैसे ही ढक दिया और उठकर चले आए। उस दिन वे दिन भर सोते रहे अथवा यों कहिए कि आंख बन्द किए पड़े रहे।

क्यों? उन हीरों के मूल्य में देखने योग्य उस मुख को नेत्रों से हटाकर हृदय के गम्भीर प्रदेश में, जहां ऐसी अमूल्य निधि सुरक्षित रखी जाती है, पहुंचाने की चेष्टा में वे बहुत प्रयत्न करने पर भी विफल ही रहे थे। उस रूप की प्रभा, जो

वे आंखों में भर लाए थे, भीतर प्रवेश पाता ही न था। आंख खोलते ही वह बाहर खिसककर गिरा पड़ता था। विवश चन्द्रनाथ दिन भर उस रूप-स्मृति को आंखों की पलकों में छिपाए पड़े रहे। हृत्पट न खुले या कब खुले, हमारे लिए कहना कठिन है।

एक बात और हुई, एक दिन ननद के बड़े आग्रह से कांपते-कांपते पेन्सिल हाथ में लेकर बड़े-बड़े टेढ़े अक्षरों में आनन्दी ने अपने हस्ताक्षर कर दिए थे। उन्हें उसी समय दौड़कर बहिन ने चन्द्रनाथ के हाथ में ला धरा। चन्द्रनाथ कुछ बोले नहीं, हिले भी नहीं; जड़वत् बड़ी देर तक उन टेढ़े अक्षरों को देखते रहे। फिर उन्होंने एक बार मर्मभेदिनी दृष्टि से अबोध बहिन को देखा, और फिर मसनद के सहारे उठंग कर सो गए। बहिन भाई के हास्य का यह सुयोग खोकर और उस दृष्टि से डरकर भीतर भाग गई।

चन्द्रनाथ की अवस्था पैंतीस वर्ष की थी। वे इलाहाबाद यूनिवर्सिटी में अंग्रेज़ी साहित्य के प्रोफेसर थे। उन्होंने इङ्गलैण्ड से ससम्मान डी० एल० का प्रतिष्ठित पद प्राप्त किया था। वे अतिशय कान्तिवान्, विनम्र, हास्यवदन, सुन्दर, बलिष्ठ, नीरोग, चरित्रवान्, गम्भीर और गण्यमान्य विद्वान् थे। सभा-सोसायटियों की वे जान थे, कालेज के छात्रों के प्रिय और मनभावन गुरु, मित्रों में सभ्यहास्य और सविवेक विनोद की प्रतिमा थे।

आनन्दी थी एक दरिद्र और अपढ़ परिवार की मातृहीना बालिका। वृद्ध पिता का नीरस प्यार और विमाता का विष-प्यार पाकर उसने बाल-काल के दिन काटे थे। मां को उसने देखा था, उसकी स्मृति भी उसके मन में थी। वह चाहे जब तनिक मनोवेदना प्राप्त करते ही 'मां' कहकर रो उठती थी। चिर-परलोकगामिनी मां के इतने निकट वह मुग्धा सुन्दरी बालिका अब भी, विवाहिता होने पर भी, थी। जीवन का यह प्रबल परिवर्तन, सौभाग्य का यह उदय, रानियों जैसा शृंगार, आदर और प्यार उसे उस मां से दूर न कर सका था।

इस प्रकार चन्द्रनाथ अपनी द्वितीया वधू से आयु में ढाई गुने अधिक, विद्या में अनन्त तक अधिक, गम्भीरता और अनुभव में सहस्र गुणा अधिक, शरीर-परिमाण में चतुर्गुण और विस्तार में त्रिगुण अधिक थे; किन्तु रूप में चतुर्थांश और हास्य-चापल्य में अष्टमांश तथा लाज में दशांश थे।

यह बालिका मेरी धर्मपत्नी है, सहधर्मिणी है, यह स्मरण करते ही और इस

तथ्य पर विवेकपूर्ण दृष्टि डालते ही प्रथम बार तो वे सहम गए थे। अब वे केवल चमक भर उठते थे।

इतना अधिक मूल्य चुकाकर एक बार उस मुख का दर्शन करने के बाद चन्द्रनाथ फिर उसे बहुत यत्न करने पर भी न देख सके। उसकी एक किरणमात्र देखने को उन्हें पचासों बार घर में व्यर्थ आना पड़ता, अनेक अस्वाभाविक चेष्टाएं करनी पड़तीं, विविध हास्य-कलाओं का आयोजन करना पड़ता, जो कुसमय और अनभ्यास के कारण वीभत्स बन जातीं।

बालिका में और कुछ चाहे न हो, पर पति की इस चेष्टा को समझने की मानो दैवी शक्ति थी। वह अपने समस्त यत्न से अपने शरीर के अणुमात्र अंग को भी उनकी दृष्टि से बचाने के लिए सचेष्ट रहती। चन्द्रनाथ की साध्वी माता उसका दुर्ग थीं, वह उन्हींके अंचल में प्रायः छिपी रहती थी।

ममता, त्याग और प्रेम के जिन उच्च गुणों का माता शब्द में तात्विक अस्तित्व है, वह सब भौतिक रूप में इस पवित्र और पूज्य माता में था। अनाथा मातृहीना बालिका ने अचानक उनकी गोद पाकर अपने अब तक के जन्म को कृतार्थ माना। उसे जन्म देकर जो मातृ-मूर्ति विलीन हो गई थी, वह उसे अनायास ही मिल गई। उसके लिए वही माता पृथ्वी पर उस समय सबसे अधिक घनिष्ठ और सुपरिचित थी।

परन्तु चन्द्रनाथ ? उसके धर्मपति ? वे तो उससे बहुत दूर थे। उसने उस समय घूंघट के आवरण में छिपकर गुरुजनों के आदेश-पालन से विवश होकर बड़ी कठिनाई, बड़े साहस से, आपना कण्टकित हाथ चन्द्रनाथ के हाथ में देकर विमूढ़ की नाईं अग्नि-प्रदक्षिणा अवश्य की थी; पर वे उसके पति हैं, पति-पत्नी का सम्बन्ध क्या होता है, उसके शरीर और आत्मा पर उसके पति का हिन्दू-समाज की रूढ़ि के अनुसार असाध्य अधिकार है, यह उसे कुछ भी मालूम न था।

अलबत्ता, अपनी विवाहिता सखियों से उसने अस्पष्ट रूप में सुना था कि पतिगण विवाह के बाद कैसे असाध्य और अश्लील व्यापार करते हैं। इस बात से वह बहुत ही भयभीत, चिन्तित और घबराई थी। परन्तु यहां माता को पाने पर वह बहुत कुछ निश्चिन्त हो गई थी। उसे विश्वास था—माता के रहते मुझपर कौन अत्याचार करेगा ? किसका ऐसा साहस है ? वह दिन भर माता के साथ रहती,

खाती और रात को उसीकी खटिया पर सो रहती। इस विषय में उसने अपने हठ के आगे घर भर की महिलाओं को परास्त कर दिया था।

चन्द्रनाथ पूर्वपत्नी की मृत्यु के बाद बाहर की मर्दानी बैठक में अकेले सोते थे। रात्रि में अन्तःपुर में आने का वे दिन की भांति साहस न कर सकते थे। उनका प्रबल विवेक फिर भी जागरित तो था ही, पर वे अतिशय व्याकुल, अनिद्र और सन्ताप से रात काटते थे। इस विवाह से पूर्व कभी उनकी ऐसी दुरवस्था नहीं हुई थी। वे सोचते थे, पन्द्रह वर्ष पूर्व जब मेरा प्रथम विवाह हुआ था, तब वह अवसर पाते ही कैसी चितवन से घूंघट के बारीक आवरण में मुझे देखा करती थी। वह हीरे के समान सतेज दृष्टि और दुर्दम्य आनन्द से उत्फुल्ल होंठ आज भी मेरे मनोमन्दिर में वैसे ही ताजे रहते हैं। यह तो उस तरह नहीं देखती, सदैव छिपती है, जैसे हिरणी शिकारी से भय खाती है! क्या इसके हृदय में मेरे लिए प्रेम नहीं? यह मुख उसकी अपेक्षा कितना सुन्दर है? वह मुख चौदह वर्ष के काल में, सर्दी-गर्मी दुःख-सुख, क्रोध-विराग प्राप्त करके कितना फीका, कितना साधारण बन गया था। उसकी अपेक्षा यह कितना नवीन, सुन्दर, मधुर, अमूल्य है? ओह! इसकी कभी सम्भावना नहीं थी। परन्तु विचारधारा और हृदय कहां दौड़ा जा रहा है। ओह–ओह! वहां अति दूर! अरे! यह तारुण्य, यह सौन्दर्य, यह तप्त स्वर्ण-कान्ति, अरे इसमें डूब। अभागे हृदय! किस अधेड़ को यह सौभाग्य प्राप्त होता है? सौभाग्य! चन्द्रनाथ तड़प उठे। सौभाग्य शब्द ठठाकर मानो प्रेत की तरह हंस पड़ा। वह निर्जीव, निस्पृह, निश्चेष्ट मुख अर्थहीन नेत्रों को खोलकर उन्हें देखने लगा। चन्द्रनाथ विकल होकर रोने लगे। रोते-रोते ही वे सो गए!

प्रातःकाल होते ही उन्होंने हठात् हरिद्वार जाने का प्रस्ताव माता से कहा। वे कुछ कह भी न पाई थीं कि उन्होंने कहा—झटपट उसके साधारण कपड़े ट्रंक में रख दो, गाड़ी में देर नहीं है। माता अवाक् रह गई। वे पुत्र के और भी निकट आकर बोलीं। अकेली बहू को कैसे ले जाओगे, वह कैसे बोलेगी?

चन्द्रनाथ ने क्रुद्ध स्वर में कहा—क्या वह गूंगी है?

क्रोध के प्रवाह को छितराकर माता ने कहा—बेटे! पराई बेटी है, नई आई है, बच्ची है, सीधी-सादी, एक दिन में तो सब बातें होतीं नहीं?

चन्द्रनाथ ने कहा—तुम भी चलो।

माता चुपचाप भीतर चली गई।

बालिका ने सुना। वह थर-थर कांपने लगी। उसने कहा—अम्मां जी ! तुम चलोगी ?

'न बेटी। तुम सैर-सपाटे में रहोगे, मेरे पैरों में इतना दम कहां ? फिर मेरी तबियत भी ठीक नहीं। तुम मेरे नाम के दो गोते गंगा जी में ज़रूर लगा आना।'

वधू ने माता के पैरों में गिरकर रोते-रोते कहा—अम्मां ! उनके साथ अकेले मुझे कहीं मत भेज देना !

'बेटी ! उनसे तुझे भय क्या है; वे ही तेरे रक्षक, तेरे स्वामी, तेरे सब कुछ हैं; अब तू उन्हें पहचान; उन्हें सुखी कर और सुखी हो ! इससे मेरी आत्मा भी तृप्त होगी।'

बालिका कुछ भी न समझकर बोली—नहीं, मैं न जाऊंगी।

चन्द्रनाथ ने सुनकर अपने असाध्य अधिकार का प्रयोग किया। उनकी आज्ञा की अवहेलना करने का घरभर में किसीका साहस नहीं; अधिकार भी नहीं था। घर के आबाल-वृद्ध सभी से एक यही बात सुनकर बालिका को जाना पड़ा; जिस तरह पिता के घर से यहां आना पड़ा था। वह सोचने लगी : ओह ! स्त्री-जाति का भाग्य भी कैसा है ? वह अतिशय भयभीत, अतिशय निरानन्द और अति क्रुद्ध-भाव से पति के पीछे-पीछे चली।

पुण्य-सलिला जाह्नवी का सौन्दर्य हरिद्वार में अद्वितीय है। वैसा मीठा, शीतल, स्वच्छ और पाचक जल गंगा में फिर नीचे कहीं देखने को नहीं मिलता। चन्द्रनाथ के लिए हरिद्वार नया नहीं, परन्तु बालिका आनन्दी के लिए तो सब कुछ नया था। सेकेण्ड क्लास की गद्दी-मण्डित सीट, बिजली का झर-झर चलता हुआ पंखा, स्वच्छ पाखाना, चमचमाता डिब्बा, यह सब देखकर अबोध आनन्दी क्षणभर को अपना भय भूलकर देखती रह गई, पर जब गाड़ी चल दी और डिब्बे में मुसाफिरों की भीड़ न घुसी तो वह घबराई। चन्द्रनाथ जैसे दीर्घकाय और अपरिचित पुरुष के साथ एकाकी रहना ही तो उसका सबसे बड़ा भय था, क्योंकि वह जानती थी, इस व्यक्ति को मेरे शरीर पर असाध्य अधिकार प्राप्त है और यह उस सुयोग की प्राप्ति के लिए ही मुझे अकेली ले आए हैं। ननद ने रहस्य में यह बात उसे चलते-चलाते कह भी दी थी।

फिर भी आनन्दी मार्ग भर सब भय को पी गई। वह बोली नहीं, उठी नहीं, खांसी-खखारी भी नहीं, कुछ खाया-पिया भी नहीं। चन्द्रनाथ अपना सभी पाण्डित्य, प्रौढ़ ज्ञान और महत्व खोकर हर तरह उस बालिका की अनुनय-विनय करके थक गए। वह सिवा सिकुड़ जाने के और कोई चेष्टा न कर सकी। वह चन्द्रनाथ के बहुत अनुरोध करने पर भी पैर फैलाकर सोई नहीं। वस्त्रों को और अच्छी तरह समेटकर बैठी-बैठी ऊंघने लगी। हताश चन्द्रनाथ अपने बर्थ पर पड़ गए।

नववधू, विवाह, एकान्त और सुयोग सब कुछ, पर फिर भी कुछ नहीं। उन्होंने वर्तमान आंखें बन्द कर लीं, वे अब भूत की अनेक खट्टी-मीठी स्मृतियों को सोचते-सोचते कभी जागरित, कभी निद्राग्रस्त होकर स्वप्न देखने लगे।

रात व्यतीत हुई, हरिद्वार में हर की पैड़ी पर एक सजे हुए मकान में चन्द्रनाथ का डेरा पड़ा। आनन्दी ने समझा, सचमुच यह तो घर है। मैं अकेली स्त्री इस घर की स्वामिनी और ये अकेले पुरुष इसके स्वामी।

अब उसे स्वामी के विषय में सोचने का अपने जीवन में प्रथम बार अवसर आया। यह स्वामी क्या वस्तु है? वही? सखियां रस-रंग की चर्चा में जिसका जिक्र किया करती हैं? जो प्यार करता है, सुख देता है, वस्त्र-अन्न का दाता, रक्षक और पति है। वही है यह? इससे बोलना पड़ेगा? मुंह खोलना पड़ेगा? अपनी आवश्यकता जतानी पड़ेगी! अरे! अरे! इनसे तो भय लगता है—कितने लम्बे-चौड़े आदमी हैं। कैसा भारी मुंह है। कितना कम हंसते हैं। बालिका सोच में पड़ गई। उसने मधुर स्मृतियों को जाग्रत किया। सहेलियों की रहस्यमयी मुस्कान उसे स्मरण हो आई। उसने प्रथम बार चाव की दृष्टि से पति को घूंघट की ओट से देखा। परन्तु शोक! किस प्रबल बन्धन ने उसके हृदय को विकसित न होने दिया? वह देखती तो रही, पर दृष्टिपात के प्रारम्भ में उसके मन में जो माधुर्य था, उसे वह स्थिर न रख सकी।

चन्द्रनाथ थकित पड़े थे, पण्डे ने आकर कहा—यजमान, जोड़े से स्नान होगा? मैं श्रीफल ले आया हूं!

चन्द्रनाथ जरा हंसे। उन्होंने आनन्दी की ओर देखा। पण्डे से कहा—बहूरानी को राज़ी करो। मैं इसे अकेली क्या साथ लाया, आफत हो गई। रास्ते भर न खाया, न पिया, मिट्टी की लोढ़ी की तरह बैठी रही है।

पण्डा वृद्ध और हंसमुख था। अपने पोपले मुंह पर हज़ारों सिकुड़नें डालकर

उसने कहा—सरकार, वे अभी बालक हैं, सब समझ जाएंगी, तब क्या ऐसी रहेंगी? भगवान् ने उन्हें राजरानी बनाया है, यह बात भी वे समझेंगी ही।

आनन्दी ने बूढ़े की बात को यथासाध्य समझने की चेष्टा की। उसने अपने बहुमूल्य आभूषण और वस्त्रों को देखा। 'राजरानी'! वह सोचने लगी। सच ही तो! उसने उत्फुल्ल नयनों से घूंघट ही में वृद्ध को और फिर पति को देखा।

इस बार चन्द्रनाथ की आंखों से उसकी दृष्टि भिड़ गई। शुभ दृष्टि की रस्म अब निबटी। उन्होंने कहा—क्या कहती हो, जोड़े से स्नान करना है?

बालिका लजाकर रह गई।

बूढ़े पण्डे ने कहा—मैया! गंगा में जोड़े स्नान करने से सुहाग अचल रहता है; दूध-पूत से गोद भरी रहती है। तीर्थ में ऐसा सुयोग कब-कब आता है?

बालिका ने लालसा की दृष्टि से वृद्ध को देखा। चन्द्रनाथ उठे। दम्पति धीरे-धीरे कमर-कमर जल में पैठ गए। गंठजोड़ा बंधा था। अनेक स्त्री-पुरुष हर की पैड़ी पर बिहार कर रहे थे। भगवती गंगा झल-झल करती लहरें मार रही थीं। आनन्दी आनन्द के उल्लास में लज्जा और संकोच को क्षणभर के लिए भूल गई। पानी में कहीं डूब न जाए, इस भय से उसने कसकर पति का हाथ पकड़ लिया। अब वह गिन-गिनकर गोते लगाने लगी। प्रकृत बालिका-स्वभाव और चिरसहचर जीवन ने अस्वाभाविक वधूपन को किसी मोहमयी मदिरा के प्रभाव से दूर कर दिया। हर्षातिरेक से वह किलकारियां भरने लगी, चन्द्रनाथ मूढ़ बने चुपचाप बालिका-पत्नी का उल्लसित स्नान और जल-क्रीड़ा देखने लगे। पर उनके हृदय में ज्वार आ रहा था। वे न जाने क्या सोच रहे थे। इसी हरद्वार के घाट पर, इसी हर की पैड़ी पर! ओफ जाने दो। उन्होंने मानो नींद से चौंककर कहा—चलो, चलो। अब अधिक नहीं! —भीगी हुई केसरी रंग की साड़ी को शरीर से चिपकाए, अधिकांश संकोच को गंगा में धोकर, उत्फुल्ल होंठ और नयनों से पति को घूरती हुई आनंदी दृढ़ता से पति की मुट्ठी पकड़े बाहर निकली।

चैत्र का छलकता हुआ वसन्त, उसपर हरिद्वार की सुनहरी ऋतु, दिन में ज़रा तीखी धूप, जो मन में सदैव लहरों में खेलने की अभिलाषा उत्पन्न करती है और रात की गुलाबी सर्दी, जो मीठी नींद लाने में अद्वितीय है, चन्द्रनाथ के लिए क्षण भर को वास्तव में सुहागरात का स्वाद दे गई। आनन्दी कनखियों से देखने, मृदु

स्वर में अपनी इच्छा प्रकट करने, कभी-कभी उसी तरह स्नान का अनुरोध करने और छोटी-मोटी व्यवस्थाओं में उनका हाथ भी बंटाने लगी। फिर जब वे सन्ध्या के समय खोमचे वालों की भरपूर भीड़ में थोड़े संकोच के बाद हर की पैड़ी के विशाल प्राङ्गण में आनन्द के साथ फालूदा, कुल्फी की बरफ और दहीबड़े खाने लगे, तब चन्द्रनाथ की मानो हृद्वेदना कतई सो गई। वे एक बार उल्लास के साथ द्वितीया पत्नी के साथ प्रमोद में लगे।

आनन्दी ने सोचा, भय की कोई बात नहीं है। ये देखने में खूब लम्बे-चौड़े अवश्य हैं, जैसे हमारे पड़ोस के वे सेठ जी थे, पर वैसे बुरे मिज़ाज के नहीं हैं। हंसकर बात करते हैं, दस बार आवश्यक वस्तु की पूछताछ करते हैं, हर समय मन बहलाते हैं; फिर अपने पति तो हैं; गैर तो नहीं। वह मस्तक पर रेखा डालकर थोड़ी गम्भीरता से सोचती, और इस प्रकार साहस और गृहिणी के गाम्भीर्य का उसके मन में धीरे-धीरे उदय होता। दो-तीन दिन बाद एक बार उसने कहा—बाज़ार की पूरियां आप कब तक खाएंगे, सामान लाइए तो रसोई बन जाए।—चन्द्रनाथ ने चांद पाया। जिस समय वे प्रथम बार पत्नी के हाथ की रसोई खाने बैठे, कच्ची दाल और जली रोटियां सराह-सराहकर खाने लगे। धुएं के मारे बालिका की आंखें अन्धी हो रही थीं। अकेली, बिना सरो-सामान के रसोई बनाने का यह उसका प्रथम प्रयास और प्रथम साहस था। भोजन करके चन्द्रनाथ जब थाली को रुपयों से भरकर उठे, तो आनन्दी एकबारगी ही विह्वल हो उठी। वाह! इनके बराबर प्रिय और कौन है! उस दिन उसने पति की जूठी थाली में भोजन करके एक अभूतपूर्व आनन्द अनुभव किया। और जब चन्द्रनाथ मीठी नींद ले रहे थे, वह चुपके से आई और पैरों के पास बैठकर धीरे-धीरे पैर दबाने लगी। चन्द्रनाथ की आंखें खुलीं। देखा, पत्नी पत्नी के स्थान पर उपस्थित है। उन्होंने अधीर होकर उसे खींचकर हृदय से लगा लिया। अतिशय आनन्दातिरेक से उनका शरीर बेसुध हो गया। और फिर वे थोड़ा सचेत होते ही किसी अतर्क्य शक्ति के प्रभाव से, उस वेदनास्थल पर शीतल स्पर्श-मरहम लगाकर फूट-फूट कर रो उठे। बहुत रोए, ज्यों-ज्यों उन्हें सुख मिलता था, उनका रुदन फूटता था। उस रुदन के अज्ञात कारण को न जानकर, आनन्दी बहुत घबराई। उसने फौरन प्रश्न किया—यह क्यों?—इस प्रश्न में घूंघट भी खसका, स्निग्ध नेत्रों ने प्रश्नों का तांता बांध दिया। फिर उसने अपने आंचल से पति के आंसू पोंछ डाले। चन्द्रनाथ ने थोड़ा शान्त होने पर

पत्नी का चुम्बन किया। मुख्य विवाह तो उनका अब हुआ। सारी विषमता नष्ट हुई। अब दोनों व्यक्ति एक दूसरे के अति निकट, परस्पर एक दूसरे के परम हितैषी, प्रेमी और अकपट बन्धु बने। अब वे वास्तव में पति-पत्नी थे; और आनन्दी अब इसका रहस्य समझ गई थी।

चन्द्रनाथ छुट्टी पूरी होने पर नौकरी पर आ गए। साथ में अकेली आनन्दी थी। नौकरी बड़ी आसान थी। अधिकांश समय छुट्टी का रहता और वह पत्नी के पास कटता। चन्द्रनाथ ने देखा, इस पत्नी-पद पर यह जो बालिका आई है, उसमें नैसर्गिक सरलता को छोड़कर और कुछ योग्यता इस पद पर बैठने योग्य नहीं। रूप ? रूप एक पृथक् वस्तु है—पत्नित्व से उसका क्या सम्बन्ध ? चन्द्रनाथ की गहन विवेचना-बुद्धि इस बात को ठीक-ठीक समझ गई थी। वे बड़े कर्मठ और धीर पुरुष थे। वे पत्नी की कमी दूर करने, उसे पूर्ण पत्नी बनाने के आयोजन में लगे। साधारण शिष्टाचार से लेकर सीना-पिरोना, रसोई बनाना, पढ़ाना-लिखाना एवं गान-विद्या का भी शिक्षण देना उन्होंने ठान लिया। वे आवश्यकता से ऊंची उड़ान उड़े। केवल कल्पना से नहीं, कर्म से भी। वे दो-दो घण्टे चूल्हे के आगे बैठकर सब प्रकार के पाकशास्त्र की स्वयं शिक्षा देने लगे। पाक-विद्या की जितनी हिन्दी पुस्तकें मिल सकती थीं, सभी उन्होंने खरीद लीं। फिर साधारण सिलाई से लेकर कसीदे तक के काम के लिए उन्होंने शिक्षिकाएं नियत कर दीं। पढ़ाने के लिए दो अध्यापक प्रतिदिन बारी-बारी से आकर पढ़ाने लगे। एक केवल गणित और दूसरा हिन्दी भाषा। रात को स्वयं चन्द्रनाथ हारमोनियम लेकर बैठते; परन्तु एकदम वे कल्याण, विहाग और सोरठ पर दौड़ पड़ते।

विवाह के बाद नववधू को ऐसी भयानक विपत्तियों का सामना करना पड़ता है, इतना कठोर परिश्रम करना पड़ता है, यह आनन्दी को ज्ञात न था। वह भौंचक-सी सभी की आज्ञा मानती, सभी कुछ सीखना चाहती, सभी तरह योग्य बनना चाहती। पर सबके बीच में एक वस्तु बाधक थी! उसकी प्रकृति, आयु का विकास, यौवन का विकास और ठीक समय पर चन्द्रनाथ की; नहीं-नहीं, पति की प्राप्ति। परन्तु पति में एक अद्भुतता थी। क्षणभर में तो वे उस नव वधू के नवपति, आनन्द और उल्लास के देवता, प्यार और आदर के उद्गम थे; परन्तु दूसरे ही क्षण में, कठोर गुरु, नियन्ता, संरक्षक, शिक्षक और न जाने क्या-क्या ? अब बालिका समझे तो

क्या ? सोचे तो क्या ? कहे तो क्या ? और करे तो क्या ?

उसके प्रकृत हास्य और विनोद में व्याघात पड़ने लगा। उसकी प्रत्येक चेष्टा की चन्द्रनाथ आलोचना करते, रहन-सहन में ऐब निकालते। इस तरह इस बात को मत बोलो, इतने जोर से मत हंसो, इस तरह खड़ा होना सभ्यता नहीं, यह वस्त्र इस तरह नहीं पहना करते, अरे ! तुमने इस तरह पांव फैलाकर बैठने की आदत नहीं छोड़ी ? इन बातों से आनन्दी का खाना-पीना, सोना-जागना, यहां तक कि सांस लेना भी हराम हो गया।

उसके हृदय में पति के प्रति प्रेम का पूर्ण स्फोट नहीं हुआ था। उसके हृदय की कली अविकसित थी। इसीपर उसपर दिन पर दिन कठोर होते हुए उसके पति के शासन ने उसे भयभीत और शंकित कर दिया। चन्द्रनाथ के अन्तस्तल को समझने की शक्ति उस अबोध में कहां थी ? जिस आयु में जीवन आंखों में होता है, उस आयु में प्रौढ़ वासना का तत्त्व कैसे समझा जाए ? आनन्दी थकित, चिन्तित और पीड़ित-सी पति की बातों को यथासाध्य मानने का ध्यान करती, चेष्टा करती, परन्तु उससे सदैव भूलें होतीं। वह पति को क्रुद्ध देखकर जरा भयभीत होती, पर उन्हें हंसता देखकर निश्शंक देखने लगती। धीरे-धीरे उसे इस जीवन का भी अभ्यास हो गया। उसे ऐसा भास हुआ, ये तो इसी तरह क्षण में हंसते, क्षण में क्रुद्ध होते हैं, इसका ज़्यादा विचार न करना चाहिए।

चन्द्रनाथ जब कड़े शासक बने थे, तब यदि शासक ही बने रहते तो वे अपने उद्देश्य में सफल होते। परन्तु वे भावुक भी तो थे। पत्नी को प्यार भी करते थे, अपार दया भी उनकी उसपर थी। वे जानते थे कि इस उल्लसित कुसुम-कलिका को समवयस्क पति के साथ पूर्ण विकसित होने देने का स्वाभाविक अधिकार मैंने छीनकर, इसपर अन्याय भी किया है। पर किया क्या जाए। उसे अति शीघ्र अपने पत्नी-पद के योग्य बनाने की बड़ी आवश्यकता भी थी। विवश हो वे उसे शासन में रखने के लिए केवल आवश्यक कड़ाई करते, परन्तु फिर यथासम्भव प्रेम और क्षमा का भाव भी रखते।

इसीका गलत अर्थ आनन्दी ने लगाया था। और वह अब पति के क्रोध की उपेक्षा करने लगी थी। उसकी आयु का मद, और धीरे-धीरे प्राचीन बनना उसका सहायक था।

चन्द्रनाथ को जीवन का पूर्ण विकास प्राप्त था। उनकी आयु, शिक्षा और परिस्थिति ने उस विकास को सहायता दी थी। चन्द्रनाथ जैसे पुरुष अपनी स्त्री को सहधर्मिणी के रूप में अथवा कम से कम पत्नी के रूप में अपने सम्मुख देखे बिना कैसे सन्तुष्ट रह सकते थे? परन्तु आनन्दी पत्नी या सहधर्मिणी थी कहां? खासकर चन्द्रनाथ जैसे व्यक्ति की? वह अबोध, अज्ञानी बालिका हठात् विषम पुरुष की स्त्री बनाई गई और फिर हठात् उसे उसकी सहधर्मिणी और पत्नी बनाने के लिए कई अध्यापक, अध्यापिकाएं, स्वयं चन्द्रनाथ और बहुत कुछ सरंजाम धूम मचाने लगा। उसका जीवन प्रारम्भ था। विवाह और पति, इन दो मधुर शब्दों से यौवन के प्रारम्भ में जो लहरें उठती हैं, वह आनन्दी के मन में उठती थीं; स्वाभाविक रूप से भी और सखी-सहेलियों तथा पड़ोसिन समवयस्काओं के द्वारा उत्तेजन प्राप्त करने पर भी। परन्तु उन लहरों का किनारा तो एकमात्र पति है; वह पति यदि तिल बराबर पति था, तो पहाड़ बराबर बुजुर्ग, गुरु और शासक था। वह रत्ती भर यदि सखा था तो मन भर अधिकारी था! जैसे वासन्ती वायु अपने झोंकों से कली को खिलाती है और दोपहर की धूप का प्रखर तेज उसे मुरझाकर झुलसा देता है, उसी प्रकार आनन्दी की दशा थी।

चन्द्रनाथ एक चुटीले हृदय के पुरुष थे। उनकी जीवन-संगिनी छिन चुकी थी, जिसके साथ उन्होंने अपने नवीन यौवन के उल्लास और विकास के साथ यह प्रौढ़ पद प्राप्त किया था। उसकी मृत्यु के तत्क्षण बाद वे आतुर होकर एक स्त्री-शरीर के लिए विकल हो उठे। तब तक वे स्त्री-शरीर और पत्नी एवं सहधर्मिणी में क्या अन्तर है, यह समझे न थे। अब पुराने शरीर की जगह नया शरीर, ढले यौवन की जगह उठता यौवन, विषाद की जगह उल्लास उन्हें मिला। पर नहीं मिली पत्नी, सहधर्मिणी, जीवन-संगिनी। उसे खोकर अब वे इतने दिन बाद जागरित हुए।

तारों से भरी रात थी। बड़े परिश्रम से थकित चन्द्रनाथ बाहर से आए थे। घर में देखा, आनन्दी बेसुध पड़ी सो रही है। चन्द्रनाथ सोचने लगे, मेरा तो अभी भोजन भी नहीं हुआ। यह सो गई। एक वह थी, जो ऐसी अवस्था में रात्रि भर खड़ी प्रतीक्षा करती थी। पत्नी और सहधर्मिणी बनने के लिए स्त्री को कितनी तपस्विनी, कितनी साध्वी, कितनी इन्द्रिय-विजयिनी बनने की आवश्यकता है—अब उन्होंने इसपर गम्भीर विचार किया।

ओह तपस्विनी ! तुमने भूख-प्यास, क्रोध-निद्रा को जीत लिया था; तुम अपने साधारण वेश और साधारण आकृति में किस दायित्व को छिपाए मेरे जैसे प्रकांड पुरुष के साथ आधी आयु तक चलीं। कैसी सरलता, कैसे सुख, कैसे आनन्द के साथ ! तुम इतने ज़ोर से कभी न हंसती थीं; पर तुम्हारे साथ उतने ही ज़ोर से मैं भी तो हंसता था। वह कितना हंसती है, पर मैं उस हंसी से इतना भयभीत होता हूं, जितना बच्चे बिजली की तड़प से। सदैव इसकी आत्मा हंसती है और मेरी रोती है। मेरे जीवन में घाव है, मेरे निर्वाह में किरकिरी है, पर इसका जीवन तो अभी सोकर उठा है, अपने जीवन के प्रभात में यह गरीब मुझ घायल के साथ कहां तक कृत्रिम वेदना सहन करेगी ! उन्होंने शय्या पर सुख की नींद लेते आनन्दी के स्वर्ण-शरीर को देखा, फिर उनकी दृष्टि सुदूर आकाश में टिमटिमाते एक तेजस्वी तारे पर जाकर अटक गई। उन्होंने देखा वह शीर्ण मुख, वह शान्त मुद्रा करुण-भाव से उन्हें देख रही है। वे दोनों हाथ आकाश की तरफ फैलाकर—क्षमा-क्षमा, ओ तपस्विनी, क्षमा ! कहकर उन्मत्त की तरह दौड़े।

आनन्दी हड़बड़ाकर उठ बैठी। नींद पर झुंझलाई। अपने पर मलामत की। वह अतिशय अपराधिनी की तरह भयभीत दीवार के सहारे खड़ी पति का उन्माद देखने लगी। बालिका में उद्विग्न पति को सान्त्वना देने का साहस कहां था ? चन्द्रनाथ पृथ्वी पर गिरकर रोने लगे और वहीं वे सो भी गए। आनन्दी रात भर उनके पैरों को गोद में लिए बैठी रोती रही।

दूसरे दिन दोनों ही चुप थे। चन्द्रनाथ नीची गर्दन किए चुपचाप भोजन कर गए। आनन्दी ने पति को भोजन कराकर स्वयं कुछ न खाया। सन्ध्या समय चन्द्रनाथ ने घर में आकर देखा, आनन्दी चुपचाप गृहकार्यों में लगी है। रसोई प्रथम ही से तैयार है। पति को देखते ही उसने विनयपूर्वक पति से भोजन को कहा। चन्द्रनाथ ने पत्नी का वह स्वर प्रथम कभी न सुना था। उन्होंने देखा, गम्भीर विषाद की रेखा और थकित भावना उन उत्फुल्ल नयनों को निर्जीव कर चुकी थी। पर वे स्वयं बहुत गम्भीर थे। उन्होंने आनन्दी पर कुछ ध्यान न दिया; चुपचाप भोजन करके बाहर बैठक में चले गए।

धीरे-धीरे रात्रि गम्भीर होने लगी। चन्द्रनाथ ने शयनागार में जाकर देखा, दूध के समान शय्या पर फूलों से शृंगार हो रहा है, परन्तु आनन्दी का वहां पता

नहीं। चन्द्रनाथ ने इधर-उधर देखा। घरभर देख डाला। आशंका और भय से वे छटपटाने लगे—हे ईश्वर! मामला क्या है?—रसोई के भीतर की ईंधन वाली कोठरी में आनन्दी धरती पर पड़ी थी। उसे होश न था। चन्द्रनाथ ने बाहर लाकर उसे देखा—शरीर ठण्डा, और अकड़कर लकड़ी के समान बन गया है, आंखें पथरा गई हैं, मुख से भाग आ रहा है। चन्द्रनाथ सब समझ गए। उन्होंने धैर्य से नाड़ी और हृदय के स्पन्दन को देखा और एक क्षण भी व्यर्थ न खो, डाक्टर के लिए दौड़े।

प्रभात की ऊषा उदय के साथ ही साथ आनन्दी ने चैतन्य लाभ किया। दीप की क्षीण रेखा में उसने विषण्णमुख पति को अस्त-व्यस्त वेश में पलंग के सिरहाने खड़े देखा। उसके नेत्र-कोण से अश्रु-जल बह चला। धीरे से आनन्दी ने अपना हाथ ऊपर उठाकर पति का हाथ पकड़ लिया। चन्द्रनाथ झुककर बैठ गए। उन्होंने कहा—यह तुमने क्या किया?

आनन्दी के होंठ फड़ककर रह गए। उसने अभिप्राय की दृष्टि से पति को देखा।

'क्या तुम्हें कुछ कष्ट था?'

'कष्ट? मैं नवीन जीवन में आई थी। परन्तु मैं अयोग्य पूरी चेष्टा करने पर भी आपको सुखी न कर सकी। जीवन भर जो प्यार, सुख-आदर मुझे नसीब नहीं हुआ था, वह आपने मुझे दिया। हाय! कहां मैं अभागिनी तुच्छ बालिका और कहां आप? ओह! आपकी महिमा, वह भी मैं समझ नहीं सकती। मैं पढ़ नहीं सकती, सीख नहीं सकती, मैं जितना ही आपको सुखी बनाने की चेष्टा करती, उतनी ही मूर्खता करती। मैं आपके जीवन में किरकिरी हूं—मुझे जाने दीजिए, मुझे चरणों की धूल दीजिए।'

चन्द्रनाथ को इस अवसर पर, इस प्रगल्भ भाषण के सुनने की आशा न थी। आनन्दी फिर बोली—मेरी जितनी योग्यता है, उतना ही मैं सीख सकती हूं, आप मुझे जितनी बड़ी बनाना चाहते हैं, उतनी मैं बन कैसे सकती हूं?

चन्द्रनाथ ने बात टालकर कहा—तुमने क्या खाया था?

'अफीम!'

'कहां से मिली?'

आनन्दी चुप रही।

चन्द्रनाथ कुछ देर स्तब्ध बैठे रहे। फिर उन्होंने तीक्ष्ण दृष्टि से पत्नी को देखकर कहा—प्रिये, मूर्ख तो मैं हूं; तेज आंच में रोटी सिकती नहीं, जलती है। ठहरो, तुम इतना समझ सकती हो, यह मैं नहीं जानता था। तुम्हें अल्पवयस्क समझकर इधर तुम्हारी बुद्धि पर मैं पूर्ण अविश्वास करता था, और उधर तुम्हारी बुद्धि से सहस्र गुणा भार उसपर लादता था। आज से मैं तुम्हारा गुरु नहीं, शिक्षक नहीं, शासक नहीं—पति हूं, मित्र हूं। आओ, मैं स्वार्थ का त्याग करूंगा।

आनन्दी के नेत्रों में एक और ही प्रभा थी। वह बालिका की नहीं, नारी की नहीं, पत्नित्व के गहन उत्तरदायित्व को व्यक्त कर रही थी। चन्द्रनाथ ने देखा, वे कुछ कह न सके।

आनन्दी फीकी पड़ने लगी। उसकी मुट्ठी शिथिल हुई और चन्द्रनाथ का हाथ उसके कर-पल्लव से पृथक् हो गया। चन्द्रनाथ रोए नहीं, एक अतर्क्य वेदना एवं मार्मिक आलोचना उनके मन में उठ रही थी। उन्होंने अतिशय प्रेम और आदर से आनन्दी का चुम्बन लेने का इरादा किया। पर आनन्दी वहां थी कहां? चन्द्रनाथ ने उस निर्जन प्रभात में, आनन्दी के अभाव में उसके शरीर को जी भर के एक बार प्यार किया और फिर उसके उन्मीलित नेत्रों को अनन्तकाल के लिए आच्छादित कर दिया।

पुरुषत्व

पुरुष कामना का दास न हो और वह स्त्री के सौन्दर्य को अछूता प्यार और आदर करे, तो स्त्री के लिए वही वास्तव में पुरुष है। अपने चारों ओर भ्रमरों के मंडराने पर स्त्री अपने सतीत्व का मूल्य भूल जाती है। फिर एक वेश्या-बाला भी सतीत्व की इच्छा तो रखती ही है। यह कहानी १९२६ में 'चांद' में प्रकाशित हुई थी। जिसे पढ़कर प्रशंसा-पत्रों का तांता लग गया था। पत्र ही नहीं, पाठकों ने लेखक के पास इनाम के तौर पर रुपयों के मनीआर्डर भी भेजे थे। 'चांद' की ख्याति इस कहानी से बहुत बढ़ गई थी। इसमें स्त्री-पुरुषों के शारीरिक सम्बन्धों का एक वैज्ञानिक वर्णन है जो अद्भुत और सत्य है।

राजेन्द्र अपनी करुण कहानी कह चुके, तब उसे सुनकर रामेश्वर ज़ोर से हंस पड़े। इस हास्य से अप्रतिभ होकर राजेन्द्र ने उधर से मुंह फेर लिया।

रामेश्वर बोले—राजेन्द्र बाबू ! हिकमत सीखकर ही हकीमी करना उचित है। जिस विद्या को तुम जानते ही नहीं, उसमें टांग क्यों अड़ाते हो और फिर बेवकूफ बनने पर बिगड़ते क्यों हो ?

राजेन्द्र ने कहा—क्या यह भी कोई विद्या है, जो सीखनी पड़ेगी ?

'अवश्य'

'और उसका कालेज कहां है ?'

'खुला हुआ विश्व ही उसका कालेज है, आत्मवेदना और सहृदयता तथा स्थैर्य उसकी पाठ्य पुस्तकें हैं। जीवन के सम्मुख हठात् आ जाने वाली छोटी-बड़ी घटनाएं उसके पाठ हैं, जिन्हें मनुष्य को संयमपूर्वक पढ़ना उचित है।'

'यह खूब रही। यह पाठ भी इस तरह पढ़ा जाएगा, इसका तो कभी ख्याल भी नहीं किया था। अब कालेज छोड़ने और विद्यार्थी-जीवन को भूल जाने पर इस विस्तृत विश्व को किस तरह पढ़ा जाए ? कोई जीता-जागता गुरु भी तो दृष्टि नहीं पड़ता।'

रामेश्वर ने गम्भीरता से कहा—ऐसी ही इच्छा है तो प्रारम्भिक पाठ तो मैं ही पढ़ा दूंगा।

'अच्छी बात है, आज ही से सही। पर कुछ फीस-वीस……'

'समस्त आशा और अभिलाषाओं का बलिदान। क्या तुममें इतना साहस है?'

'साहस ?'

रामेश्वर ने घूरकर मित्र को देखा—हां साहस! इस दुरूह विद्या की फीस इतनी ही अधिक है।

'अच्छी बात है। अब पाठ शुरू हो, मुझमें बहुत साहस है।'

'न भी होगा तो करना पड़ेगा। अच्छा सुनो—पहले यही बात विचारनी चाहिए कि स्त्रियां पुरुषों से क्या चाहती हैं।'

'क्या चाहती हैं ?' राजेन्द्र ने व्यग्र होकर पूछा। योग के गहन सूत्र की तरह रामेश्वर ने कहा :

'पुरुषत्व'

'मैं समझ गया।'

'मुझे भय है, तुम नहीं समझे। पुरुषत्व क्या वस्तु है, यह भी तुम्हें समझने की जरूरत है।'

'क्या मैं पुरुषत्व को भी समझने की योग्यता नहीं रखता ?'

'जो पुरुष पुरुषत्व को समझता है, वह कभी इन करुण कहानियों का दयनीय पात्र नहीं बनता।'

'तब वह पुरुषत्व क्या वस्तु है ?'

'पुरुषत्व वह वस्तु है, जिसका स्त्री के शरीर, स्वभाव, जीवन-निर्माण और उसके स्त्रीत्व में नितान्त अभाव है। और उसके बिना स्त्रीत्व उतना ही बेस्वाद है, जितना लवण के बिना रसोई।'

'किन्तु उसकी रूप-रेखा क्या है ?'

'केवल भावगम्य, और उसका प्रभाव अमोघ है। कोई स्त्री उसके सम्मुख सीधी खड़ी रह ही नहीं सकती।'

'किन्तु वह अत्यन्त निष्ठुर और बड़ी गर्वीली है।'

'यह सम्भव ही नहीं है।'

'वह निरी पत्थर या इस्पात की बनी हुई है।'

'स्त्रियां इन वस्तुओं की बनाई ही नहीं जातीं।'

'तुम निश्चय ही उसके सम्मुख जाकर लज्जित और विफल होओगे।'

'यह प्रकृति के सर्वथा विपरीत बात है।'

'तब मेरी-तुम्हारी बाज़ी रही, अगर तुम उसका गर्व भंजन कर सको, उसे वश में ला सको, तो मैं दस हज़ार रुपये हारा।'

'देखता हूं, तुममें साहस का उदय हो रहा है। अस्तु, यद्यपि किसी स्त्री को वश में लाने के लिए इतना आतुर होना 'पुरुषत्व' को न शोभा देने वाली बात है, पर पुरुषत्व का अर्थ अब तुम्हें सप्रयोग समझाना पड़ेगा। मुझे तुम्हारी चुनौती स्वीकार है। मैं आज ही रात को वहां चलूंगा, मगर तुम्हें मेरी आज्ञा के सर्वथा अधीन रहना पड़ेगा।'

'मुझे मंजूर है।'

दोनों मित्र विदा हुए।

उसका नाम था हीरा। रूप की हाट में उसके चढ़ते दिन थे। डेरेदार, ठिकाने की वेश्या थी। उसकी मां ने गाने-बजाने, अदब-कायदे की वेश्या-वृत्ति सम्बन्धी शिक्षा के सिवा उसे अंगरेज़ी और हिन्दी-उर्दू की भी कुछ शिक्षा दी थी। लाखों की सम्पदा उसकी मां कमाकर जवानी से उतरी थी। उसके बाद वह नायिका के पद पर तीन-चार यौवनों का सम्पूर्ण सौदा कर चुकी थी। शहर की हवेली बीच चौक में अपनी शान नहीं रखती थी। नगर के बाहर की कोठी नवाबी ठाठ से सजी थी। हीरा जिस रंग की पोशाक पहनकर उतरती थी, उसी रंग के जवाहरात से जड़े गहने पहनती और उसी रंग से रंगी मोटर में बैठती। नौकरों और ड्राइवरों की वर्दी भी उसी रंग की होती थी। सन्ध्या के समय हीरा के रूप और ठाठ पर नगर की आंखें सड़कों पर बिछी रहती थीं। साधारण ज़मीदार तक वहां पहुंचने की हिम्मत न करते थे, सर्वसाधारण की बात तो दूर है। वेश्या ज़रूर थी, अस्मत-फरोश ज़रूर थी, परंतु कितनी मंहगी! कितनी दुर्लभ! कितनी नफीस! कि शहर में प्रायः सभी की ज़बान पर चाहे जब हीरा उछलने लगती थी।

हीरा की उम्र का सत्रहवां साल जा रहा था। उसका रंग मोती के समान स्वच्छ और पानीदार था, गालों की सुर्खी, मानो छूते ही खून टपक पड़ेगा, होंठ और आंखें मानो परस्पर स्पर्द्धा करती थीं। अमृत और हलाहल विष का आंखों से अटूट

झरना झरता ही रहता था। जो एक बार देखता था, मर जाता और क्षण भर में ही जी जाता था। धवल दन्त-पंक्ति की बहार उन रसभरे उत्फुल्ल होंठों के अरुण वर्ण के बीच कैसी मोहक, कैसी प्यारी लगती थी? गर्दन और वक्षस्थल मानो इटली के किसी कारीगर की संगमरमर पर अमर करामात थी। बढ़िया ईरानी कालीन पर बैठकर बिजली के दहकते प्रकाश में, बिजली के पंखे के नीचे अपने महीन, सादे, उज्ज्वल परिधान में जब वह गाने बैठती थी, और उस हंस के समान शुभ्र कण्ठ से इन कव्वाली और गज़लों के स्थान पर जब विशुद्ध स्वर, ताल, लय, मूर्च्छना युक्त संगीत-लहरी का स्रोत बहता था, उस समय की बात क्या कही जाए? उस उमड़ते रस-समुद्र में पहले वह स्वयं डूबती, तब अर्द्ध-निमीलित नेत्र, कम्पित कण्ठ-स्वर, फड़कते होंठ और अलसता से अस्त-व्यस्त बिखरती हुई देह—किस मर्द को मर्द बना रहने दे सकती थी?

ऐसी ही वह अप्रतिम रूप-गुण-सम्पन्ना, राजमहलों में भी दुर्लभ स्त्री-रत्न, वह वेश्या-पुत्री थी, जिससे निराश होकर राजेन्द्र आत्मघात की अभिलाषा मन में संचित कर रहे थे और उनके मित्र जिसे विजय कर लेने का बीड़ा उठा चुके थे।

ये दोनों ही मित्र नगर के गण्यमान्य, धनी तथा अपार सम्पत्ति के स्वामी थे। दोनों की ही सज्जनता में कलाम न था, पर युवक राजेन्द्र बाज़ार के पत्ते चाटने के शौकीन थे। उनके मित्र रामेश्वर उनसे उम्र में कुछ बड़े थे, परन्तु विचारवान्, गम्भीर और चरित्रवान् व्यक्ति थे।

एक चरित्रवान् व्यक्ति, जो स्त्रियों के सम्मुख अपने को पुरुष समझता हो, उस पुरुष की समझ में आ ही नहीं सकता था, जो प्रतिक्षण स्त्रीमात्र के लिए दास बना रहने का अभिलाषी था। और यही दोनों के जीवन की ऐसी विभिन्न दिशाएं थीं, जहां बहुधा दोनों मित्र टकराया करते थे।

इस बार रामेश्वर ने वेश्या के घर जाना स्वीकार करके राजेन्द्र को आश्चर्य-चकित कर दिया। वह यह कौतूहल भी देखना चाहता था कि समस्त नगर की स्पर्द्धा और अभिलाषा की वस्तु हीरा को यह व्यक्ति और ऐसी कौन वस्तु देकर वश करेगा, जो मैं न दे सका था; और···और वह 'पुरुषत्व' की कैसी विचित्र व्याख्या करेगा। इसी विचार से एक प्रकार प्रसन्न चित्त राजेन्द्र घर लौटा।

उसी ज्वलन्त प्रकाश में हीरा साज़िन्दों सहित बैठी थी। सामने केवल दोनों

मित्र थे। राजेन्द्र के अनुरोध से कोठे के द्वार बन्द करा दिए गए थे।

हीरा को देखकर रामेश्वर के चित्त में एक अपूर्व भाव उत्पन्न हुआ। हाय ! सर्प को यह सौन्दर्य ! उन्होंने क्षणभर में उस रूप को हृदयंगत कर एक बार कमरे पर दृष्टि डाली, और एक मसनद के सहारे उढ़क बैठे।

संगीत-लहरी उठी और गिरी, जीवन आया और गया। राजेन्द्र लोटन कबूतर हो रहा था, मिनट-मिनट पर नोट फेंक रहा था। पर रामेश्वर अचल-निर्विकल्प प्रतिमा की तरह हीरा के मुख पर दृष्टि दिए संगीत-सुधा पी रहे थे। उनके नेत्रों में कौतूहल नहीं, उन्माद नहीं, औत्सुक्य नहीं, विनोद नहीं, उदासीनता नहीं, मोह नहीं। साथ ही होंठ में हास्य नहीं, स्पन्दन नहीं।

बालिका वेश्या-पुत्री ने यह देखा-समझा, धीरे-धीरे वह इस वज्र-पुरुष की ओर आकर्षित हुई। वह उसके होंठों में एक मुस्कान देखने की अभिलाषा लेकर और भी यत्न, और भी कौशल, और भी मनोयोग से अपनी कलाओं का विस्तार करने लगी। उसके ललाट पर पसीना हो गया। वह थककर हांफने लगी। उसने लज्जित होकर गाना बन्द कर दिया। जीवन में उसे पहली बार ही ऐसा नवीन पुरुष दिखा, जो उसे देखकर मरा नहीं और सुनकर जिया नहीं !

वह अपने वस्त्र संभाल चांदी की तश्तरी में पान लेकर उठी, प्रथम रामेश्वर के सामने अदब से झुककर तश्तरी की। रामेश्वर ने पान उठाया और सौ रुपये का नोट तश्तरी में फेंक दिया।

क्षणभर को हीरा अवाक् हुई। उसने एक ही क्षण में रामेश्वर को, नायिका को और तश्तरी को देखा, एक बार वह झुकी और आगे बढ़ी।

रामेश्वर उठ खड़े हुए। राजेन्द्र भी उठे। उस दिन फिर हीरा और नहीं गा सकी।

दो सप्ताह बीत गए। हीरा को नित्य ही गाना पड़ता था, परन्तु उसका उल्लास और मग्न होना कहीं चला गया था। उसका मन उदास और चंचल रहता था। बहुधा वह गाते-गाते बहुत ही निरुत्साह हो जाती थी—कभी-कभी वह गाना बन्द-कर एकदम ऊपर जाकर पड़ रहती थी। इस नई परिस्थिति का कारण वह स्वयं नहीं जानती थी; मानो कोई एक नई ठोकर उसके हृदय को लगी थी। किसी अतर्क्य शक्ति से रामेश्वर की मूर्ति दिन भर में लाखों बार उसके सम्मुख खड़ी हो जाती

थी। हीरा को उस मूर्ति पर कितना क्रोध, कितनी विरक्ति और कितनी अवहेलना थी। परन्तु वह मूर्ति मानो उसके नेत्रों में तप्त शलाका की तरह घुस गई थी। वह कभी-कभी बहुत ही झुंझला उठती थी। वह सोचती थी, कैसा वह आदमी था मानो गूंगा और बहरा, बिल्कुल अन्धा, मूर्ख, गंवार! किन्तु? किन्तु वह नोट? नोट न था, रद्दी कागज़ का टुकड़ा था। तब क्या वह कुछ और ही था? क्या वह इस रूप को सचमुच ठुकरा गया? मेरे पसीने पर भी उसकी मूंछ का एक बाल न खिला? वह एक बार भी न हंसा, न हिला, न बोला; वह मनुष्य न था, पत्थर था। निर्मम······हीरा सोचने लगी, क्या अब वह न आएगा? मैं उसे भाई ही नहीं, यही तो बात है! न मेरा रूप, न संगीत, न और कुछ ही उसे पसन्द लगा; पर फिर वह नोट क्यों फेंक गया? और मैंने ही क्यों ले लिया? जिसे मैं पसन्द ही नहीं, जो मुझपर, मेरी कला पर रीझा ही नहीं, उसका रुपया मैंने क्यों लिया? हाय! वह मुझे हरा गया, मेरा अपमान कर गया। हीरा गुस्से से होंठ चबाकर उठी, पूरे कद्दे-आदम—शीशे के सामने उसने एक बार अपने अनिद्य यौवन की परछाईं को देखा, और फिर वह रोती हुई कुर्सी पर बैठ गई। उसने निश्चय कर लिया कि बदला लूंगी।

राजेन्द्र आते ही हीरा के अत्यन्त निकट बढ़ आए। उन्होंने उसे उदास देखकर कहा—यह क्या? क्या आज बादल बरसने वाले हैं?

हीरा ने सिर उठाकर राजेन्द्र को देखा, संभलकर बैठी और बोली—आप क्या खेती बोकर आए हैं, जो बरसने की इतनी इन्तजारी में हैं?

राजेन्द्र ठण्डे पड़ गए। उन्होंने कहा—आज तो बहुत ही नाराज़ मालूम होती हो, क्या मेरी कुछ खता हुई।

'यह खूब, बरसते-बरसते आपको नाराजी की भी आंच लग गई।'

कुछ भी न समझकर राजेन्द्र ज़ोर से हंस पड़े। हाय! कितना पुरुषत्वहीन हास्य था वह! वे और नज़दीक खिसककर हीरा से सटकर बैठने लगे। हीरा ने दूर हटते हुए कहा:

'हां, आपके उन दोस्त का क्या हाल है, फिर कभी तशरीफ नहीं लाए? शायद गाना पसन्द नहीं आया। आजकल के लोग गुणों की कद्र कम करते हैं, समझते भी कम हैं।' पिछली पंक्ति कहते-कहते हीरा की आंखों में सौ रुपये का नोट आ

खड़ा हुआ, वह स्वयं ही अपनी बात पर शंकित हो गई।

राजेन्द्र का उधर ध्यान न था, वे बोले—उस दिन के बाद उन्होंने कुछ चर्चा ही नहीं चलाई, मगर गाना वे नहीं समझते यह न कहना; वे स्वयं बहुत अच्छे गवैये हैं, सितार और दिलरुबा बजाने में शहर भर में उनकी जोड़ का कोई नहीं। आज मैं उन्हें लाऊंगा।

हीरा विकल हो उठी। आह! उस दिन के बाद फिर चर्चा ही नहीं, मुझे धिक्कार है; यह रूप, यह यौवन, सब धिक्कार-धिक्कार! हीरा इन तूफानी विचारों को ज़ब्त न कर सकी। वह उठ खड़ी हुई और सोचने लगी, तब उस आदमी को प्रति क्षण स्मरण करके मैंने अपना ही अपमान किया। उसने घृणा-मिश्रित स्वर में कहा—जिसकी मर्ज़ी हो वह आए या न आए, हमलोग किसीको बुलाने तो नहीं जाते?—राजेन्द्र फिर रात को उन्हें लाने का वादा करके चल दिए।

हीरा ने पक्का इरादा कर लिया कि आज वह उस मगरूर पुरुष का अवश्य अपमान करेगी। परन्तु ज्यों-ज्यों दिन ढलता गया, हीरा को अपने शृंगार की चिंता बढ़ती गई। वह व्याकुल हो गई। वह कौन-सी पोशाक पहने, यह कुछ निर्णय ही न कर सकी। उसने कई पोशाकें पहनीं और उतारीं, कई ढंग से बालों का जूड़ा बांधा और खोला, कहीं इत्र लगाए और मुंह धोया; पर किस रूप में, किस रंग में, किस साज में आज वह अपने यौवन को प्रकाशित करे—वह निर्णय न कर सकी। उसने हठात् मां से पोशाक का प्रस्ताव किया।

बुढ़िया अवाक् रह गई—पोशाक का क्या मतलब? आज क्या कहीं जाना है?

हीरा झेंप गई। वह अपनी कोठरी में भाग गई।

सन्ध्या हुई। अन्धकार के हृदय को विदीर्ण करके हीरा ने बिजली का प्रकाश कमरे में फैलाया और ताज़े फूलों का एक बड़ा-सा गजरा गले में डाल, वह उस छकड़ा भर रूप और यौवन को लेकर उस प्रकाश के हृदय में सचमुच हीरे ही के समान विराजमान हुई।

दोनों मित्रों ने घर में प्रवेश किया। मन्त्र-मुग्धा सर्पिणी की तरह हीरा खड़ी हो गई। मित्र बैठ गए। हीरा खड़ी रही, रामेश्वर ने क्षणभर उसके मुख की ओर देखकर कहा—बैठिए!

हीरा बैठ गई। गर्व और उल्लास उसके यौवन को अरक्षित छोड़ भागा;

वह विनय और संकोच से संकुचित यौवन को अपनी वेश्या-शक्ति के बल पर यथा-सम्भव चैतन्य करके गाने के आयोजन में लगी।

रामेश्वर ने बाधा देकर कहा—कष्ट न कीजिए, मुझे आपकी माता जी से कुछ बातें एकान्त में करनी हैं। क्षमा कीजिएगा।

हीरा अन्यमनस्का हो, उठकर बाहर चली गई। हाय रे आज का शृंगार!

नायिका ने सुना, चौंकी और गम्भीर हुई। कुछ ही मिनट में वह एकान्त वार्ता समाप्त हुई। हीरा दो हज़ार रुपये मासिक पर रामेश्वर की नौकर हुई।

बिना उससे पूछे ही उसका सौदा हो गया, यह सुनकर हीरा बहुत ही क्रुद्ध हुई। उसने धरती में पैर पटकर कहा—वह पुरुष! वह नीरस, गंवार, गूंगा, बहरा पुरुष! उसकी यह हिम्मत! मैं इससे बदला लूंगी, मैं इसका हर तरह अपमान करूंगी। वह उसी क्रोध में भरी नायिका के पास गई। नायिका ने वेश्या-धर्म की कठोर मर्यादा का विस्तृत वर्णन करके उसे शान्त किया। हीरा को उसी दिन मालिक की सेवा में चली जाना पड़ा।

हीरा के लिए एक नये बंगले की आयोजना की गई। उसमें चार दासी, दो दास और एक प्रबन्धक रख दिया गया। पोशाक और खाने-पीने की वस्तुओं की गिनती न थी। कमरों में बहुमूल्य वस्तुओं की सजावट का पार न था। शृंगार और ऐश्वर्य के नाते अटूट सम्पदा जो कुछ खरीद सकती है, वह सब वहां प्रस्तुत था। हीरा की रुचि और अभ्यास के अनुकूल आभूषण, मोटर और अन्य सामान प्रथम ही से उपस्थित कर दिए गए थे। उस राजमहल सदृश बंगले में आकर हीरा चकित, भीत, विमूढ़ बनी खड़ी रही। यह सब कुछ हो सकता है, इसकी उसे कल्पना भी न थी, परन्तु इस समस्त वैभव के पीछे जो मूर्ति छिपी हुई है, वह—वह—निर्मम, रसहीन मूर्ति? अरे!········हीरा सोचने लगी, क्या वह मूर्ख, बेतमीज़ और नीरस है? ना-ना, यह तो सम्भव ही नहीं; यह सब कुछ तो कुछ और ही मालूम होता है। परन्तु चाहे जो कुछ भी हो, मैं उसका अपमान करूंगी। मैं कभी उसके अधीन न होऊंगी।

सन्ध्या हुई। बिजली के आलोक से बंगला इन्द्र-भवन हो गया। मानो अनगिनत आलोकित नक्षत्र के नीचे हीरा छिप रही थी। उसने सहसा मोटर आने का शब्द सुना। उसने बलपूर्वक अपनी प्रतिज्ञा को दुहराया—न बोलूंगी, न बोलूंगी, न

बोलूंगी।

स्वयं मान करना और औरों का मान भंजन करना हीरा का व्यवसाय था। वह पुरुष, जो नारी-हृदय का नहीं, नारी-शरीर का भूखा है, हीरा के द्वार पर खड़ा होता और धरती तक झुकता है! यह दृश्य हीरा के नेत्रों को स्वाभाविक था। पुरुष की वह तस्वीर हीरा की चिरपरिचिता थी, जो हीरा के लिए प्यासी छटपटा रही थी। किन्तु उसी पुरुष-छाया के नीचे पौरुष का कुछ और भी रूप रहता है, यह हीरा को मालूम न था।

अपने अभ्यास के अनुसार उससे भी अधिक, बहुत अधिक तनकर हीरा उस शत्रु-पुरुष को, जिसने उसके स्त्री-शरीर की ज़रा भी परवाह न की थी, परास्त करने अपनी सम्पूर्ण शक्ति लेकर तैयार हो गई। आधा घण्टा व्यतीत हो गया। हठात् मोटर के जाने का शब्द सुनकर वह चौंकी। उसने खिड़की से देखा, वही वज्र-पुरुष तीर की तरह उड़ा जा रहा है। हीरा क्रुद्ध सर्पिणी की तरह फुफकार मार-कर, पैर पटक-पटककर ज़ोर से कमरे में घूमने लगी। समस्त दर्प, शृंगार किया हुआ रह गया, शत्रु सामने ही न आया। परन्तु हीरा पराजित योद्धा की तरह विचलित हो गई। उसने दासी को बुलाकर पूछा:

'क्या बाबू साहब आए थे?'

'जी हां!'

'किसलिए?'

'सरकार को कुछ चाहिए तो नहीं, यह देखने।'

'कुछ कहते थे?'

'कहते थे कि मालकिन को कोई कष्ट न हो और उनका हुक्म फौरन तामील किया जाए।'

हीरा ने गुस्से से होंठ चबाकर कहा—हुक्म फौरन तामील किया जाए?

'जी हुज़ूर'

'मेरा हुक्म है, यह शख्स बंगले में न घुसने पाए।'

दासी मुंह ताकने लगी। हीरा ने डपटकर बाहर जाने का हुक्म दिया। दासी के जाते ही हीरा पलंग पर गिरकर फूट-फूटकर रोने लगी। उस दिन रातभर हीरा सो न सकी।

कई दिन बीत गए। रामेश्वर हीरा के आज्ञानुसार बंगले में नहीं आते। वे प्रतिदिन नियमित समय पर मोटर में आते और बंगले के कम्पाउण्ड के बाहर मोटर ही में बैठे-बैठे हीरा की कुशल ले जाते थे।

उस क्षण की बाट हीरा प्रातःकाल से सन्ध्या तक देखा करती। मोटर की शब्द-ध्वनि मानो जगत् में एक ध्येय वस्तु थी। उनके आने से घण्टों प्रथम वह खिड़की में, पर्दे की ओट में, खड़ी हो जाती। प्रथम वह छिपकर खड़ी होती, धीरे-धीरे प्रकट होने लगी। अब वह बिल्कुल खुली खिड़की में सामने खड़ी होती थी। प्रतिदिन नया शृंगार, नई पोशाक, नया केश-विन्यास होता था। पर हाय रे पुरुष-पाषाण! एक क्षण को भी वह ऊपर दृष्टि करके उस जीवित आलोक को देखता न था। किस निर्जन वन में हीरा ने रूप और यौवन की हाट लगाई!!

धीरे-धीरे हीरा को वहां रहना असह्य हो गया। यह भी कोई बात है! वे आते हैं, खबर ले जाते हैं, रानियों के ठाठ और सुख दे रखे हैं। सब कुछ दे ही जाते हैं, मांगते कुछ नहीं। हाय! मैं इनका कब अपमान करूं? कैसे करूं? क्या इन्हें मुझसे कुछ भी नहीं लेना है? मेरे पास क्या इस वज्र पुरुष को देने योग्य कुछ नहीं है? यह रूप, यह यौवन, यह शरीर, यह शृंगार—उफ! नगर में इसके कितने दाम हैं। मगर दाम? दाम; दाम की बात याद करके वह सोचने लगी। वह सोचने लगी, दाम तो इन्होंने भी दिए हैं; इतना खर्च, इतना धन-व्यय, इतना यत्न! तब फिर यह किसलिए? इस सौन्दर्य को सुखाने या सड़ाने के लिए? हीरा विचार-सागर में डूबने-उतराने लगी। पर थाह न मिली।

दस दिन और व्यतीत हो गए। हीरा के अस्वस्थ होने का समाचार पाकर रामेश्वर नगर के दो प्रमुख डाक्टरों को लेकर दौड़े। रामेश्वर बंगले के बाहर ही मोटर पर बैठे रहे। हीरा पलंग पर पड़ी थी। डाक्टरों ने आते ही यन्त्र संभाले।

हीरा ने उत्तेजित होकर कहा—आप लोगों के कष्ट की ज़रूरत नहीं है, कृपाकर आप जाइए!

डाक्टरों ने उसे समझाना चाहा। उसने झल्लाकर कहा—वे···वे कहां हैं? हाय! वे कहां हैं?

रामेश्वर ने धीरे-धीरे कमरे में प्रवेश किया। हीरा ने उधर से मुंह फेर लिया।

रामेश्वर ने कहा—ज़रा आप इन्हें देख लेने दें।

'आप इन्हें विदा करें।'

'किन्तु·········'

'विदा कर दें।'

रामेश्वर ने डाक्टरों को विदा कर दिया।

रामेश्वर ने पूछा—शायद आपकी तबीयत अब अच्छी है, ज़रा आराम करने से ठीक हो जाएगी।

हीरा बोली—नहीं ! वह आंख भी न मिला सकी। उसके ज़रा होंठ फड़क-कर रह गए।

रामेश्वर चलने को उद्यत हुए।

हीरा ने उद्विग्न होकर कहा—ठहरिए !

रामेश्वर बैठ गए। वह उठ बैठी, फिर खड़ी हो गई। रामेश्वर एकटक उसके मुख को ताकते रहे। हीरा आगे बढ़ी। रामेश्वर उठकर पीछे हटने लगे। हीरा मानो होश में न थी। वह सोच रही थी—क्या पुरुष स्त्री को सम्पदा और ऐश्वर्य देकर पुरुषत्व से उऋण हो सकता है ? स्त्री को पुरुष से जो कुछ चाहिए, उसके लिए भी क्या कोई पुरुष नारी को इतना तरसा सकता है ? हीरा का कण्ठ अवरुद्ध था। वह टूटते शब्दों में, अश्रु-धारा में डूबती हुई बोली—आप···आप क्या थोड़ा विष मुझे नहीं दे सकते ?—रामेश्वर ने करुणा, स्नेह और उदारता से कहा—आप यह क्या कह रही हैं ? आपके प्राणों के लिए मेरे प्राण, और आपके जीवन के लिए मेरा जीवन अभी हाज़िर है।'

'वही तो, वही तो, वही तो मुझे दो। ये समस्त ठाठ, कोठी, बंगले, अटारी, महल···सबमें आग लगा दो। इस अधम शरीर के लिए आपने इतना किया; पर ये प्राण सूखे जाते हैं; जीवन मरा जाता है; वही मुझे दो : अपने प्राण और अ पना जीवन। मैं उसीकी प्यासी हूं; इतना क्यों तरसाते हो ?'

निर्दयी, निष्ठुर—हीरा ने आवेश में ये शब्द कहे। वह रामेश्वर पर झुक पड़ी, ज़ोर से उसकी कमीज़ फाड़ डाली ! फिर अचेत होकर धरती पर गिर गई।

रामेश्वर धैर्य-च्युत न हुए। उन्होंने धीरे से हीरा को उठाकर कौच पर लिटा दिया। होश में आने पर हीरा झपटकर रामेश्वर से लिपटने को दौड़ी। रामेश्वर ने ज़रा हटकर मधुर स्वर में कहा—कृपाकर सावधान होइए। आपको क्या कष्ट है ?

हीरा खसककर रामेश्वर के पैरों में आ पड़ी। वह रो रही थी। अनन्त रुदन

उमड़ रहा था, बांध टूट गया था । अब हीरा नहीं रो रही थी, नारी-हृदय रो रहा था।

रामेश्वर ने कहा—आप क्या चाहती हैं ? कहिए तो, मैं शक्तिभर आपकी सेवा करूंगा।

'मैं क्या चाहती हूं, यह आप पूछते हैं ? स्त्रियां पुरुषों से क्या चाहती हैं, यह आप पुरुष होकर नहीं जानते ? आप ऐसे निष्ठुर पुरुष·········' हीरा बीच ही में रह गई। आवेश से उसके होंठ कांप रहे थे।

रामेश्वर ने संयत भाषा में कहा—मैं अच्छी तरह जानता हूं कि स्त्रियां पुरुषों से क्या चाहती हैं। परन्तु आप स्त्री नहीं, वेश्या हैं; यह दुखद सत्य मुझे कहना ही पड़ा। वेश्या को जो मूल्य देना होता है, मैं शक्तिभर दे रहा हूं।

हीरा कुछ भी न समझी। वह बोली—क्या वेश्याएं स्त्री नहीं होतीं ?

'नहीं'

'कैसे ?' हीरा ने गर्दन उठाकर पूछा।

रामेश्वर कहने लगे—स्त्री जगत् की एक पवित्र स्वर्गीय ज्योति है। वह पुरुष-शक्ति के लिए जीवन-सुधा है। स्त्री के बल पर पुरुष असंख्य उत्तरदायित्व का भीषण से भीषण भार सहन करके भी जीवित रह सकता है। वह स्त्री दया, प्रेम, पवित्रता, दान, करुणा और कोमलता की मूर्ति होनी चाहिए। त्याग उनका स्वभाव, प्रदान उनका धर्म, सहनशीलता उनका व्रत और प्रेम उनका जीवन है। परन्तु वेश्या जगत् की एक विकृत वस्तु है। देखने में मोहक और कोमल, किंतु वास्तव में हलाहल विष; अपहरण उनका व्यवसाय, छल उनका स्वभाव, पाप उनका जीवन और पतन उनका मार्ग है। स्त्री जिस वस्तु को शरीर के टुकड़े-टुकड़े होने पर भी किसीको अर्पण नहीं कर सकती, वेश्या उसे खुले बाजार टके सेर बेचती है। जानती हो, वह क्या वस्तु है ?

'क्या वस्तु है ?'

'अस्मत, हाय ! वह अस्मत, जिसका वास्तविक मूल्य इस पृथ्वी पर है ही नहीं, और विधाता ने स्त्री समझकर वह दी थी। उसे आप—वेश्याएं—कौड़ी, कलंकी, पतित; चाहे जिसे भी बेच देती हैं। तांबे के टुकड़ों में इतनी शक्ति हम स्वार्थी पुरुष भी कभी नहीं अनुभव कर पाते।'

इतना कहकर रामेश्वर क्षणभर चुप रहे। हीरा चुपचाप, निश्चल पैरों में

सिर नीचा किए पड़ी थी। रामेश्वर ने अतिशय करुण स्वर में हीरा के सिर पर प्यार से हाथ रखकर किंचित् आकाश की ओर मुख उठाकर कहा—अभागिनी नारी! इस शरीर का समर्पण तुम कमीने धन के बदले में चाहे भी जिस व्यक्ति को कैसे कर सकती हो? हाय! जैसे विष-पुष्प के सूंघते ही मृत्यु आती है, वैसे ही विष-पुष्प तुम हो? पुरुष जो महान् पौरुष के बल पर मनुष्य-समाज के प्रारब्ध का निर्माता है, कैसे निकृष्ट होकर वेश्या का दास बन जाता है! तुम वेश्या......

हीरा ने नेत्रों से स्वच्छ मोती के समान दो आंसू टपकाकर ऊंचा सिर उठाकर कहा:

'आप मुझे वेश्या न कहें।'

रामेश्वर अटककर बोले—तब क्या कहें?

'मैं स्त्री हूं।'

रामेश्वर की आंखों में आंसू भर आए और टपक गए। वे चुपचाप कुछ देर तक हीरा के सिर पर हाथ धरे बैठे रहे। फिर बोले—मैंने तुम्हें देखते ही समझ लिया था कि तुम स्त्री-रत्न हो, पर तुम्हारी चाहना उस वस्तु की न थी, जो किसी स्त्री की होनी चाहिए। वेश्या होना स्त्रीत्व से पतित होना है। वेश्या बनकर कोई स्त्री तो रह ही नहीं सकती। मैंने यह सोचकर कि वेश्या-वृत्ति कभी तो मरेगी और नारीत्व उदय होगा, इस देव-तुल्य शरीर को वेश्या के लिए जो मूल्य देना था, देकर ले आया। मैंने निश्चय किया था, वेश्या-पुत्री हो तो क्या, वेश्या कभी न बनने दूंगा। पर क्या सचमुच तुम स्त्री बनना चाहती हो?

'अवश्य, परन्तु......'

'परन्तु क्या?' हीरा ने बड़ी-बड़ी आंखें उठाकर देखा, फिर नीचे देखने लगी।

रामेश्वर बोले—बोलो, बोलो!—हीरा ने अपरिमित अनुनय नेत्रों में भर-कर कहा—मालिक मेरे! क्या स्त्री बनकर मुझे पुरुष प्राप्त होगा?

रामेश्वर घबराए। हीरा ने रामेश्वर का पल्ला पकड़ लिया। उसने कहा—मैं पुरुष के लिए ही स्त्री बनती हूं।

रामेश्वर तन न सके। उन्होंने कहा—प्रिये! स्त्री ही के लिए पुरुष है।

कन्यादान

कन्यादान कहानी में आर्यसमाज के कमजोर सुधार-पक्ष पर एक व्यंग्य है। सुधार में जहां रूढ़ि का प्रभाव है, उसीपर एक करारी चोट है। आर्यसमाज हिन्दू-समाज का एक सुधरा हुआ रूप है। कुरीति-पोषण सम्बन्धी बहुत कम आरोप आर्यसमाज पर किए जाते हैं। पर यह एक अति महत्त्वपूर्ण आक्षेप आर्यसमाज पर है। यद्यपि यह कहानी अब से तीस वर्ष पुरानी है, और अब तो हिन्दू समाज का भी रुख बदला हुआ है, फिर भी कहानी का व्यंग्य महत्त्वपूर्ण है। सोद्देश्य कहानी में लेखक कैसा तीखा व्यंग्य करता है यह कहानी इसीका एक सजीव उदाहरण है।

आगरा मेडिकल होस्टल के बरांडे में दो व्यक्ति खड़े थे। इनमें एक स्त्री, दूसरा पुरुष था। स्त्री की अवस्था सोलह वर्ष और पुरुष की इक्कीस के लगभग थी। स्त्री वास्तव में बालिका थी। उसका रंग चम्पे की भांति सुहावना था, और तनिक-सी ही बात से उसके गाल लाल हो जाते और उसकी सरस आंखें धरती में झुक जाती थीं। यह उसकी लजीली प्रकृति के कारण था। वह धानी रंग की साड़ी और ऊंची एड़ी के बूट पहने, सिर नीचा किए खड़ी थी। युवक उत्सुकता से उससे किसी सुखद और अनुकूल उत्तर की प्रतीक्षा से खड़ा था। दोनों ही व्यक्ति मेडिकल स्कूल के छात्र थे। बालिका ने सिर उठाकर कहा :

'आप इस तरह बार-बार न आया करें, सब लोग हंसते हैं।'

'सब लोग हंसते हैं, इसमें तुम्हारा क्या दुखता है ?'

'मैं चाहती हूं, आप यहां न आया करें।'

'और मैं यह चाहता हूं कि सदा यहीं घूमा करूं ?'

'आपको बदनामी का भय नहीं ?'

'रत्ती भर भी नहीं।'

'आपको सब्र भी नहीं ?'

'नहीं, बिल्कुल नहीं।'

'मैं आपके हाथ जोड़ती हूं, आप इधर न आया करें। न हो, लिखकर खत डाक में डाल दिया करें।'

'मगर दोनों ही इल्लतों से तुम्हारा पिण्ड छूट जाए, तो कैसा ?'

'वह किस तरह ?'

'उस बात का जवाब दे दो।'

बालिका लजाकर हंस पड़ी। वह फिर धरती की तरफ देखने लगी। युवक ने कहा—बस यही तो बात है। देखो, आज मैं कब तक यहां खड़ा रहता हूं।

'अब मुझे क्लास में जाना है, जाने दीजिए।'

'बिना जवाब दिए तो जाने न पाओगी, आज मैं हाथापाई भी कर डालूंगा।'

'ईश्वर के लिए बेवकूफी न करो।'

'बेवकूफी का कोई समझदार बुरा नहीं मानता, तुम भी न मानोगी।'

'अब मुझे जाने दो।'

'जवाब दे जाओ।'

'किस बात का ?'

'उसी बात का।'

'मैं क्या जवाब दे सकती हूं, पिता जी को लिखिए।'

'मैं तुम्हारा जवाब चाहता हूं। पिता जी से मैं निबट लूंगा।'

'मैं कुछ नहीं कहती, अब मुझे जाने दीजिए।'

'मैं भी कुछ नहीं सुनता, हरगिज़ न जाने पाओगी।'

बालिका ने रिस भरे नयनों से एक बार युवक को देखा, और हंस दी।

युवक ने कहा—लो, अब मैं तुम्हें छूता हूं।

'ना-ना, ईश्वर के लिए।'

'तब बताओ।'

'अच्छा पूछो।'

'बस बता दो।'

'कुछ पूछो भी !'

'क्या तुम मेरी होगी ?'

युवती चुप हो गई। उसके गाल लाल हो आए, वह कांपने लगी। उसने बोलना

चाहा, पर होंठ कांपकर रह गए।

युवक ने कहा—बोलो-बोलो।

'क्या ?'

'सुना नहीं।'

'नहीं।'

'फिर सुनो, क्या तुम मेरी होगी ?'

'हां।'

युवती भाग गई। युवक खड़ा निर्निमेष दृष्टि से देखता रहा।

कन्या का नाम था इंदु और युवक का देशराज। कन्या लाहौर के आर्यसमाज के मंत्री की पुत्री थी, और युवक डेरा गाजीखां के आर्यसमाज के प्रधान का पुत्र। दोनों ही को घुट्टी में आर्यसमाज की भावना पिलाई गई थी। दोनों के पिताओं में वाग्दान हो चुका था। घटना-क्रम से दोनों ही आगरा मेडिकल कालेज में भरती हुए, और घटनावश कन्या के पिता दक्षिण अफ्रीका व्यापार संबंधी कार्यों से चले गए। घटनावश युवक की भी पैतृक संपत्ति अचानक सिंधु में बाढ़ आ जाने से डूब गई। यह घटनाओं का घटाटोप भी क्या बला की वस्तु है।

अस्तु। हम नहीं कह सकते कि भीतर ही भीतर मनुष्यों और गृहस्थों की भावना में क्या-क्या परिवर्तन होते रहते हैं, फिर भी यह तो अवश्य कहा जाएगा, वह सिर्फ भीतर छिपी नहीं रहती, बाहर फूट पड़ती है।

दोनों ही युवक-युवती परस्पर प्रेम करते थे, यह तो आप समझ गए होंगे। अब यदि उपर्युक्त गुप्त संभाषण सुनकर आप कहें कि कन्या शायद प्रेम नहीं करती, तो आप कहिए, हम आप जैसे अनाड़ियों को समझाएं कैसे ? पर इस बात का हम विश्वास दिलाते हैं कि बातचीत में कन्या जितनी जबान-चोर थी, उतनी कलमचोर नहीं। वह किताब की किताब चिट्ठियां युवक को लिखती और युवक पोथों में उनका उत्तर देता। ईश्वर जाने दोनों कालेज में कुछ पढ़ते-लिखते भी थे, या महज पत्रों ही में दिल और दिमाग को हल करते थे। इस प्रकार दो वर्ष व्यतीत हो गए। कन्या के पिता ने विवाह का कुछ भी निर्णय नहीं किया। युवक विकल हो गया। उसने अनेक चिट्ठियां लिखीं। अन्तिम चिट्ठी से झुंझलाकर कन्या के पिता ने युवक को लिख दिया—तुम अपने विवाह के संबंध में मुंह फाड़कर हमें

चिट्ठी लिखते हो, इससे तुम्हें शर्म नहीं आती, जब कि तुम्हारे पिता जी इस काम के लिए उपस्थित हैं ?

क्यों जी, भला शर्म किस बात की आनी चाहिए ? अंग्रेजी पढ़ा-लिखा जवान भी अपने जीवनभर के मुख्य विषय पर न सोचे ? पर कहूं किससे ? वह ठहरे आर्य-समाज के मंत्री। उन्होंने साफ लिख दिया, इस विषय में हमें पत्र न देना।

उधर कन्या को लिख दिया, तुम परीक्षा देकर छुट्टी होते ही फौरन जालंधर कन्या-महाविद्यालय में चली जाओ। वहां के लाला देवराज को मैंने लिख दिया है। वह पुत्री की भांति तुम्हें घर में रखेंगे।

कन्या चली गई। युवक देखता रह गया। वह सोचता था, यह कैसा सुधार ? कैसी शिक्षा ? कैसा नया जीवन ? हृदय में ज्ञान, तेज और स्वाधीनता का दीपक तो जला दिया, मगर इससे काम नहीं लिया जा सकता। खासकर ऐसे प्रश्न का तो विचार ही नहीं किया जा सकता। विवाह करेंगे माता-पिता। अच्छी बात है, ये आपापंथी बूढ़े अपना आपस में ब्याह करें, मैं कदापि अपनी इच्छा के विरुद्ध न करूंगा।

आर्यसमाज, आगरा भी कोई साधारण आर्यसमाज नहीं, और इसीलिए वहां के आर्यसमाज के प्रधान भी ऐरे-गैरे नहीं। उनका नाम बताने में तो कुछ सार है नहीं, इतना कह देते हैं कि ठेकेदार थे। पंजाब से भूखों मरते आए थे। यहां ईश्वर ने दोनों हाथों से उन्हें ढांप लिया। घोड़ागाड़ी, मकान, जायदाद सभी हो चुके। नहीं हुए, तो पुत्र। अलबत्ता, कन्याएं हुईं तीन। एक-दो-तीन।

अच्छा पाठक महोदय, आप आर्यसमाज के प्रधानों को क्या समझते हैं ? जरा बताइए तो। उचित है कि आप उन्हें इज़्ज़तदार और प्रतिष्ठित पुरुष समझें, यह भी उचित है कि आप उन्हें देखते ही 'नमस्ते प्रधान जी' एकबारगी ही कह उठें, और उनके तनिक से सिर हिला देने पर ही सन्तुष्ट हो जाएं। देखिए, वह हैं प्रधान, ठेके-दार, धनी। ऐसे आदमी न जाने कब काम आ जाएं।

अस्तु। अब काम की बातें सुनिए। प्रधान जी को भी समय पर कन्या के विवाह की हाजत हुई। आपने सभी प्रमुख आर्यसमाजी अखबारों में उसके विवाह का विज्ञापन छपवा दिया। विज्ञापन में कन्या की आयु लिखी, रूप लिखा, गुण लिखे, वह स्वयंवरा होगी, यह भी लिखा, और उसके पिता आर्यसमाज के प्रधान हैं, यह

भी लिखा । विवाह जाति-पांति को तोड़कर होगा, यह भी लिख दिया, सब छपा दिया । एक ही चीज छपने से रह गई । वह था कन्या का चित्र । पर यह पंक्ति नीचे बढ़ा दी गई कि योग्य वरों के पास कन्या का चित्र भेज दिया जाएगा, और अन्तिम निर्णय तो वर-कन्या स्वयं मिलकर ही करेंगे ।

अब आप कहिए पाठक, योग्य वर कौन है ? खासकर उस हालत में, जब कि जाति-पांति की कैद नहीं । अजी, ठेकेदार साहब की जाति क्या है, इससे आपको कोई वास्ता नहीं । जो चीज तोड़ दी गई उसकी बात ही क्या ? अलबत्ता, अगर आप भंगी-चमार, धुनिये-जुलाहे या ऐसी ही सटर-पटर जाति के हैं, और आप विद्या और गुणों को प्राप्त करके ही उम्मीदवार बनकर जीभ चटकाने लगें, तो हम साफ कहेंगे कि यह आपका दुस्साहस है । आपकी अक्ल यदि बिल्कुल ही मोटी धार की नहीं, तो आपको समझ लेना चाहिए कि आर्यसमाज के प्रधान यदि जाति-पांति तोड़ेंगे, तो नीचे गिरने के लिए नहीं, बल्कि ऊंचे उठने के लिए । अभिप्राय यह कि वर ब्राह्मण होना चाहिए, और उसे ठेकेदार साहब की जाति-पांति की परवाह न कर उनकी 'पंडिता' कन्या को ब्याह लेना चाहिए । हां जी, 'पंडिता'; आप चौंके क्यों ? कन्या ने विद्या-विनोदिनी पास कर लिया है, और संध्या-हवन के मंत्र उसकी जीभ के अगले भाग पर धरे रहते हैं । इच्छा होते ही वे फर-फर निकल पड़ते हैं । अलबत्ता, वर को 'ब्राह्मण-वंश' का होने के साथ धनी, विद्वान्, सुन्दर और ठेकेदार साहब का भक्त भी होना लाजिमी है । अब कहिए, हैं आपमें ये गुण ? नहीं, तो आप अपना रास्ता नापिए । पंडिता जी से आप विवाह नहीं कर सकते ।

प्रधान जी और देशराज जी बैठे बातें कर रहे थे । प्रधान जी ने कहा—देखो देशराज जी, तुमने कन्या का रूप तो देखा ही है, गुण में भी वह किसीसे कम नहीं । उसने विद्या-विनोदिनी पास कर लिया है । वह नित्य संध्या-हवन करती है, यह तो तुमने देखा ही है ?

'जी हां, देखा है ।'

'देखने में भी बुरी नहीं ।'

'जी नहीं', देशराज ने झेंपकर कहा ।

'अच्छा, अब तुमने डक्टरी पास कर ही ली । यहीं काम शुरू कर दो । खूब चलेगी ।'

'जी हां, मैं इस विषय पर विचार कर रहा हूं।'

'विचार क्या, जब मैं यहां हूं, तब चिंता क्या ? तुम कोई गैर थोड़े ही हो। तुम्हारे पिता डेरा गाज़ीखां के प्रधान थे। हमारी उनकी दांत-काटी रोटी थी।'

'बेशक।'

'तो मैं चाहता हूं कि तुम्हें स्वीकृत हो, तो यह रिश्ता हो जाए। लड़की तुम्हारे हर तरह योग्य है।'

'जी, मैं इसपर ज़रा विचार लूं।'

'विचारना क्या है ? '

'फिर भी।'

'वह कुछ नहीं। अच्छा क्या विचारना चाहते हो, ज़रा मुझे भी तो बताओ।'

'वास्तव में मेरी विवाह-चर्चा अन्यत्र चल रही है, और पिता जी ही उस सम्बन्ध का वाग्दान कर गए थे। जब तक इस मामले में कुछ हेस-नेस न हो जाए, मैं कुछ नहीं कह सकता।'

'शोक की बात है कि तुम आर्य होकर भी पिता के अधीन हो। भाई, ये विषय तो स्वयं विचारने के हैं। वेद में क्या लिखा है, जानते हो ? 'युवानं विन्दते पतिम्,' समझे। विवाह अब गुड्डे-गुड़ियों के खेल पोपों के हाथ में तो नहीं हो सकते न !'

'आपकी बात ठीक है, परन्तु…'

'अब परन्तु क्या…अच्छा, तुम भीतर चलो, ज़रा कांता से बात तो करो। वह तुम्हारे खयालात पलट देगी।'

ठेकेदार साहब उठे। युवक भी संकुचित होकर भीतर चले। ठेकेदार साहब ने कहा—बेटी, यह डाक्टर देशराज आए हैं। आओ, मैं तुम्हारा परिचय कराऊं। ज़रा अपनी भजनों की पुस्तक लेती आना। हां, वह भजन हारमोनियम पर सुनाना, जो वार्षिकोत्सव पर गाया था। तुमने सुना था देशराज ?

'जी नहीं।'

'ज़रा सुनाना कांता ! हारमोनियम उठा लो।'

कांता ने निकट आकर युवक को नमस्ते किया। फिर उसने पिता की तरफ देखकर कहा—कौन-सा भजन बाबूजी ?

'वही—धरम पर तन-मन-धन कुर्बान…'

कांता गाने लगी। उसकी अंगुलियां हारमोनियम के पर्दे पर इस भांति पड़ती

थीं, जैसे तख्ते में कीलें ठोकी जाती हों। स्वर निकलता था, मानो हाय-तोबा मच रही है। गाना क्या था, चीखना-चिल्लाना था। युवक चुपचाप सुनता रहा। समाप्ति पर उसने ज़रा मुस्कराकर ठेकेदार साहब से उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की।

ठेकेदार साहब फूलकर कुप्पा हो रहे थे। कन्या की स्वर-लहरी में वह डूब-से गए थे। गद्गद कण्ठ से बोले—देखो भाई देशराज, अब देर का काम नहीं, तुम्हें हां या ना करना होगा।

'पर मैंने अर्ज़ की कि बिना उधर से कोई जवाब आए कुछ कहा नहीं जा सकता।'

'तुम कहते हो, उसका पिता अफ्रीका में है?'

'जी हां।'

'और उसने लिखा है कि अगले साल आकर तब कुछ निर्णय करूंगा?'

'जी हां।'

'यदि उसका निर्णय बदल गया?'

'हो सकता है, मगर······लड़की ने वचन दिया है।'

'लड़की ने?'

'जी हां।'

'तुम कहते हो, वह जालंधर में है?'

'जी हां।'

'तुम वहां जाकर एक बार पक्का जवाब ले आओ। न मिले, तो कह दो, मैं शादी करता हूं। अफ्रीका को भी तार दे दो। तुम द्विविधा में क्यों रहते हो?'

बहुत इधर-उधर करने पर युवक राजी हो गया। ठेकेदार साहब ने खड़े होकर घड़ी निकालकर कहा—मुझे एक मीटिंग में जाना है—दो घंटे में आ जाऊंगा तब तक खाना भी बन जाएगा, खाकर जाना। कांता से बातें करो—सत्यार्थ-प्रकाश इसने पढ़ लिया है, तुम इसकी परीक्षा लो। कांता, ज़रा उठा तो ला सत्यार्थप्रकाश।

युवक ने एक बार जाने की इच्छा प्रकट की, पर ठेकेदार साहब ने न माना। वह चले गए। चलते-चलते कान्ता से कह गए, डाक्टर साहब को नाश्ता-वास्ता करा देना।

जालंधर में इंदु की सोलह कलाएं फलीं। वह परीक्षा दे चुकी थी, और लेडी डाक्टर के पद की अधिकारिणी हो गई थी। हिन्दू-बालिका के लिए यह पद अब से पन्द्रह वर्ष पूर्व असाधारण था। वह ज़मीन पर पैर न रखती थी। उसके लिए पृथक् बंगला रहने को, फिटन सैर करने को, सेवक खिदमत के लिए नियत किए गए थे। इतना आदर, इतना वैभव ही उस बालिका के लिए यथेष्ट था। वह गर्व से फूलकर धरती में ठोकर मारती और समझती थी कि धरती उसकी चोट से हिल उठी है। लाला गोवर्धनदास जी उसके अभिभावक बन गए थे। सुना है, वह उसके पिता के मित्र थे। और, पिता ने पुत्री को उन्हींकी देख-रेख में रहने का आदेश किया था।

हम नहीं कह सकते कि देशराज को यह कन्या भूली या नहीं। बाह्याडंबर, रूढ़ि और धर्म के पचड़े में प्रकृत प्रेम तो खो ही जाता है। अस्तु। ऐसी ही दशा में युवक देशराज जालंधर जा धमके। इतना हम कह सकते हैं कि प्रकट कारण उनके वहां पहुंचने का चाहे भी कुछ रहा हो, पर सच्चा कारण, जिसने उन्हें इतने शीघ्र वहां जाने को राजी कर लिया, था एक बार उस रूप को देखना। उन ओठों से निकलते हुए वाक्यों का सुधा-रस पीना और यदि संभव हो तो कर-स्पर्श करना। उन्हें पूर्ण आशा थी कि वह अपनी पुरानी प्रतिज्ञा दृढ़तापूर्वक दुहराएगी।

परन्तु वहां हुआ क्या, यह सुनिए। दो घण्टे विद्यालय के दफ्तर में बैठने के बाद प्रबन्धकर्ता महाशय बड़ी-सी पगड़ी सिर पर लपेटे और मोटे पट्टू का भद्दा-सा कोट पहने आए, और बोले—आप कहां से आए हैं ?

'मैं आगरे से आया हूं।'

'आपका नाम ?'

'मेरा नाम देशराज है।'

'आप क्या चाहते हैं ?'

'मैं इन्दुकुमारी से मिलना चाहता हूं।'

'आप उसके क्या लगते हैं ?'

युवक झेंप गए। क्या जवाब दें, कुछ भी न सोच सके। कुछ ठहरकर बोले—उससे मेरी मंगनी हुई है।

'फिर इस समय उससे आप क्यों मिलना चाहते हैं ?'

'उससे कुछ खास बातें करनी हैं।'

'किस विषय पर ?'

युवक को क्रोध आ गया। उसने कहा—वह मैं आपको नहीं बता सकता।

'क्यों ?'

'आपको कोई अधिकार नहीं।'

'मैं उसका अभिभावक हूं, मुझे पूर्ण अधिकार है कि मैं किसी फालतू आदमी को उससे न मिलने दूं ?'

'मैं फालतू आदमी नहीं हूं।'

'यह मैं कैसे समझूं ?'

युवक डाक्टर क्रोध के मारे हांफने लगे। बोले—आप जाकर मेरा नाम लीजिए। उसकी इच्छा मिलने की न होगी, तो मैं चला जाऊंगा।

'पर जब तक मैं अपनी तसल्ली न कर लूं, उसे इत्तिला नहीं कर सकता।'

'क्या वह कैदी है ?'

'चाहे जो कुछ भी समझें।'

'मैं उससे अवश्य मिलूंगा।'

'यहां आप नियम के विरुद्ध कुछ नहीं कर सकते।'

'तुम्हारे नियम जहन्नुम में जाएं।'

'अभी आप अहाते से बाहर चले जाइए।'

'क्या, मैं ?' युवक ने घूंसा ताना। एक शिष्ट पुरुष ने कमरे में प्रवेश करके कहा—मामला क्या है ?

'यह महाशय मुझे अहाते से बाहर निकाल रहे हैं, शर्म नहीं आती। जब चंदा मांगने जाते हैं, भिखारी से ज्यादा बेगैरत, निर्लज्ज और ढीठ बन जाते हैं। हमारे ही रुपये से अहाता बनाकर हमें ही बाहर निकालते हैं—दो कौड़ी के टुकड़-गधे। अफसर बने हैं, धौंस से बातें करते हैं, जैसे बाप का घर है।'

युवक एक ही सांस में कह गया। आगंतुक ने कहा—अजीज, मैं अधिष्ठाता हूं, मेरा नाम देवराज है, तुम चाहते क्या हो, मुझे बताओ।

'मैं इन्दु से मिलना चाहता हूं।'

'बिना इस बात का निश्चय हुए कि किसी कन्या से किसी युवक का मिलना उचित है—नहीं मिलाया जा सकता, या तो तुम उसके रिश्तेदार होते या…।'

'मेरे साथ उसकी मंगनी हुई है।'

'भंगनी ? क्या तुम डेरा गाजीखां के आर्यसमाज के प्रधान लाला धर्मराज के पुत्र हो ?'

'जी हां।'

'देशराज ?'

'जी हां।'

देवराज जी ने युवक के दोनों कंधों पर हाथ रखकर कहा, 'ओहो, तुम इतने बड़े हो गए। ऐसे तगड़े जवान ! मैंने तुम्हें जरा-सा देखा था। यहां आए कब ?'

'अभी।'

'मुझे लिखा क्यों नहीं ?'

'जरूरत क्या थी।'

'अच्छा, स्नान-भोजन करो। शेष बातें फिर होंगी।'

'मुझे अभी लौटना है। जिस काम से आया हूं, उसे करके लौट जाऊंगा।'

'तुम इन्दु से क्यों मिलना चाहते हो ?'

युवक फिर क्रोध में भरकर देवराज जी को घूरने लग गया। देवराज जी ने कहा—तुमको एक बात शायद नहीं मालूम ?

'वह क्या ?'

'इन्दु के पिता ने अपना विचार बदल लिया है, और इन्दु से तुम्हारी मुलाकात न हो सके, इसकी हिदायत कर दी है।'

'पर मैं इन्दु की सम्मति जानना चाहता हूं।'

'उसकी सम्मति से क्या होगा ?'

'इन्दु बच्ची नहीं, वह अपना हानि-लाभ स्वयं सोचेगी।'

'पिता के रहते यह कैसे हो सकता है ?'

'आप जो यह कहते हैं कि हमें युवक-युवतियों के स्वयंवर करने हैं, सो क्या इसी भांति करेंगे ? स्वाधीनता भी देते हैं, युवावस्था तक क्वांरा भी रखते हैं, विवाह-विषय पर सोचने का उन्हें अवसर भी देते हैं, पर निर्णय करते हैं आप अपनी ही इच्छा से। जैसे बच्चों का विवाह हिन्दू करते हैं, वैसे बचपन ही में क्यों नहीं आप ब्याह करते ?'

'सब बातें धीरे-धीरे होंगी।'

'खैर, मैं इन्दु की सम्मति लूंगा। वह चाहेगी, तो मैं उसके पिता की बिना

मर्जी ही ब्याह करूंगा।'

'यह संभव नहीं। उसके पिता की बिना मर्जी हम तुम्हें उससे मिलने नहीं दे सकते।'

'यह तो अत्याचार है। खैर, आप उससे पूछ लीजिए कि क्या वह अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ है। यदि ऐसा होगा, तो मैं आगे कुछ उपाय सोच लूंगा।'

'ऐसा नहीं हो सकता। उसके इच्छानुसार काम नहीं हो सकता।'

'तब आप उससे यह बात न पूछेंगे?'

'नहीं।'

'न मिलने ही देंगे?'

'नहीं।'

'यदि मैं एक पत्र लिखूं, तो उत्तर मंगा देंगे?'

'कुमारी कन्या को इस विषय पर पत्र लिखना अनुचित है।'

'पर वह बालक तो नहीं?'

'फिर भी कन्या है।'

'दुनियाभर की कन्याएं भी इस विषय पर स्वयं ही विचार करती हैं।'

'भारत में वह समय नहीं आया।'

'आप उसे आने भी न देंगे, बल्कि भयानक परिस्थिति पैदा कर देंगे। बहुत अच्छा, मैं जाता हूं। आप उसके पिता को लिख दें कि वह अपनी कन्या का चाहे भी जहां विवाह कर दें। मेरी प्रतीक्षा न करें।'

युवक उठकर चलने लगा। लाला देवराज ने ठहराने की बहुत चेष्टा की, पर युवक चला ही गया।

आगरे पहुंचकर देशराज सीधे स्टेशन से ठेकेदार साहब के यहां पहुंचा। उसने छूटते ही कहा—मैंने आपका वचन स्वीकार करने का निर्णय कर लिया है। वहां मैं जवाब दे आया हूं, और रास्तेभर मैंने सोचकर विचार पक्का कर लिया है।

ठेकेदार साहब अपनी बैठक में बैठे थे। उनके सामने और दो व्यक्ति थे। एक युवक और एक दाढ़ी-मूछों से भरपूर साधु-वेषधारी।

ठेकेदार जी ने गंभीर मुद्रा से कहा—देशराज जी, आपने देर में निर्णय किया। मैं इन युवक से कन्या का सम्बन्ध तय कर चुका। यह गुरुकुल के स्नातक पंडित

रुद्रचन्द्र विद्यालंकार हैं। आपने इनका व्याख्यान तो सुना होगा, सभा को कम्पायमान कर देते हैं। शायद आप पिछले शास्त्रार्थ में न थे। इन्होंने सनातनियों के दांत खट्टे किए थे। मेरी तो इनसे पहले जान-पहचान न थी। यह स्वामी ब्रह्मानन्दजी महाराज हैं, इन्होंने अभी परिचय दिया, कांता ने भी इन्हें पसन्द कर लिया है, मैंने इन्हें वचन दे दिए। अब ये दोनों पंडित स्त्री-पुरुष धर्म-प्रचार में जीवन व्यतीत करेंगे।'

देशराज हक्का-बक्का खड़े रहे। बड़ी देर तक उनके मुंह से बात ही न निकली। कुछ ठहरकर वह कांपते-कांपते बोल उठे—आप ऐसा नहीं कर सकते, यदि आप ऐसा करेंगे, तो मैं आपको जान से मार डालूंगा।

ठेकेदार साहब के सामने ऐसी गुस्ताखी करनेवाला यही प्रथम व्यक्ति था। उन्होंने एकदम खड़े होकर कहा—निकल जाओ, इसी वक्त निकल जाओ!

'निकलना क्या, मैं आपका खून पी जाऊंगा। आपको शर्म नहीं आती, जवानों को बुला-बुलाकर लड़की से मिलाते हैं, गाना सुनवाते हैं, सौदा पटाते हैं, और दूसरा अच्छा मिलने पर राय बदल देते हैं, यह क्या मजाक समझा है?'

'क्या मैंने तुमसे पक्का वादा किया था? तुम भी सोच रहे थे, मैं भी सोच रहा था।'

'आपकी लड़की ने पक्का वादा किया था।'

'मेरे सामने लड़की क्या कर सकती है?'

'लड़की बालिग है! वह अपना लाभ-हानि सोच सकती है। आपका फर्ज उसके इच्छानुसार काम करने का है, न कि अपनी मनमानी करना।'

'मुझे तुम्हारी सलाह की जरूरत नहीं।'

'मैं अभी आपकी लड़की से पूछना चाहता हूं।'

'तुम उससे नहीं मिल सकते।'

'उससे मिलने की मुझे ज़रा भी इच्छा न थी, आपने ही मिलाया था, अब मैं उससे अवश्य मिलूंगा।'

'यह हो नहीं सकता।'

'आप रोक नहीं सकते।'

युवक देशराज तीर की भांति बाहर निकल गया।

स्नातक पं० रुद्रचन्द्र विद्यालंकार, आयुर्वेदनिधि, तर्कशिरोमणि स्थानीय आर्य-समाज मंदिर में ठहरे थे। देशराज ने वहीं पहुंचकर उनसे कहा—मैं आपसे कुछ बातें एकांत में किया चाहता हूं।

'आप वही सज्जन हैं, जो प्रधान जी के घर लाल-पीले हो रहे थे ?'

'जी हां।'

'और आप बातें भी उसी ढंग की करेंगे ?'

देशराज ने गुस्सा पीकर कहा—मगर आपके फायदे की।

'तब कहिए ?'

देशराज ने चिट्ठियों का एक गट्ठा जेब से निकालकर कहा :

'ये चिट्ठियां आपकी भविष्य धर्मपत्नी की हैं। ये सभी प्रेम-पत्र हैं जो उसने समय-समय पर मेरे पत्रों के उत्तर में लिखे हैं। वह मुझसे प्रेम करती है। मैं भी उसे पसन्द करता हूं। फिर इस सम्बन्ध के लिए उसके पिता ने मुझे महीनों हठ करके राजी किया है, और मैंने इस सम्बन्ध के लिए अपना पूर्वनिश्चित रिश्ता भी तोड़ दिया है। आप विद्वान् हैं, और गुरुकुल के स्नातक हैं। आपको उचित नहीं कि ऐसे मामले में पैर बढ़ाएं।'

'परन्तु जब उसके पिता की इच्छा है, तब मैं क्या कर सकता हूं ?'

'कैसी अद्भुत बात है ! सभी एक स्वर अलापते हैं। अजी, कन्या क्या पिता की जरखरीद जायदाद है, या उसकी मेज़-कुर्सी, कलम-दवात या कोई रद्दी-सी किताब है, जिसे वह चाहे जिसे दे सकता है ? आखिर लड़की भी एक जीव है, उसके मन है, आत्मा है, शरीर है, दिमाग है, अपना भला-बुरा सोचने की तमीज़ है। जीवन का संगी-जैसा व्यक्ति उसे स्वेच्छा से तलाश करने, पसंद करने का भी हक नहीं, खासकर जवान लड़कियों को, जो आर्यसमाज के प्रधान की पुत्रियां हों और पढ़ी-लिखी हों, जिन्हें उनके पिता ने स्वयं विवाह की आज़ादी दी हो, युवकों से मिलाया हो, और एक दूसरे को पसन्द करने, प्रेमालाप करने, पत्र-व्यवहार करने के महीनों सुभीते दिए हों ?'

युवक देशराज झोंक में एकबारगी ही उपर्युक्त व्याख्यान बखान गया।

स्नातक महाशय ने ज़रा आंख-भौं चढ़ाकर कहा—मैं तो पहले ही से जानता था कि आपका बातें करने का ढंग तूफानी है। महाशय जी, पिता जिसे चाहता है, उसे ही कन्यादान करता है। यह विलायती कोर्टशिप नहीं, वैदिक विवाह है,

इसमें पवित्र वेद-मंत्रों के द्वारा अग्नि को साक्षी करके पिता कन्या को जिसे देता है, वही उसका पति बनता है। आप अंग्रेज़ी सभ्यता और शिक्षा के भूत को सिर पर सवार करके विलायती कोर्टशिप करते हैं। शोक है! सुना है, आपके पिता……'

'मेरे पिता से आपको कोई सरोकार नहीं। आप ज़रा बता सकते हैं, किस वेद-मंत्र में लिखा है कि पिता को कन्यादान का अधिकार है?'

'साफ लिखा है—ओं अमुक गोत्रोत्पन्नामिमाममुक नाम्नीमलंकृतां कन्यां प्रतिगृह्णातु भवान्—यह आपने नहीं पढ़ा?'

'नहीं, यह किस वेद का कौन-सा मंत्र है?'

'संस्कार-विधि में लिखा है।'

'संस्कार-विधि कौन-सा वेद है—पांचवां या छठा?'

'संस्कार-विधि वेद नहीं है, परन्तु उसमें वेद से मंत्र लिए गए हैं।'

'यही मैं पूछता हूं, किस वेद से यह मंत्र लिया गया है?'

स्नातक जी घबरा गए। वह इधर-उधर करके बोले—सारे प्रमाण तो स्मरण नहीं। परन्तु शोक है, आप आर्यसमाज के प्रधान के पुत्र होकर भी ऋषि-ग्रंथ पर शंका करते हैं!'

'शोक आपपर है कि आप आंख और अक्ल दोनों के अंधे हैं। आपको बताना होगा कि उपर्युक्त वाक्य किस वेद-मंत्र में है।'

'मान लीजिए, वह वेद-मंत्र नहीं है।'

'तब कन्यादान किस वेद-मंत्र में है, यह बताइए।'

'मनुस्मृति में है।'

'मनुस्मृति कौन-सा वेद है?'

'स्मृति सदैव ही श्रुति के अनुकूल होती है?'

'मनुस्मृति किस श्रुति के अनुकूल है?'

'चारों वेदों के।'

'तब चारों वेदों में से कन्यादान का अधिकार कहीं एक स्थान पर ही दिखा दें!'

अथर्ववेद में लिखा है—'कोऽदात् कस्मै आदात……।'

'इसमें कन्या देने का विषय कहां? ज़रा इस मंत्र का भाष्य तो निकालिए।'

'आप कुतर्क करते हैं।'

'और आप बगलें झांकते हैं। मैं वेद में कन्यादान का पिता का अधिकार देखकर उठूंगा।'

'वरना ?'

'वरना मैं आपका माजना बिगाड़ दूंगा। आपको शर्म नहीं आती, दूसरों के काम में दाल-भात में मूसलचन्द की भांति टपकते हैं। बात-बात पर वेद-वेद चिल्लाते हैं। समाज-सुधार का दम भरते हैं, मगर पुराने ढकोसलों के गुलाम हैं। गजों लंबी डिग्री की दुम लगाए फिरते हैं, मगर इतना भी नहीं मालूम, वेद क्या हैं, और संस्कार-विधि या मनुस्मृति क्या है ? यही आपकी गुरुकुल की योग्यता है ?'

'आप क्या मेरी परीक्षा लेते हैं ?'

'मुझे इस व्यर्थ काम की फुर्सत नहीं। आप वेद में से यह बताइए कि किस वेद-मंत्र में लिखा है कि पिता को कन्यादान का अधिकार है ?'

'मैं देखकर बताऊंगा।'

'कब ?'

'मैं आपको खबर कर दूंगा।'

'और जब तक आप न बताएं या वेद में आपको कन्यादान का विधान न मिले, तो आप प्रतिज्ञा कीजिए कि आप जब और जहां विवाह करेंगे, कन्या से करेंगे, उसके पिता की इच्छा से नहीं।'

'मैं किसी प्रतिज्ञा के लिए बाध्य नहीं।'

'तब मैं इन चिट्ठियों को अदालत में पेश करूंगा, और उस लड़की को भी। तब अदालत यह फैसला करेगी कि वह स्वयं ही अपने विवाह की अधिकारिणी है, या उसका पिता ?'

'आप यदि उससे प्रेम करते हैं, तो आप उसे इस प्रकार ज़लील करेंगे ?'

'और आप उस स्त्री से विवाह करेंगे, जो दूसरे युवक से प्रेम करती है, जिसके प्रमाण ये पत्र हैं ?'

'क्या आपको यह शोभा देता था कि उस कन्या की यह गुप्त बात औरों पर प्रकाशित करते ?'

'मैं जानता हूं, आप और उसके पिता उसपर उसकी इच्छा के विपरीत अत्याचार कर रहे हैं, तब मैं आपको वस्तुस्थिति दिखाने आया था। पर देखता हूं,

आपने इन पत्रों को देखकर भी अपना मत नहीं बदला।'

'नहीं, मैंने तो मत नहीं बदला।'

'क्या वह आपसे प्रेम करती है?'

'विवाह होने पर स्वयं करेगी।'

'आप उससे प्रेम करते हैं?'

'मुझे करना पड़ेगा।'

'यदि वह न करे?'

'यह उसके लिए पातक है।'

'यह क्यों?'

पति की मन, वचन, कर्म से उसे विश्वासिनी होना चाहिए। पर-पुरुष का ध्यान उसे न करना चाहिए।'

'तब, जब कि उसने पति को स्वेच्छा से चुना हो।'

'स्त्रियां कभी स्वतन्त्र नहीं हो सकतीं। मनुस्मृति में लिखा है—न स्त्री स्वातंत्र्यमर्हति।'

'और वेद में लिखा है—ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्।'

'खैर, मैं आपसे इस विषय पर बहस नहीं किया चाहता।'

'तो आप उस स्त्री से विवाह करने को राज़ी हैं, जो अन्य व्यक्ति से प्रेम करती है?'

'इसके लिए आपके सम्मुख मैं जवाबदेह नहीं।'

'आप शायद तभी ऐसी विधवाओं से भी विवाह आसानी से कर लेते हैं, जिनके तीन बच्चे हो गए हों या जिन्होंने पति को त्याग दिया हो।'

युवक देशराज घृणापूर्वक एक बार स्नातक महाशय को देखकर तेज़ी से चला गया।

'जल्दी कहो, क्या कहना है? माताजी कहीं देख न लें!'

'क्या उन्होंने कभी देखा नहीं है?'

'पर तब में और अब में भेद हो गया है।'

'क्या भेद है?'

'आपको सब मालूम है।'

'तुम्हारे दिल में भी भेद हो गया है ?'

'मैं क्या कर सकती हूं।'

'तुम एक बार कह दो कि मैं इस विवाह को पसंद नहीं करती। बाकी काम मैं कर लूंगा।'

'यह नहीं हो सकता। मैं पिता जी के विरुद्ध कुछ भी नहीं कर सकती।'

'उस सूखे-रूखे गुरुकुल के मूढ़ के पल्ले पड़ोगी ?'

'ईश्वर की जो इच्छा।'

'ईश्वर इसमें क्या करेगा ?'

'मैं ही क्या कर सकती हूं।'

'तुम कहभर दो। फिर मैं देख लूंगा।'

'यह मुझसे न होगा।'

'तब तुम उसे ही चाहती हो ?'

'इस चर्चा को न छेड़ो।'

'क्यों न छेड़ूं, मैं तो बर्बाद हुआ, यार लोग आबाद हुए।'

'आपको विवाह की क्या कमी है, जो इतना गिरकर उनके पीछे पड़ते हो ?'

युवक ने देखा, कान्ता का स्वर बदल गया है। वह भीतर छिपे प्रेम को देखकर बोला—कान्ता, तुम्हारे लिए मैंने एक परम सुंदरी लड़की ठुकरा दी।

'ईश्वर इसका तुम्हें बदला देगा।'

'पर तुम पराई हो जाओगी ?'

'मैं कुछ भी नहीं कर सकती, जो भाग्य में होगा, भोगूंगी। पर मैंने सुना है, आपने मेरे पत्र उन्हें दिखाए थे, यह सच है ?'

'सच है।'

कान्ता चुप रही। फिर वह रोने लगी। रोकर उसने कहा—पुरुष ऐसे ही प्रेमी होते हैं ? क्यों ?

युवक लज्जित हुआ। पर उसने कहा—मेरे कलेजे में आग जल रही है।

'सिर्फ तुम्हारे कलेजे में ही ?'

'और की मैं क्या जानूं।'

'अच्छी बात है, अब जाओ। उन खतों का क्या करोगे ?'

'अदालत में दावा दायर करूंगा।'

'उससे क्या होगा?'

'हर्जाना लूंगा।'

'अच्छी बात है, जाओ।'

'मैं उन्हें अखबारों में छपाऊंगा।'

'इससे क्या होगा?'

'तुम्हारी और तुम्हारे पिता की बदनामी होगी।'

'अच्छी बात है।'

कान्ता तेज़ी से चल दी। युवक ने पुकारकर कहा—सुनो।

कान्ता ठहर गई। पर बोली नहीं। युवक ने कहा—यह लो।

सारे पत्रों का बंडल था। उन्हें कान्ता को वापस देकर युवक देशराज वहीं सीढ़ियों पर बैठकर रोने लगा।

कान्ता विचलित हुई। उसने बलपूर्वक रोना रोककर कहा— आप···तुम एक दिन रोकर सब कुछ भूल जाओगे, पर रोनेवाले जन्मभर रोएंगे।'

वह चली गई। युवक देशराज भी धीरे-धीरे चला आया।

दस वर्ष व्यतीत हो गए। देशराज ने एक सुशीला कन्या से विवाह कर लिया है। उनकी डाक्टरी खूब चल रही है। परिश्रम और दयानतदारी से जो नेकनामी किसीको मिलनी चाहिए, वह उन्हें मिली है। उनकी स्त्री खूब चतुर, खूब सुघर, खूब सुन्दर और खूब हंसमुख है। दोनों धीरे-धीरे घुलकर इन दस वर्षों में दूध में मिश्री की भांति एक हो गए हैं। दोनों का मेल धूप-छांह का मेल है। वे अब आर्य-समाजी नहीं हैं।

कांता चार साल से विधवा है। स्नातक जी क्षयरोग से स्वर्गवासी हो गए! वह पिता के घर ही रहती है। उसके तीन संतान हैं—एक लड़का, दो लड़की। एक लड़की सबसे छोटी है। उसकी आयु पांच वर्ष की।

ठेकेदार साहब को प्रधान होने का रोग बढ़ गया है। अब वह आधे दर्जन के लगभग सभा-सोसायटियों के प्रधान हैं। नगर में कांग्रेस का खूब ज़ोर है। असहयोग और आज़ादी की लड़ाई ने देश में तूफान मचा रखा है। आज जवाहरलाल नेहरू पकड़े गए हैं। इसके विरोध में दिनभर नगर में हड़ताल रही। आज बड़ी भारी सभा है। श्रीमती जवाहरलाल का भाषण होगा। ठेकेदार साहब स्थानीय

कांग्रेस-कमेटी के भी प्रधान हैं। आज उनकी गिरफ्तारी की भी ज़ोरों की अफवाह है। बहुत दिन बाद आज डाक्टर साहब भी सभा देखने आए हैं। भीड़ बीस-पचीस हज़ार से कम नहीं।

सभा समाप्त हो गई। स्त्री-पुरुष उठ-उठकर तितर-बितर हो गए। डाक्टर साहब धीरे-धीरे जा रहे थे। एक कोमल कंठ ने पुकारा—डाक्टर साहब !

डाक्टर साहब ने लौटकर देखा, बिजली का कुछ प्रकाश वहां था, आगन्तुक स्त्री थी, उसकी उंगली एक बच्ची पकड़े थी। पहले उन्होंने पहचाना नहीं, पर फिर पहचाना, कांता है। वह मन के आवेग को रोककर बोले—ओह ! आप ?

कांता पास आकर खड़ी हो गई। बालिका से कहा—डाक्टर साहब को नमस्ते करो बेटी !

बालिका ने नमस्ते किया।

डाक्टर साहब ने बच्ची को गोद में उठाकर पूछा—तुम्हारा नाम क्या है बेटी ?

'सुशीला।'

'वाह ! सचमुच सुशीला हो।'

बालिका ने स्थिर नेत्रों से डाक्टर को देखकर कहा—आपका नाम क्या है ?

डाक्टर विचलित हुए। संभलकर बोले—हमारा नाम डाक्टर साहब।

'आप हमारे घर नहीं आते ?'

'तुम बुलाओ, तभी तो आएं।'

'अच्छा, आना।'

'क्या दोगी ?'

'पूरी और मिठाई।'

'बहुत अच्छा, आएंगे।'

कांता चुप खड़ी थी। अब उसने कहा—डाक्टर साहब !

डाक्टर साहब चौंके। वह कांता को देखने लगे।

कांता ने कहा—डाक्टर साहब ! अब भी आप कभी रोते हैं ?

डाक्टर साहब की छाती में एक घूंसा लगा। उन्होंने ज़ोर से बच्ची को छाती से लगा लिया, वह कांता की तरफ देख भी नहीं सके।

कांता ने फिर कहा—डाक्टर साहब ! अब उतना भय नहीं है, संकोच भी

नहीं है, कभी सुशीला को देख जाया कीजिए। विधवा अभागिनी आपको देखकर प्रसन्न होगी।

डाक्टर टप-टप आंसू गिराने लगे। उन्होंने बालिका को चुपचाप गोद से उतार दिया। उधर से एक खोंचेवाला आ रहा था, उसे पुकारकर बालिका को कुछ दिलवाने लगे।

कांता का भी गला रुंध गया था। वह बोल ही न सकी।

डाक्टर ने कहा—जाता हूं।

'सुशीला बेटी, डाक्टर साहब को कब बुलाएगी?'

'कल आप आएंगे डाक्टर साहब? मैं तुम्हें अपनी एक चीज दिखाऊंगी।'

डाक्टर ने फिर उसे उठाकर छाती से लगाया, प्यार किया, और तेजी से चल दिए।

कांता खड़ी देखती रही।

क्या वह रो रही थी?

बाहर-भीतर

विवाह के लिए स्त्री की सुन्दरता ही आज भी प्रधान मानी जाती है, और उसके दूसरे गुण-दोषों को पीछे डाल दिया जाता है। इस कहानी में अत्यन्त मोहक रीति से इसी प्रश्न का व्यावहारिक और मनोरंजक वर्णन है। यह कहानी भी आचार्य की समाज-समस्या पर अब से तीस वर्ष पूर्व की विचार-शृंखला की द्योतक है।

उसे देखते ही नैन विद्रोही हो उठे। मैं दशहरे की छुट्टियों में कॉलेज से बड़ी उमंग से घर आया था। ब्याह के बाद वह पहली ही बार घर आई थी। इसकी खबर भाभी ने मुझे बड़े ही रसभरे शब्दों में दे दी। ब्याह में मैंने उसकी एक झलकभर देखी थी, उसी झलक की याद में मैंने ये तीन साल के एक हज़ार दिन उंगली पर गिन-गिनकर काटे थे।

पाठको, आपमें क्या कोई भी ऐसा है, जो मेरी तरह नई दुलहिन से पहली बार मिलने की प्रसन्नता में अपना आपा न भूल जाए? इस दुनिया में युवक के लिए दुलहिन से बढ़कर कौन चीज मीठी हो सकती है? मैंने दर्जनों हिन्दुस्तानी और विलायती काव्य, नाटक तथा उपन्यास पढ़े थे। कालिदास की शकुंतला की मूर्ति तो मेरे मानस-नेत्रों में बस रही है। जैसे ओस से भीगा हुआ गुलाब का फूल वसंत की हवा में झूम रहा हो, वैसे ही लज्जा, कोमलता और सुंदरता की मूर्ति-सी शकुंतला मेरे मन में झूमती रहती है। मैंने शेक्सपियर की रोज़ालिंड और जूलियट भी अपनी आंखों के हिंडोलों में झुलाई हैं। मैं क्या मनुष्य नहीं, युवक नहीं, मेरी रगों में गर्म खून नहीं? अजी, मैंने नई दुलहिन पाई थी तीन साल पहले। पर हिन्दू-जाति में जन्म लेने के कारण ब्याह से पहले उसे नहीं देख सका; पसन्द करने, प्यार करने, हृदय और आंखों का सौदा करने का सुभीता न पा सका तो भी क्या हुआ? भारतीय स्त्रियों जैसा रूप, सच्चा प्यार! भाभी ही को लो। दुनिया में कौन फूल ऐसा सुन्दर और कोमल हो सकता है! वह ईश्वर का दिया

हुआ आशीर्वाद-सा है, संसार को सुखी बनाने के लिए वही काफी है। भैया तो जैसे भाभी में घुल गए हैं। मैं जब उन्हें याद करता हूं, उन्हें प्रणाम करता हूं।

ऊषा कैसा प्यारा नाम है। जब से मैंने ऊषा से ब्याह किया है, हमेशा ऊषा-काल में जाग उठता हूं। मैं एकटक देखता रहता हूं। कितनी प्यारी सुनहरी किरणों को धरती पर बिखेरती है। पूर्व के आसमान पर पीली लगती है। वह ऊषा—पीला, शांत, उजला आलोक। वह कैसी प्यारी लगती है, किस तरह आनन्द देती है।

ऐसे ही मेरी ऊषा भी मेरे जीवन के अंधेरे को छूते ही उज्ज्वल आलोक करेगी।

उसके पिता रायबहादुर हैं, सेशन जज हैं, प्रतिष्ठित नागरिक हैं। वह फार्वर्ड घराने की शिक्षिता कन्या है। ऐसे उच्च घराने की शिक्षिता कन्याएं क्या मैंने देखीं नहीं ? मेरी ही क्लास में लगभग आधी दर्जन ऐसी कुमारियां पढ़ती हैं। जब वे क्लास में आकार बैठती हैं, क्लास जैसे जगमगा उठती है, देखकर प्राण हरे हो जाते हैं, संसार सुन्दर हो जाता है। उन शिक्षा-संगिनियों का वह क्षणभर का संग मेरी नस-नस को जवान बना देता है। लीला की गहरी आसमानी साड़ी, चन्द्रमा-सा मुख और हथिनी के समान मस्तानी चाल, प्रोफेसर भी देखते ही रह जाते हैं। नलिनी जब आती है, आंधी की तरह; उसके मोती-से दांत और उभारदार सीना देखकर कलेजे में हिलोरें उठने लगती हैं। लीला की चश्मेदार आंखों से जो हंसी बिखरती है, उसपर क्लास भर के लड़के लोट-पोट हो जाते हैं। कहां तक कहूं ? लेकिन मैं तो तीन साल तक यही सोचता रहा कि मेरी ऊषा इन सबसे बढ़-चढ़कर होगी। जब-जब मेरा मन इन स्वदेशी मिसों की ओर मचला, जो बीसवीं सदी में लापरवाही से सड़कों पर अपना रूप छितराती फिरती हैं, तो मैंने उसे समझा-बुझाकर काबू में ही रखा। तीन साल इसी तरह मैंने पूरे किए। भीतर ही भीतर मैं ऊषा को अपने बिल्कुल नज़दीक खींच लाया। मैंने उसे देखा नहीं, समझा भी नहीं, पर इससे क्या ? वह मेरी दुलहिन है। मैं इस बात को नहीं मानता कि जिन स्त्री-पुरुषों में प्रेम हो वे ही ब्याह करें। मैं तो इस उसूल का कायल हूं कि जिनसे ब्याह हो जाए, वे स्त्री-पुरुष आपस में प्यार करें। इसलिए ऊषा को न पाकर भी मेरे प्यार का पौधा तो बढ़ता ही गया।

अब मैं एम० ए० पास कर चुका। मेरी पढ़ाई पूरी हो चुकी। ऊषा भी घर आ गई। भाभी ने मुझे दौड़ आने को लिखा था, सो मैं तूफान-मेल से दौड़ा हुआ

घर आ पहुंचा। पहली मुलाकात थी, इससे मेरा कलेजा धड़क रहा था; लेकिन खुशी में मेरे रक्त की एक-एक बूंद नाच रही थी। दिन इन्तजारी और इधर-उधर की खट-खट में बीता, रात को ज्यों ही वह मेरे कमरे में आई, उसे देखते ही मेरी आंखें जल उठीं।

क्यों? सो कहता हूं, सुनिए। मैंने सोचा था, वह धीरे से ज्यों ही मेरे कमरे में आएगी, लेवेंडर और सेंटों की लपटों से कमरा महक उठेगा। उसकी रूप-ज्योति से मेरे कमरे में चांदनी हो जाएगी। जैसे मेरे क्लास में मेरी सुघड़, सुन्दरी सहपाठिनियों के आने से हो जाता था। वह उन्हींकी तरह छिप-छिपकर, नयनबाण चला-चलाकर मेरे सोए हुए हृदय को जगाएगी, और उन्हींकी तरह मन्द मुस्कान से मेरे मन सुख-सागर में डुबोएगी। वह आकर, धीरे-धीरे लाज से नीचा मुंह कर मेरे पास खड़ी हो जाएगी। इसके बाद क्या करना होगा, सो क्या मैं जानता नहीं? अनाड़ी नहीं हूं, मैंने सब सोच रखा है। मैं उसे खींचकर पास बिठा लूंगा, घूंघट दूर करूंगा, और उस चांद-से मुख को चूम लूंगा। बार-बार चूमूंगा। इतने ही से मेरा जीवन सफल हो जाएगा। जिस दिन की याद में मैंने दुनिया की सुन्दरियों को हेच समझा था, वह समय आज आ गया। अहा! मैं कितना भाग्यवान् हूं। उसके सदुपयोग के सब साधन मैं जुटाए बैठा हूं। भाभी ने बहुत-सी मिठाई, फूल-मालाएं, इत्र, सेंट और न जाने क्या-क्या मेरे पास रख दिए थे। फिर मैं भी तो ऊषा के लिए बहुत-से उपहार लाया था। वे सब मेरे पास थे। इन सबका किस तरह उपयोग करना होगा, यह सब मैंने सोच रखा था।

हां; तो मैं कह रहा था कि वह ज्यों ही मेरे निकट आएगी, मैं उसका घूंघट हटा, लज्जावन्त मुख उठाकर मधुर चुंबन लूंगा। ओह, पति का प्रथम चुंबन नव-वधू के लिए कैसा अमिट स्नेह-चिह्न होगा! वह फिर धीरे-धीरे मेरे पास आएगी, मैं उसे अंकगत करूंगा, मीठी बातों से संकोच दूर करूंगा, उसे प्रेम में डुबो दूंगा; वह मेरे चरणों को चूमेगी, मुझे पाकर धन्य होगी, चिरवियोग के लिए रोएगी। अरे, वह साक्षात् कालिदास की शकुंतला की भांति प्रेम-विह्वला होगी। उस दिन मैं शकुन्तला को कई बार पढ़ गया।

पर जब वह आई तो मैंने अपनी आशा के बिल्कुल उल्टा पाया। लेवेंडर और सेंट का नाम न था। वह एक साधारण, किन्तु उज्ज्वल साड़ी पहने थी। पैर में

चप्पल थे। बाल बिखरे तो न थे, परन्तु बहुत टीमटाम से संवारे भी न थे। उसका वेश बिल्कुल सीधा-सादा था। हां, उसे उज्ज्वल और सोफियाना कह सकते हैं। उसने न नमस्ते किया, न हाथ जोड़े। वह सिकुड़कर पलंग के पास भी खड़ी नहीं हुई, आकर धीरे से कुर्सी खींचकर उसपर बैठ गई। इसके बाद तनिक मुस्करा-कर उसने कहा—कहिए, आप प्रसन्न तो हैं ?

भई, वाह, यह कैसी नई-नवेली वधू ? मैंने आंख फाड़कर उसकी ओर देखा। देखते ही आंखें जल उठीं। वह न तो वैसी सुन्दर ही थी, और न उसका रंग ही गोरा था। मैं क्षणभर ही में अपने क्लास की सब युवतियों से उसका मिलान कर गया। भला, कहां वे परियां और कहां यह ? मेरा हृदय तिलमिला उठा। मैंने ताने के तौर पर कहा—क्या आप ऊषारानी की कोई दासी हैं ? क्या संदेश लाई हैं आप ?

'यही कि ऊषारानी के स्थान पर आप मेरा स्वागत-सत्कार करें।'

'आप हैं कौन ?'

'ऊषारानी मेरी दासी हैं।'

'आपकी ? '

'जी हां, और उसका यह फैसला है कि मैं उनके पति महाशय को अपना दास समझूं। आप ही शायद उनके पति हैं ?'

उस साधारण, प्रतिभाहीन मुख से ऐसी करारी, चुटीली बात सुनकर मैं दंग रह गया। वह नई-नवेली की मुलाकात का पुराना डिज़ाइन हवा हो गया। मैं न गुस्सा कर सका, न मेरे मुंह से कोई बात ही निकली। मैं चुपचाप उस मुंहज़ोर बालिका के मुस्कराहटभरे, फड़कते होंठों को देखने लगा। उसे देखकर मैं खड़ा नहीं हुआ, उसका स्वागत नहीं किया, उसके साधारण रूप की अवहेलना की, इसके कारण उसकी आंखों में एक चमक—जो उन चुभती हुई तीखी बातों के साथ निकली थी—देखकर मैं उसके रुआब में आ गया। मैं सोचने लगा : इसी तरह क्या स्त्रियों का आदर किया जाता है ? यही क्या मेरी शिक्षा और सभ्यता है ?

ऊषा ने फिर कहा—समझे आप ? क्या आपको श्रीमती ऊषारानी के आज्ञा-पालन में कुछ आपत्ति है ?

'कुछ भी नहीं' अनायास ही मेरे मुंह से निकल गया।

'तब आप पलंग से खड़े हो जाइए। आपने एम० ए० तक शिक्षा पाई, उच्च

संस्कृति के लोगों में रहे, पर आपको इतनी तमीज़ न आई कि स्त्रियों का मान कैसे किया जाता है।'

बाप रे, नई दुलहिन से डांट खाकर, मैं सचमुच लज्जित-सा होकर उठकर खड़ा हो गया; पर फिर भी अपनी अकड़ तो कायम रखी।

मैंने कहा—अब क्या करना होगा ?

उसने एक कुर्सी की ओर संकेत करके कहा—बैठिए, घबराते क्यों हैं ?

यह खूब रही, नववधू को देखकर मैं घबराता हूं। मैंने कुर्सी पर बैठकर कहा—घबराता क्यों हूं ?

वह खिलखिलाकर हंस पड़ी। फिर उसने परीक्षा की, कालेज की, कालेज के जीवन की, भविष्य की, स्वास्थ्य की, न जाने क्या-क्या बातें करनी शुरू कर दीं।

मैं तो जैसे खो गया। उस रात्रि के धीमे प्रकाश में मैंने देखा, मैं किसी अत्यन्त स्नेही मित्र से—जो अत्यन्त बुद्धिमान, कुशाग्रबुद्धि, वाक्पटु और मृदुभाषी है—बातें कर रहा हूं। मेरा विद्रोह तो गायब हो चुका था। थोड़ी ही देर में मैंने डरते-डरते उसका हाथ पकड़कर कहा—ऊषारानी, मुझे क्षमा करो।

वह मुस्कराकर मेरी ओर देखने लगी। मैंने फिर कहा—क्षमा करो देवी !

उसने फिर कहा—किस अपराध की क्षमा ?

मैंने कहा—मेरी आंखें तुम्हें देखते ही जल उठी थीं। मैंने तुम्हारा बाहरी रूप देखना चाहा था। अब से कुछ मिनट पहले तक मैं नहीं जानता था कि स्त्री के भीतर एक और चीज़ रहती है। मैं तो कुछ और ही सोच रहा था।

उसने हंसकर कहा—एक गुड़िया-सी सुन्दर दुलहिन, जिसकी एक नाक, दो कान, एक मुंह, दो आंखें, सफेद चमड़ी, नन्हा-सा शरीर, यही न ?

'लगभग यही, पर थोड़ा और भी कुछ।'

'वह कालेज की संगिनियों का प्रदर्शन ?'

मैं चौंका, मेरे मन की बात यह कैसे जान गई ? वह मुस्कराने लगी।

मैंने कहा—ऊषा, मुझे क्षमा करो। अपने इस दास को क्षमा करो।

उसने कहा—दास को क्षमा कर सकती हूं, पर पति को नहीं। वह धीरे से अपनी कुर्सी से उठी, और एक मुग्धा बालिका की तरह मेरी गोद में आ बैठी। उसके शिथिल बाहु मेरे गले में आ गए, मैं उस जीवन-संगिनी सखी को—जिसने मेरे विद्रोह को विद्रोह से विजय किया था—इस प्रकार विजित देख फूला अंग नहीं

समाया। मैंने उसे हाथों-हाथ उठाकर हृदय से लगा लिया।

कुछ देर तक हम दोनों दुनिया को भूले बैठे रहे। उसने मेरे गले में बांहें डालकर हंसते-हंसते कहा—मैंने तुम्हारे पिछले तीन वर्षों की सौ बातें पूछ डालीं, पर तुमने मेरी एक भी नहीं पूछी। तो क्या मैं यह समझूं कि तुम मेरी तरफ से बेफिक्र हो ?

मैं लज्जित हुआ। मैंने कहा—प्यारी, तुमने तो आते ही युद्ध छेड़ दिया, और इस दास को ऐसा पछाड़ा कि मन सिट्टी-पिट्टी भूल गया।

'अच्छा, लाओ, इस सुहाग-रात के उपलक्ष्य में मेरे लिए क्या लाए हो ?'

मैं बहुत कुछ लाया था—सोने की चेन, घड़ी, एक कीमती बनारसी साड़ी, एक-दो जड़ाऊ गहने, पर वे सब क्या इस महामहिमामयी, गौरवशालिनी पत्नी के योग्य थे ? मैंने लज्जित होकर कहा—तुम्हारे योग्य तो कुछ नहीं है ऊषा, देते लाज लगती है।

'देखूं तो।'

उसने एक-एक वस्तु को देखा, हंसी। उन्हें आदर और उछाह से पहना, फिर प्यारभरी दृष्टि से मेरी ओर देखकर कहा—सुहागरात तो तुम्हारी भी है, कुछ मुझसे उपहार न लोगे ?

'मैंने तुम्हें पा लिया, अब और कुछ न चाहिए।'

'मैंने भी तो तुम्हें पा लिया, फिर भी मुझे उपहार मिले ही। तुम्हारे लिए मैं भी कुछ लाई हूं।'

मैंने सोचा : राजासाहब ने कुछ रुपये दिए होंगे, या कोई चीज़। मैंने कहा—रहने दो, मुझे अब और कुछ न चाहिए।

'हां, वह कुछ उतनी कीमती चीज़ नहीं है, पर वह मैं तुम्हारे लिए लाई हूं।' उसके मानी चेहरे पर फिर वही तेज़ और नेत्रों में चमक उत्पन्न हो गई। मैंने जल्दी से कहा—तो मेरी रानी, दो न, मैं उसे पाकर कृतार्थ हो जाऊं।

उसने धीरे से आंचल से एक कागज़ निकालकर मेरे हाथ में दे दिया। मुझे कौतूहल हुआ। क्या रायसाहब ने मुझे दान-पत्र दिया है ? रोशनी तेज़ करके देखा तो दंग रह गया। यह ऊषा के बी० ए० आनर्स में प्रथम श्रेणी में पास होने का सर्टिफिकेट था।

मैंने सपने में भी नहीं सोचा था कि ऊषा इतनी उच्चशिक्षा प्राप्त है। मैं पागल

की भांति ऊषा की ओर दौड़ा। मैंने कहा—ऊषा, मेरी रानी, मेरी मालकिन, तुमने मेरा जीवन सफल कर दिया!

ऊषा ने धीरे से कहा—इन तीन वर्षों में यही कर सकी।

उसका स्वर कांप रहा था। दूसरे ही क्षण हम दोनों एक थे। हम लोग प्रेमी ही नहीं, गम्भीर दम्पति हैं। हमारे प्राणों से प्राण और शरीर से शरीर घुलकर एक हो गए हैं। हम भीतर तक स्त्रीत्व और पुरुषत्व को देख चुके हैं, बाहर के लिए हम अधेड़ हैं।

विधवाश्रम

इस कहानी में बहुत तीव्र व्यंग्य और असन्तोष की भावना में लेखक ने 'विधवा-श्रमों' के भीतर कुत्सित जीवनों का भण्डाफोड़ किया है—जिनकी स्थापना आर्य-समाज ने उसकी अत्यन्त आवश्यकता समझकर की थी; और वे अन्त में सच्चे अर्थों में कुहनखाने बन गए। लेखक को कुछ दिनों तक बिल्कुल निकट से ऐसी संस्थाओं को देखने का अवसर मिला है इसलिए उनके ये रेखाचित्र काल्पनिक नहीं सच्चे हैं।

एक गन्दी और तंग गली के भीतरी छोर पर, पुराने पक्के दुमंज़िले मकान के भीतरी हिस्से में, एक कोठरीनुमा कमरे में चार मूर्तियां एक टेबिल पर बैठी धीरे-धीरे बातें कर रही थीं। यह मकान वास्तव में विधवाश्रम था और यह मनहूस कमरा था उसका दफ्तर।

टेबिल पर कुछ मैले रजिस्टर, पुरानी पुस्तकें, दो-एक साप्ताहिक पत्र, कुछ कागज़ और कुछ चिट्ठियां अस्त-व्यस्त पड़ी थीं।

चारों व्यक्तियों में जो प्रधान पुरुष थे, उनकी उम्र कोई पचास वर्ष की होगी। उनका रंग कतई तांबे की भांति, चेहरा साहबनुमा सफाचट, बदन गठीला, कद ठिगना, चाल बिल्ली के समान, दृष्टि सांप के समान थी। हृदय कैसा था, इसका भेद वह जाने जो वहां की सैर कर आया हो। आप विशुद्ध खद्दर पहनते थे और किसीको सम्मुख देखते ही मुस्कराकर तिरछी गर्दन करके दोनों हाथ जोड़कर नमस्ते करते थे। आपका असली और पुराना नाम तो था सुखदयाल, परन्तु आप बहुतायत से डाक्टर साहब के नाम से ही पुकारे जाते थे। आपने कब, कहां और कितनी डाक्टरी पढ़ी, यह जानने का अब कोई उपाय नहीं। एक युग हो गया तभी से आपका यह नाम पेटेण्ट हो गया है। सुना है, बहुत दिन हुए—आप किसी गुरुकुल में कम्पाउण्डर थे। वहां के रसोइए, कहार और कोई-कोई ब्रह्मचारी भी आपको डाक्टर ही कहकर पुकारते थे, तभी से आपका यह नाम पड़ गया।

आश्रम में आने पर आपको तीन नाम और पेटेण्ट करने पड़े—पिता जी, अधिष्ठाता जी और संरक्षक जी।

चारों धर्मात्मा बैठे धीरे-धीरे बातचीत कर रहे थे कि भीतर से एक स्त्री ने आकर कहा—पिता जी! लुगाइयां तो दोनों बहुत बढ़िया हैं।

'अच्छा!'

'दोनों की उठती हुई उम्र है, रंग भी खूब निखरा हुआ है, पर दोनों बुरी तरह रो रही हैं।'

'अच्छा, उन्हें कुछ खिला-पिलाकर बातचीत से खुश करो, और अलग-अलग कोठरियों में सुला दो।' इतना कहकर पिता जी, उर्फ डाक्टर जी, उर्फ अधिष्ठाता जी ने बूढ़े बकरे की तरह दांत निकाल दिए और अपनी मनहूस आंखों को क्षणभर के लिए सामने बिखरे हुए कागजों पर से उठाकर बात करने वाली धरमपुत्री (?) की ओर घूर दिया। धरमपुत्री उसी तरह एक कटाक्ष फेंक और दांतों की बहार दिखाती हुई चल दी।

इस धरमपुत्री की उम्र लगभग तीस वर्ष, रंग कोयले के समान, जिस्म लम्बा, बदन छरहरा और चेहरा पानीदार था। दांत चमकीले, आंखें तेज़ और चंचल तथा वाणी साफ और लच्छेदार थी। यही आश्रम की संरक्षिका, इस छोटे-से स्त्री-जेलखाने की सुपरिण्टेण्डेण्ट, और इस पाप-महल की सर्वतन्त्र स्वतन्त्र महारानी थी। नाम था प्रेमदेवी।

उसी दिन, दिन के तीन बजे विधवाश्रम के बाहर बैठकखाने में, चारों मूर्तियां एक टेबिल पर विराजमान थीं। चारों पुरुषों में जो प्रधान पुरुष थे—वे वही हमारे डाक्टर जी थे। वे अपने स्वभाव-सिद्ध ढंग पर गर्दन टेढ़ी किए पेन्सिल से लिखते हुए कुछ भुनभुनाते जाते थे। उनकी बाईं ओर जो व्यक्ति थे, उनका मुंह पिचका हुआ, आंखें गढ़े में घुसी हुईं, लम्बी गर्दन और बड़ी-सी नाक थी, सिर पर मैली खद्दर की टोपी थी। ये बड़े ध्यान से डाक्टर जी की बात में दत्तचित्त हो रहे थे। असल में ये आश्रम के सेक्रेटरी थे और सिर्फ पच्चीस रुपये आनरेरियम पाते थे। उनके बराबर तीसरे व्यक्ति एक नवयुवक थे। इनकी घिनौनी मूंछें बड़े भद्दे ढंग से मुख पर फैल रही थीं। आंखों में शरारत और चेष्टा में बदमाशी साफ झलक रही थी। ये डाक्टर जी के हुक्म के मुताबिक सामने रखे हुए, खुले कागज़ों की फाइल

में कुछ काट-छांट कर रहे थे। इन्हें आश्रम से तीस रुपये महीना वेतन भी मिलता था। बेचारों के ऊपर रात-दिन का, आश्रम और उसकी रहने वाली स्त्रियों की रक्षा का असह्य भार था। विवश उन्हें रात को भी नौकरी से फुर्सत नहीं मिलती थी, हालांकि आप बहुत कुछ शिकायत किया करते थे। पर इस गैर-फुर्सती में आप कितने खुश थे, सो भगवान जानता है। ये एक तौर से इस मण्डली में गुड़ के चिउटे हो रहे थे। इनका नाम था गजपति।

इनकी बगल में लाला जगन्नाथ बैठे थे। इनका स्याहफाम चेचक से गुदा मुंह, भद्दी-सी आंखें, नाटा कद और बात-बात में सनक-सी उठना—इनके व्यक्तित्व को सबसे पृथक् कर रहा था। आपकी उम्र पचास के लगभग थी। आप मुख पर गम्भीरता और भक्ति-भाव लाने के लिए जो चेष्टा प्रायः किया करते थे, उससे ऐसा प्रतीत होता था, मानो आप अभी रो पड़ेंगे। शायद इसी चेष्टा के फलस्वरूप आपका होंठ नीचे को लटक गया था, और चेहरा कुछ लम्बा हो गया था।

लेख को ठीक करा डाक्टर जी बोले—बस, अब हिसाब में जो थोड़ी-सी भूल है, उसे तुम ठीक कर करा लेना। परन्तु सुनो, कल ही तो अन्तरंग मीटिंग है, सब कागजात आज ही रात को तैयार और साफ हो जाने चाहिएँ। पीछे का बखेड़ा रहना ठीक नहीं।

'बहुत अच्छा! परन्तु ये दो सौ रुपये, जो कुन्ती की शादी में वसूल हुए हैं, किस मद में डाले जाएं?'

'किसीमें भी नहीं, अभी उनकी बात छोड़ो, उनका हिसाब मैं पीछे दूंगा। तुम्हें अपना हक तो मिल गया न?'

'कहां, सिर्फ पच्चीस मिले हैं।'

'तब यह लो पांच और, यह हिसाब तो साफ हुआ। आप लोगों को भी तो इस विवाह का हिस्सा मिल गया है?'

दोनों अन्य पुरुषों ने भी स्वीकृति दे दी। इसपर डाक्टर जी कुछ कहना चाहते थे कि एक वृद्धा स्त्री ने द्वार में घुसकर मूर्ति-चतुष्टय को धरती में माथा टेककर प्रणाम किया।

गजपति ने कहा—माई, क्या है?

'महाशय जी! मेरी यह फुफेरी बहिन की लड़की है, बेचारी बाल विधवा है,

न कोई आगे न पीछे। मैं अन्धी-धुन्धी बुढ़िया हूं, इसकी कहां तक देख-भाल कर सकती हूं। घर में इसका मन नहीं लगता। सदैव द्वार पर खड़ी रहती है। कहती हूं—सधवाओं जैसा बनाव-सिंगार क्या इसको रुचता है? पर यह एक नहीं सुनती। आपकी मैंने तारीफ सुनी है, खराब औरतों को आप सुधारते हैं, उनकी रक्षा करते और उन्हें सन्मार्ग पर लाते हैं। महाराज आप कृपाकर इस लड़की का उपाय कीजिए।'

इतना कहकर उसने अपने पीछे सिकुड़ी खड़ी बालिका को धकेलकर आगे किया और माथा टेकने का आदेश दिया। बालिका आगे दो कदम बढ़कर ठिठक गई। बोली नहीं, न उसने माथा ही टेका। केवल एक बार भयभीत नेत्रों से मंडली को देखा। एक क्षीण हास्य-रेखा उसके मुख पर आई और वह चुपचाप खड़ी धरती को निहारने लगी।

तीनों आदमी उस शर्माई हुई बालिका को एकटक देखने लगे। मण्डली विचलित-सी हो गई।

गजपति ने कहा—बुड्ढी मां, तुमने अच्छा किया इसे यहां ले आई, यहां इसकी हमजोलियां बहुत हैं। अच्छा, इसे जरा आने-जाने को कहो। क्यों जी, तुम्हारा नाम क्या है?—इतना कहकर गजपति ने उसके कन्धे पर हाथ धर दिया।

डाक्टर जी ने कहा—ठहरो, उसे सामने वाली कोठरी में बैठने दो, मैं इससे अभी बात करूंगा।—बालिका तत्काल कोठरी की ओर चली गई। वृद्धा बैठी रही, लाला जगन्नाथ उसे उपदेश देने लगे।

बालिका वास्तव में यहां की घूराघूरी देखकर घबरा उठी थी। वहां से वह जान बचाकर कोठरी में भाग गई। और चाहे कोई न जाने, परन्तु स्त्रियां बदमाशों की पापदृष्टि को खूब पहचानती हैं।

इसके बाद डाक्टर जी उठकर कोठरी में घुस गए, दरवाज़ा उढ़का दिया। यह देखते ही गरीब बालिका सूख गई। वह वहां से उठकर बाहर को जाने की चेष्टा करने लगी। डाक्टर जी ने हाथ पकड़कर कहा—बेटी! डर क्या है, घबराने की बात नहीं।

इतना कह वे उसे कनखियों से देखने लगे। बालिका सिकुड़कर बैठ गई और उनकी बात की प्रतीक्षा करने लगी।

डाक्टर जी ने कहा—तुम्हारा नाम क्या है?

'चन्दन !'

'बहुत सुन्दर नाम है। अच्छा यह तो बताओ—तुम्हारे मन में कभी किसी तरह की उमंग तो नहीं उठती ?'

बालिका समझी नहीं। वह बड़ी-बड़ी आंखें उठाकर डाक्टर जी की ओर देखने लगी।

'आह ! समझी नहीं, (कन्धे पर हाथ धरकर और पास खसककर) अभी नादान बच्ची हो। मन के भाव समझती नहीं। खैर देखो, तुम चाहो तो यहां आश्रम में रहो, चाहे कभी-कभी आया करो। कुछ रुपये-पैसे की जरूरत हो तो मुझसे कहो। देखो, भेद-भाव मत रखना। अब मैं तुम्हारा रक्षक हुआ। क्यों, हुआ न ? बोलो !'

बालिका बिना हाथ-पैर हिलाए चुपचाप बैठी रही। उसके बदन पर पसीना आ रहा था।

डाक्टर जी ने उसकी कमर में हाथ डालकर अपनी ओर खींचते हुए कहा—जवाब तो दो !

बालिका ने तिनककर कहा—आह ! यह क्या करते हैं, अपना हाथ खींच लीजिए।

'क्रोध मत करो। जब मैं रक्षक हुआ तो जो पूछूंगा बताना पड़ेगा, जो कहूंगा करना पड़ेगा, किसी बात में उज्र न करना होगा। देखो, तुम्हारी यह साड़ी कितनी पुरानी और गन्दी हो गई है। ये रुपये ले जाओ, नई ले लेना।'

इतना कहकर डाक्टर जी ने पांच रुपये का एक नोट उसके हाथ पर धर दिया। बालिका नोट देखकर घबरा उठी, ले या न ले—न समझ सकी। उसके मन में नई साड़ी पहनने की लालसा जागरित हो उठी। वह उत्सुक होकर डाक्टर जी के सफाचट मुख को देखने लगी।

डाक्टर जी ने कहा—नोट को सम्हालकर रख लो। जेब तो है न ? चोली में रख लो, गिर न जाए। ठहरो, मैं रख देता हूं।

बालिका न रोष, न निषेध कर सकी। डाक्टर जी ने उसकी चोली में हाथ घुसेड़ दिया। एक पैशाचिक आवेश से डाक्टर जी का लाल चेहरा और भी लाल हो उठा।

बालिका घबराकर उठ बैठी, और उसने धड़ाम से किवाड़ खोल दिए। डाक्टर जी हड़बड़ाकर उठ बैठे। उन्होंने धीरे से कहा—अच्छा, बाकी बातें फिर

होंगी, परसों इसी समय आना। पर देखना, रुपयों की बात किसीसे न कहना; समझीं ?

'पर जब खर्च करूंगी, तब तो भेद खुलेगा ही ?'

'कह देना किसी सहेली ने दिया था, या पड़ा पा गई थी।"

'खैर, आप बेफिक्र रहें, मैं सब ठीक कर लूंगी।'

अब डाक्टर जी दुलार से बालिका के गाल पर चुटकी लेकर बाहर चले आए। हंसकर बुढ़िया से कहा—लड़की बड़ी सीधी है, दो-चार वार आने से समझ जाएगी। न होगा तो यहां कुछ दिन रख लिया जाएगा।

बुढ़िया ने कहा—भगवान् आपका भला करे। आपने बड़ा भारी धर्म का बीड़ा सिर पर उठाया है।—इतना कह और धरती में माथा टेक बुढ़िया रवाना हुई।

डाक्टर साहब आश्रम के भीतरी कक्ष में एक शतरंजी पर बैठे थे। सामने एक नवयुवती सिकुड़ी हुई बैठी थी। डाक्टर साहब मन लगाकर उसे सन्मार्ग पर लाने की चेष्टा कर रहे थे। उन्होंने कहा—देखो बेटी, मैं तुम्हारा धर्म का पिता हूं और रक्षक हूं। समझती हो न ?

'जी हां, आपने पत्र में भी यही लिखा था, इसीसे आपपर विश्वास करके चली आई हूं। आपकी धर्म की पुत्री हूं। आह, मैं बड़े दुष्टों के फन्दे में पड़ गई थी, कहने को समाजी, पर परले दर्जे के लुच्चे, औरतों का व्यापार करने वाले।'

'अच्छा, तुम कहां जा फंसी थीं ? खैर, जाने दो इन बातों को। तो देखो, जब मैं तुम्हारा रक्षक और धर्मपिता हुआ, तब तुम्हें मेरे कहने के अनुसार काम भी करना होगा। तुम जानती हो, मैं सदैव तुम्हारी भलाई की बात ही सोचूंगा।'

'मुझे आपका भरोसा है।'

'अच्छी बात है, तुम्हें तीन दिन यहां आए हुए। कहो, कोई कष्ट तो नहीं है ?'

'जी नहीं।'

'खाने-पीने की दिक्कत ?'

'जी, कुछ नहीं।'

'कपड़े-लत्ते तुम्हारे पास काफी हैं न ?'

'जी हां ?'

'खैर, मैं दो जोड़ा साड़ी तुम्हें आज ही और भिजवाए देता हूं। तुम कैसी

साड़ी पसन्द करती हो, रेशमी कोर की न ?'

'जी, जैसी मिल जाए।'

'जैसी चाहोगी वैसी ही मिल जाएगी ! खैर, तुम्हें कुछ जेब-खर्च भी चाहिए ?'

'जी नहीं, मेरे पास कुछ रुपये हैं।'

'अच्छी बात है। हां, एक बात—यहां जेवर पहनने का नियम नहीं है ! तुम्हारे गहने सब कोष में जमा होंगे।'

'कोष क्या है ?'

'आश्रम का कोष—यानी खज़ाना। जब तुम्हारा विवाह होगा, तब वापस दे दिए जाएंगे।'

'मगर मैं विवाह तो कराने की इच्छा ही नहीं करती।'

'यह कैसी बात है ? फिर यहां आई क्यों हो ?'

'मैं तो विद्या पढ़कर केवल अपना धर्म सुधारना चाहती हूं।'

'परन्तु जवान लड़कियों का धर्म सिर्फ विद्या से ही नहीं बचता।'

'तब ?'

'उन्हें ब्याह करना चाहिए।'

'ब्याह तो एक बार हो चुका, वही तकदीर में होता तो तकदीर क्यों फूटती ?'

'यह संसार के कारखाने हैं, सब दिन एक-से नहीं रहते। कहा है, बीती ताहि बिसार दे आगे की सुधि लेहु।'

'मैं तो विद्या पढ़ने ही आई हूं।'

'विवाह कराके विद्या भी पढ़ना।'

'विवाह कराना मैं नहीं चाहती।'

'तुम्हें अवश्य विवाह कराना चाहिए।'

'मैं धर्म-काज में जीवन व्यतीत करना चाहती हूं !'

'तुम्हारा विवाह किसी धर्मोपदेशक से करा दिया जाएगा।'

'पर यह मुझे पसन्द नहीं, मुझे विवाह से घृणा है।'

'यह तुम्हारी नादानी है।'

'आप मेरे पढ़ने-लिखने का बन्दोबस्त कर दें।'

'परन्तु यह विधवाश्रम है, कोई कन्या पाठशाला नहीं।'

'आपने लिखा था कि पढ़ने का प्रबन्ध हो जाएगा।'

'पर विवाह के बाद।'

'विवाह के बाद आप क्या यहां रख सकेंगे ?'

'यहां रखने ही से क्या; जो विवाह करेगा, वह पढ़ाएगा।'

'और यदि मैं विवाह न करूं ?'

'अवश्य करना पड़ेगा।'

'मैं विवाह नहीं करूंगी।'

'कह चुका, अवश्य करना पड़ेगा।'

'तब मुझे चली जाने दीजिए, मैं यहां न रहूंगी।'

'यह भी असम्भव है।'

'असम्भव क्यों ?'

'नियम है।'

'यह तो धींगामुश्ती है।'

'तुम चाहे जो कुछ समझो।'

'मैं यहां एक मिनट भी नहीं रह सकती।'

'तुम यहां से जा नहीं सकतीं।'

'देखूं कौन रोकता है।'

डाक्टर ने संकेत किया। गजपति और जगन्नाथ अधिष्ठात्री देवी के साथ आ हाजिर हुए। डाक्टर ने कहा—इस बेवकूफ को समझाकर राज़ी करो।—और वे चले गए।

युवती ज़बर्दस्ती बाहर जाने लगी।

गजपति ने कहा—ज़ोर क्यों करती हो, ज़ोर हममें भी है। बात समझो-समझाओ, ज़ोर से कुछ नहीं बनेगा।

'मैं कुछ नहीं सुनती, मैं अभी जाऊंगी।'

'जा नहीं सकतीं ?'

'क्या मैं कैदी हूं ?'

'जो कुछ समझो।'

'तुम सब लोग एक ही-से पिशाच हो, धर्म की टट्टी में शिकार खेलते हो।'

'जो जी में आए सो बको।'

'क्या तुम ज़बर्दस्ती शादी करना चाहते हो ?'

'और आश्रम हमने किसलिए खोला है ?'

'मैंने समझा था कि विधवाओं को शिक्षा मिलती है। रोटी-कपड़ा मिलता है, वे स्वावलम्बिनी बनाई जाती हैं।'

'और तुम्हें यह नहीं मालूम कि उनकी शादियां भी होती हैं ?'

'मैं समझती थी, जो शादी कराना चाहे उसीकी शादी होती होगी।'

'बस यही गलती है। इस तरह यहां पंछियों का बसेरा बसाया जाए तो आश्रम का दिवाला दो दिन में निकल जाए। यहां तो नया माल आया—इधर से उधर चालान किया, आश्रम का भी खर्च निकला और तुम लोगों का भी भला हुआ।'

'मैं अपना भला कर लूंगी, तुम अपना खर्च ले लो और मुझे जाने दो!'

'खर्च कहां से दोगी ?'

'और कुछ मेरे पास नहीं, जो दो-चार गहने हैं उन्हें ले लो।'

'लाओ, ये तो कोष में जमा होंगे।'

युवती ने गहने उतार दिए। उन्हें गजपति ने हाथ में लेकर कहा—'हमने तार देकर तीन आदमी पंजाब से तुम्हारे लिए बुलाए हैं। वे आज रात को आ जाएंगे। एक तो आ भी गया है, अब यह तुम्हारी पसन्द पर है, जिसे चाहो पसन्द करो।'

इतना कह और बिना उत्तर की प्रतीक्षा किए, उसने उसे पीछे को ढकेल दिया। जब तक वह सम्हले, गजपति ने बाहर निकलकर सांकल चढ़ा दी और कहा—भागने की चेष्टा के भय से ऐसा किया गया है, बुरा न मानना। अभी विवाह को ना-नू करती हो, जब सुन्दर जवान देखोगी तो खुश हो जाओगी। दिनभर पड़ी-पड़ी सोच लो।

इतना कहकर तीनों चल दिए। युवती भौंचक-सी खड़ी रह गई। फिर वह ज़ोर-ज़ोर से किवाड़ पर हाथ मारने और चिल्ला-चिल्लाकर रोने लगी।

'देखो सावित्री, आज तुम्हारी शादी फिर निश्चित हो गई है। और इस बार भी तुम्हें वही चालाकी करनी होगी। तुम कुछ नई तो हो नहीं, सब बातें जानती हो।'

'अब इस बार मुझे कहां जाना होगा ?'

'दूर नहीं, करनाल के पास एक कस्बे में।'

'हे ईश्वर, वहां मेरा दिल कैसे लगेगा ?'

'दिल की एक ही कही, दस-पन्द्रह दिन नहीं काट सकती हो ?'

'माल-मलीदे तो खूब मिलेंगे ?'

'खूब !'

'और वह उल्लू ?'

'वह एक बूढ़ा खूसट है, खूब बनाना।'

'कुछ झगड़ा-बखेड़ा तो खड़ा न होगा ?'

'झगड़ा क्या होगा !'

'खैर, मुझे क्या मिलेगा ?'

'सैर-सपाटा, माल-टाल और बढ़िया साड़ी, जूता मोजा और तीन-चार अदद नये गहने।'

'और रुपये ? रुपये इससे न जमा कराए जाएंगे ?'

'पांच सौ तो बंधी बात है, उसका क्या कहना।'

'पर इस बार सब रुपये मैं लूंगी।'

'यह कैसे हो सकता है, पहले की भांति अद्धम-अद्धा पर सौदा होगा।'

'अच्छी बात है, मुझे मंजूर है।'

'तब नहा-धोकर सिंगार-पटार कर लो। उल्लू को सामान का पर्चा उतरवा दिया है, लेकर आता ही होगा। साड़ी तुम स्वयं पसन्द कर लेना।'

उपर्युक्त बातचीत विधवाश्रम की अधिष्ठात्री देवी और एक युवती में हो रही थी। बातचीत करके अधिष्ठात्री जी चली गई और युवती कुछ सोचकर हंस पड़ी। उसने उंगली पर गिनकर आप ही कहा—एक-दो-तीन ! यह तीसरा उल्लू है। इसमें भी खूब मज़ा है।—थोड़ी देर तक वह अपने भूतकाल को सोचने लगी। वह वर्तमान जीवन से उसका मुकाबला करने लगी—क्या यह अच्छी बात है ? पति के घर में कैसी सुखी थी। जरा-सी बात पर लड़कर निकल भागी, और ये दुष्ट मुझे फांस लाए। अब यहां अजीब शादियां होती हैं, रुपये गांठ में करो, दुलहिन बनो, ब्याह करो और फिर चकमा देकर भाग आओ। फिर ब्याह कर लो। पकड़ी जाओ, तो कह दो कि जुल्म करता है, मारता है। जय गंगाजी की !

युवती फिर ज़रा हंस दी। फिर कुछ सोचने लगी। थोड़ी देर में उसने एक महरी को पुकारकर कहा—ज़रा बलवन्त को तो बुला दे।

बलवन्त एक तीस वर्ष का हट्टा-कट्टा, किन्तु मैला-कुचैला आदमी था। उसकी

आंखें छोटी, नाक पतली और लम्बी, माथा तंग और रंग पीला था। उसके दांत बड़े गन्दे थे, और मूंछें बड़ी बेतरतीब थीं। वह ठिगना, मोटा और बेहूदा-सा आदमी था। उसने आकर ज़रा हंसकर कहा—क्या हुक्म है ?

'वही मामला है, बस समझ लो।'

'सब समझ चुका हूं, सुन लिया है।'

'बताओ फिर क्या करना होगा ?'

'करना-धरना क्या है, ज़रा शर्मीली नवेली बनकर चली जाओ। दस-पांच दिन खूब शर्मीली बनी रहना, बूढ़े को अच्छी तरह सुलगाना। पांच-सात गहने वसूल करना, उसे रिझाना। मौका पाकर चिट्ठी में भागने की तारीख लिखना; समय भी लिख देना। समय वही सन्ध्या का ठीक है, मैं गली में मिल जाऊंगा, सवारी तैयार रहेगी। हम लोग अगले स्टेशन से सवार होंगे। पांच-सात दिन पहले की भांति सैर करेंगे, फिर यहां आ जाएंगे।' बलवन्त ने युवती को घूरकर हंस दिया। युवती ने नटखटपने से हंसकर कहा—बस, इस बार तुम्हारे चकमे में मैं नहीं आने की, सैर-सपाटा नहीं होगा, मैं सीधी यहीं आऊंगी।'

'कैसी बेवकूफ हो, जब वह यहां ढूंढ़ने आएगा, तब क्या होगा ?'

'मैं क्या जानूं ?'

'बस, तो जब ऐसी अनजान हो तो जैसा हमारा बन्दोबस्त है, वही करो। तुम्हारे गायब होते ही वह सीधा यहीं दौड़ेगा। और आश्रम का कोना-कोना छानकर चला जाएगा। बस आश्रम की ज़िम्मेदारी खतम। फिर दूसरा उल्लू देखेंगे।'

'और इतने दिन तुम अपनी मनमानी करोगे।'

'देखो प्यारी, मेरे विषय में ऐसी बात मत कहो। दो-दो बार तुम्हारे लिए मैं जान हथेली पर धर चुका हूं। तुम्हें मैं दिल से चाहता हूं। अन्त में तो और दो-चार खेल-खेलकर तुम मेरी होगी।'

'चलो हटो, मैं तुम्हारा मतलब खूब जानती हूं। तुमने जानकी से भी ऐसे ही कौल-करार किए थे। आखिर जब झगड़ा पड़ा तो साफ बच गए, बेचारी को जेल जाना पड़ा।

'नहीं प्यारी, ऐसा न कहो; कसूर उसीका था।'

'खैर, जाने दो। तो अब क्या बात पक्की रही ?'

'वही, जो मैं कह चुका हूं।'

'मैं तुम्हें खत लिखूंगी ?'

'हां, उसमें इशारा भरकर देना कि कौन तारीख।'

'अच्छी बात है।'

'बाकी सब काम मैं स्वयं कर लूंगा।'

'बहुत अच्छा।'

'पर, आज....'

'चलो हटो, आज मेरी शादी है, ऐसी बातें न करो।'

'अच्छा देखा जाएगा।'—यह कहकर दुष्टतापूर्ण सङ्केत करके वह चला गया।

'महाशय जी, पांच सौ रुपये तो मैं जमा कर चुका, अब ये दो सौ किसलिए मांगे जाते हैं ?'

'महाशय जी, वे पांच सौ रुपये तो स्त्री-धन हैं। यदि तुम उसे त्याग दो, उसपर जुल्म करो, उसे दगा दो तो वह क्या खाएगी, वह तो कहीं की न रही न; इसका तुम्हें अभी इकरारनामा लिखना पड़ेगा।'

'खैर, वह मैं लिख दूंगा, कहीं घर-गृहस्थी में ऐसा भी होता है ? महाशय जी, मैं गृहस्थ आदमी हूं, लुच्चा-लुङ्गाड़ा नहीं।'

'तभी ऐसी देवी आपको दी गई है, दुनिया में चिराग जलाकर भी देखोगे तो ऐसी लड़की न मिलेगी।'

'यह आपकी मेहरबानी है।'

'तब लीजिए, यह रहा इकरारनामा; दस्तखत कीजिए। आओ जी तुम बलवन्त, गवाही कर दो। एक गवाही और चाहिए। अधिष्ठात्री देवी जी को बुला लो, वे कर देंगी। हां, वे दो सौ ?'

'वे दो सौ किस मद में जाएंगे ?'

'आश्रम की मद में। महाशय जी, आश्रम का खरचा कहां से चलता है, यह तो सोचिए। लड़कियों को महीनों रखकर उनपर कितना खर्च किया जाता है! उनकी शिक्षा, परवरिश, उनके कुसंस्कारों को दूर करके उनके विचारों को शुद्ध करना, उन्हें आदर्श गृहिणी बनाना—यह सब मामूली बात थोड़े ही है। ये दो सौ रुपये आश्रम को दान समझिए, इनकी आपको रसीद मिलेगी। खातिरजमा रखिए।'

'मगर मैं आश्रम को तो पचास रुपये प्रथम ही दे चुका हूं।'

'वह तो दाखिला फीस थी महाशय जी ! यह तो आश्रम का नियम है कि जब कोई विवाहार्थी आए तो फीस दाखिल लेकर तब विवाह की चर्चा चलाई जाए।'

'मगर महाशय जी, ये दो सौ रुपये तो भार मालूम देते हैं।'

'यह आप क्या कहते हैं ? संस्था को देने में आप इधर-उधर करते हैं। सोचिए, यदि संस्था न होती तो कितनी देवियां धर्मभ्रष्ट होतीं, और आपकी सेवाएं भी कैसे हो सकती थीं।'

अधिष्ठाता जी, उर्फ पिता जी और वर में उपर्युक्त घिस-फिस बड़ी देर तक होती रही और तब उन्होंने दो सौ के नोट गिन दिए। इसके बाद ही, स्वस्ति-वाचन, शान्ति-प्रकरण का ज़ोर-शोर से पाठ हुआ। अग्नि प्रज्वलित हुई, दुलहिन आई और पवित्र वैदिक रीति से विवाह-कार्य सम्पन्न हुआ। विवाह होने पर अधिष्ठाताजी बोले—पन्द्रह रुपये और दीजिए !

'यह किसलिए ?'

'पांच पण्डित जी की विवाह-दक्षिणा; पांच की साड़ी अधिष्ठात्री देवी के लिए और पांच की मिठाई सब लड़कियों के वास्ते।'

कुछ अनमने होकर पन्द्रह भी दे दिए। इसके बाद उन्होंने घड़ी देखकर कहा—अब आप विदा की तैयारी करा दीजिएगा। गाड़ी जाने में अधिक देर नहीं है।

'पर अभी तो प्रीति-भोज होगा।'

'बस प्रीति-भोज रहने दीजिए।'

'ऐसी जल्दी नहीं। सब तैयार है। भला बिना भोजन विवाह कैसा ?'

प्रीति-भोज का आयोजन हुआ। पुरोहित, अधिष्ठाता और अल्लम-गल्लम, जो वहां उपस्थित थे, सभी बैठे। भोज समाप्त होते ही हलवाई ने बिल अधिष्ठाता जी को दे दिया। उन्होंने एक नजर डालकर वर महाशय की तरफ संकेत करके कहा—आपको दो।

वर महाशय ने घबराकर कहा—अब यह क्या है ?

'अभी प्रीति-भोज हुआ न, उसीका बिल है।'

'यह भी मुझे चुकाना पड़ेगा ?'

'वाह महाशय जी, यह खूब कही, विवाह आपका होगा तो क्या बिल और कोई चुकाएगा ?'

'इसका पेमेण्ट तो आश्रम को करना चाहिए।'

'वाह, आश्रम तो आप ही की संस्था है, वह यह भार कैसे उठा सकती है। सोचिए तो।'

वर महाशय ने ज़रा गुनगुने होकर बिल चुका दिया और कहा—अब आप ज़रा जल्दी कीजिए, गाड़ी के जाने में वक्त बिल्कुल नहीं रहा है।

'बस, अब विलम्ब कुछ भी नहीं है। विवाह आपका शुभ हो।'

इसके थोड़ी देर बाद ही वर-वधू विदा हुए। वधू ने हंस-हंसकर सबसे हाथ मिलाए। किसी-किसीसे घुसफुस बातें कीं और पतिदेव के साथ खट से कूदकर तांगे पर चढ़ गई।

यह असल वैदिक विवाह का प्रताप था, कि वधू रोई नहीं, चिल्लाई नहीं, घूंघट किया नहीं, शर्माई नहीं। बोलो वैदिक धर्म की जय!!

।

'कहिए, आपका क्या काम है?'

'मुझे आपसे एकान्त में कुछ कहना है।'

'यहां एकान्त ही है, निःसंकोच कहिए। इन लोगों से कुछ छिपा नहीं।'

'आपसे मैं एक सहायता लेना चाहता हूं।'

'कहिए भी, क्या सहायता?'

एक लड़की का उद्धार करना है।'

'कहां से!'

'वेश्या के घर से।'

'वह लड़की कौन है?'

'उसी वेश्या की कन्या।'

'आप क्यों उद्धार किया चाहते हैं?'

'वह वहां रहना और कुकर्म कराना नहीं चाहती, उसकी मां उसे मजबूर कर रही है, पर वह पसन्द नहीं करती।'

'वह क्या चाहती है?'

'किसी भले आदमी से ब्याह करना चाहती है।'

'वह भले आदमी शायद आप हैं?'

'जी नहीं, मैं तो ऐसा कर ही नहीं सकता। आप जानते हैं, जात-बिरादरी का मामला है।'

'तब फिर आपको उसकी इतनी चिन्ता क्यों है ? लाखों वेश्याओं की लड़कियां यही करती हैं।'

'मैं सिर्फ इसका उद्धार चाहता हूं, और आपकी सेवा से भी बाहर नहीं।'

'आप किस तरह काम करना चाहते हैं—खुलासा कहिए।'

'सुनिए, मैं किसी तरह उसे वहां से निकाल लाऊंगा, बाज़ार में सौदा खरीदने के बहाने। उसकी मां मुझपर विश्वास करती है, भेज देगी। फिर मैं उसे डिप्टी कमिश्नर के पास भेज दूंगा। वहां वह कह देगी कि मेरी मां मुझसे बुरा काम कराना चाहती है; उससे मुझे बचाया जाए। जब उससे पूछा जाएगा कि तू कहां जाना चाहती है, तब वह आश्रम में आने को कह देगी। उसे आप यहां रख लें, और हम जिस आदमी से कहें उसकी शादी उसी रात को कर दें। ये दो सौ रुपये आपकी नज़र हैं।'

'और वह आदमी कौन है ?'

'मेरा नौकर है।'

'समझ गया, इस ढंग से आप उस लड़की पर अधिकार करना चाहते हैं। मगर वह नौकर शादी होने पर आपके हत्थे क्यों लड़की को चढ़ने देगा ?'

'वह आठ रुपये माहवार पाता है। उससे हमने ज़बानी तय कर लिया है कि लड़की पर उसे कोई दखल नहीं होगा। इकरारनामा भी लिखा लिया है कि इसकी मर्ज़ी के माफिक अगर मैं इसका भरण-पोषण न कर सकूं, तो लड़की को स्वतन्त्र रहने का अधिकार है। वह इकरारनामा मेरे पास है।'

'बड़े उस्ताद हो। दो सौ रुपये लाए हो ?'

'ये हाज़िर हैं।'

'जाओ अपना काम करो, लड़की को यहां भेज दो। मगर देखो, वह इस शादी में ना-नू तो न करेगी ?'

'ज़रा भी नहीं।'

'तब ठीक।'

विधवाश्रम का आज वार्षिकोत्सव था। सभास्थान खूब सजाया गया था। लाल-पीले कपड़ों पर वेद-मन्त्र लिखकर लटका दिए गए थे। धर्म और सत्यकर्म का प्रवाह बह रहा था। 'नमस्ते' की गूंज आसमान को चीर रही थी। बहुत-सी स्त्रियां

और पुरुष एकत्रित थे। सभास्थल खचाखच भर रहा था। थोड़ी देर बैण्ड बज चुकने के बाद सभा की कार्यवाही प्रारम्भ हुई। भीतरी ओर का एक छोटा-सा दरवाजा खुला और उसमें से पांच-छह आदमी निकले। ये सब अन्तरंग सभा के सदस्य थे। इन्हीमें हमारे पूर्वपरिचित डाक्टर साहब तथा अन्य सत्पुरुष भी थे।

उनके आते ही सभा में तालियों की गड़गड़ाहट से सभा-भवन गूंज उठा। इसके बाद ही लाला जगन्नाथ जी ने चिल्लाकर कहा—मैं प्रस्ताव करता हूं कि आज की सभा में हमारे परम श्रद्धास्पद, आदरणीय श्री डाक्टर साहब सभापति का स्थान ग्रहण करें।—गजपति ने प्रस्ताव का अनुमोदन किया। अब डाक्टर साहब भांति-भांति के मुंह बनाए, उसी प्रकार टेढ़ी गर्दन किए, विविध रीति से शिष्टाचार प्रदर्शन करते हुए अति दीन-भाव से सभापति के आसन पर जा बैठे। मानो उन्हें फांसी लगाई जा रही थी। उनके आसीन होते ही फिर तालियां बजीं। अब एक महाशय जी बड़ा-सा साफा सिर पर लपेटे उठ खड़े हुए और बड़े गर्वीले ढंग से खड़े होकर एक भजन गाना प्रारम्भ किया। भजन क्या था, गद्य-पद्य का सम्मिश्रण था। न सुर, न ताल। वे खूब चीख-चीखकर गाने लगे और साथ ही हारमोनियम भी बजाने लगे। हारमोनियम खूब चीख रहा था। अन्ततः लोगों के कानों के पर्दे फटने लगे और वह गायन समाप्त हुआ। इसके बाद डाक्टर साहब ने खड़े होकर वक्तृता देनी प्रारम्भ की :

'भाइयो और देवियो ! आज आपके आश्रम का द्वितीय वार्षिक उत्सव है। इस अवसर पर इतने आदमियों को एकत्रित देखकर मैं फूला नहीं समाता हूं। अभी मन्त्रीजी आपको रिपोर्ट सुनाएंगे। उससे आपको मालूम होगा कि अधोगति के मार्ग में पतित भ्रष्टा स्त्रियों को पतन के महापङ्क से उद्धार करने में आश्रम ने समाज की कितनी सेवा की है। ईश्वर की कृपा और आपलोगों की सहानुभूति से संस्था खूब सफल हो रही है (हर्षध्वनि)। परन्तु अभी लाखों-करोड़ों अनाथ विधवाएं हैं, जिनका उद्धार होना बाकी है (सुनो-सुनो)। काम बड़ा कठिन है, और उसे यह आश्रम ही पूरा कर सकता। सज्जनो, आर्यपुरुषो, क्या आप इस आश्रम से सहानुभूति नहीं रखते हैं ? (हर्षध्वनि) क्या आप इसकी हस्ती को कायम रखना चाहते हैं ? (अवश्य-अवश्य) तब मैं आशा करता हूं कि आप अपनी जेबों में जो हाथ आश्रम के नाम पर डालेंगे, वह खाली बाहर न आएगा। आपको यह स्मरण रखना चाहिए कि जो-जो महाशय चन्दा देंगे, उनका नाम-ठिकाना सब

समाचारपत्रों में छपा दिया जाएगा।' इसके बाद आपने लम्बे भाषण में यह साबित कर दिया कि यह संस्था कितनी पवित्र है और आर्यसमाज के सिद्धान्तों की रक्षा के लिए ऐसी संस्थाओं की बड़ी भारी आवश्यकता है।

आपके बैठते ही प्रबल ताली की घोषणा से सभामण्डप गूंज उठा। इसके बाद मन्त्री महोदय वार्षिक रिपोर्ट पढ़ने के लिए उठ खड़े हुए :

रिपोर्ट पढ़ने पर पता लगा कि गत वर्ष की अपेक्षा इस वर्ष १५००) की अधिक आय हुई है (हर्षध्वनि)। इस वर्ष कुल ५५७५॥-)॥ आमदनी हुई है। और ५५७५।)॥ खर्च हुए हैं। रोकड़ ।-) बाकी बचा है। इनमें कर्मचारियों का वेतन-३२००) और मकान-भाड़ा और स्टेशनरी खाते १३००), मुकदमे खाते ८००), छपाई खाते २००) रुपये खर्च हुए हैं। ७५।)॥ फुटकर खर्च खाते में आए हैं। यद्यपि ।-) की रकम जो हाथ में बची है, बहुत कम है, फिर भी वह बचत तो है। ईश्वर की कृपा से हमारी संस्था को कर्ज़ नहीं लेना पड़ा है।

रिपोर्ट खतम होते ही फिर तालियों की ध्वनि से सभा-भवन गूंज उठा। इस बीच में एक आदमी ने खड़े होकर कहा—मुकदमे में ८००) की बड़ी रकम खर्च होने का कारण क्या है? सभापति ने कहा, 'कृपा कर बैठ जाइए, सभा के काम में गड़बड़ी न कीजिए।' पर उसने एक न सुनी। कड़ककर कहा, 'महाशय, मैंने गत वर्ष ५००) दान दिया था, और बीच-बीच में भी मैं संस्था को सहायता देता रहा हूं। सो क्या मुकदमेबाज़ी में खर्च करने के लिए? मैं यह जानना चाहता हूं कि जनता के धन का दुरुपयोग तो नहीं किया जा रहा है।'

मन्त्रीजी ने कहा—हमारे पूज्य प्रधान जी—डाक्टर साहब पर एक मामूली औरत के भगाने का मुकदमा खड़ा किया गया। इसके सिवा हमारे विश्वासी कर्म-चारी गजपति के विरुद्ध भी दो ऐसे ही झूठे मुकदमे खड़े कर दिए गए थे। यह बात सभी जानते हैं कि उक्त दोनों सज्जन संस्था के कितने सहायक हैं। इसलिए विवश हो, हमें पैरवी करनी पड़ी और यह रुपया खर्च करना पड़ा।

इतने में एक दूसरे आदमी ने खड़े होकर कहा—और वेतन खाते जो आपने तीन हज़ार से अधिक रकम डाली है, इसका ब्यौरा क्या है? जितने उच्च अधि-कारी हैं, वे तो सभी अवैतनिक हैं, फिर इतनी रकम क्या की जाती है?

यह सुनते ही सभापति ने खड़े होकर कहा—महाशय, यह तो सभा के काम में पूरा विघ्न हो रहा है। कृपाकर आप बैठ जाइए।

चारों तरफ शोर मच गया—बैठा दो, निकाल दो, चुप कर दो।—उक्त महाशय गुस्से से आग-बबूला होकर उठकर बाहर चले गए।

सेक्रेटरी महाशय फिर रिपोर्ट पढ़ने लगे। इसपर एक और आदमी उठकर कुछ कहने लगा।

सभापति ने कड़ककर कहा—महाशय! इस भांति बारम्बार बेहूदे ढंग से सभा के काम में विघ्न करना अनुचित है। मैं उपस्थित भाइयों से पूछता हूं : क्या आप इस बात को पसन्द करते हैं?

चारों तरफ 'नहीं-नहीं' का शोर मच गया और वह आदमी भी उठ गया।

इसके बाद आश्रम के कार्यों के कुछ उदाहरण सुनाए गए।

रजवंती एक तेलिन थी। उसकी उम्र बाईस वर्ष की थी। उसका पति उसे अच्छी तरह नहीं रखता था। उसे आश्रम में आश्रय दिया गया, और सरकार से लिखा-पढ़ी करके पति से उसे बेदखल कर दिया गया। फिर उसका विवाह एक अच्छे युवक से कर दिया गया। उसने २००) आश्रम को दिए।

एक मुसलमान स्त्री अजीमन स्टेशन पर कहीं जा रही थी। उसकी गोद में एक बालक भी था। उसे हमारे उत्साही कार्यकर्ता गजपति जी आश्रम में ले आए, और समझा-बुझाकर, उसे शुद्ध कर उसका विवाह एक युवक से कर दिया। उसके पति ने मुकदमा चलाया, पर जीत हमारी ही हुई।

गुलाबो वैश्य-कन्या थी। उसका पति कमाऊ न था। उसे खाने-पीने का कष्ट था। उसने हमारे परम श्रद्धास्पद डाक्टर साहब को पत्र लिखा कि मुझे कहीं ठिकाना करवा दो। बस उसे वहां से किसी तरकीब से मंगवा लिया गया और उसका विवाह उसकी पसन्द के आदमी से कर दिया गया।

राजो नामी एक तेईस वर्ष की स्त्री थी। वह व्यभिचारिणी हो गई थी। उसे कोई उपदेशक फुसला लाया था। कुछ दिन वह उसके घर में रही। पीछे न जाने कैसे उसे शराब पीने की आदत पड़ गई। वह वहां से भाग आई और आश्रम में पहुंचाई गई। यहां हमारे आदरणीय डाक्टर साहब ने उसे एकान्त में बहुत कुछ धर्मोपदेश दिया और उसे सुशिक्षा दी। पर वह दुष्टा डाक्टर साहब के ऊपर ही कुकर्म का दोषारोपण करने लगी। इसके बाद वह स्थिर हुई और उसका ब्याह एक योग्य पुरुष के साथ कर दिया गया। उसने उसके साथ असद्आचरण किया, तो वह फिर आश्रम में आ गई। आश्रम की तरफ से उस पुरुष पर मुकदमा चला दिया

गया। उसने एक हज़ार रुपये देकर डरकर सुलह कर ली। आधा उसमें से आश्रम को दिया गया। अब फिर उस स्त्री का विवाह किया जाएगा।

इन उदाहरणों को सुनकर सभा में हलचल मच गई। और लोग बारम्बार धन्यवाद देने लगे। सभापति की प्रशंसाओं के पुल बंध गए। और संस्था की सदुपयोगिता की भूरि-भूरि प्रशंसा की गई। इसके बाद ही चन्दे की वर्षा शुरू हुई और मेज़ पर रुपयों और नोटों का ढेर लग गया।

दो आदमी चुपचाप बातें करते सड़क से जा रहे थे। सन्ध्या का समय था। एक ने कहा—बस ठहर जाओ। यही वह घर है। वह खिड़की देखते हो, वहीं है वह।

'वह तो बन्द है।'

'अवश्य वह खोलेगी। मैं तीन दिन से देखता हूं। वह बार-बार इशारा करती है।'

'यार, क्यों बेपर की उड़ाते हो। ऐसे खूबसूरत भी नहीं हो, जो कोई औरत तुमपर मरे; फिर वह महलों में रहने वाली।' इतने में खिड़की खुली और एक औरत उसमें दीख पड़ी।

उस आदमी ने मित्र की बात खतम होते ही कहा—देखो, वह देखो।

दोनों ने देखा—वह कुछ संकेत कर रही थी।

अब कुछ देर उधर देख, एक बगल खड़े होकर उनमें से एक ने संकेत किया। संकेत का उत्तर संकेत में दिया गया। अब दोनों को सन्देह नहीं रहा। परन्तु एक ने कहा—भाई देखो, यह मामला कुछ और ही ढंग का मालूम देता है, प्रेम का नहीं। वरना वह औरत दो आदमियों को संकेत न करती।—यह कहकर उसने फिर उस स्त्री को संकेत किया। स्त्री का संकेत पाकर उसने कहा—ठहरो, सब ठीक हुआ जाता है। अभी हमें एक पुलिस कान्स्टेबिल बुलाना पड़ेगा।—वह लपककर एक कान्स्टेबिल को बुला लाया। कान्स्टेबिल ने खिड़की की तरफ देखा, वह स्त्री वहीं खड़ी थी और संकेत कर रही थी। उसने कहा—ज़रूर यह औरत बदमाशों के अड्डे में कैद है। ठहरो, पहले यह देखना है कि यह मकान है किसका।

कान्स्टेबिल ने तुरन्त ही पता लगा लिया और उन आदमियों से कहा—तुम लोग यहीं रहो, मैं थाने से मदद लेकर आता हूं, मकान पर धावा बोलना पड़ेगा।

थोड़ी ही देर में दो कान्स्टेबिलों को लेकर पुलिस इन्स्पेक्टर आ गया, और सब लोग आश्रम के द्वार पर जा धमके। द्वार पर धक्के देने पर एक आदमी ने द्वार खोला। पुलिस को देखकर वह घबराकर बोला—आप क्या चाहते हैं ?

'मैनेजर साहब कहां हैं ?'

'डाक्टर जी हैं, वे भीतर हैं।'

'उन्हें ज़रा बुलाओ !'

चपरासी भीतर गया। सुनकर डाक्टर साहब की फूंक निकल गई। वे बाहर आए और बिलैया-डण्डौत करते हुए कहा कि कोई वारदात नहीं है।

'मगर मैं मकान की तलाशी लेना चाहता हूं।'

'आप ऐसा नहीं कर पाएंगे।'

इन्स्पेक्टर ने डाक्टर को पीछे ठेल दिया और वे घर में घुस गए। वे सीधे उसी कमरे में पहुंचे। बाहर ताला बन्द था उन्होंने कहा—इसमें कौन है ?

'इसमें एक बाबू साहब का सामान बन्द है।'

'वे कहां हैं ?'

'बाहर गए हैं।'

'इसकी ताली कहां है ?'

'वह उन्हींके पास है।'

'अच्छी बात है', इन्स्पेक्टर ने कान्स्टेबिल से कहा—ताला तोड़ दो।

डाक्टर साहब के विरोध करने पर भी ताला तोड़ दिया गया। देखा, उसमें तीन कोठरियों में तीन स्त्रियां कैद थीं। उन्होंने बयान दिए कि हमें फुसलाकर लाया गया है और शादी करने को राज़ी न होने पर बन्द कर दिया गया है।

अधिष्ठाता जी उर्फ डाक्टर जी, उर्फ पिता जी, और धर्मपुत्री जी उर्फ अधिष्ठात्री देवी जी तथा गजपति जी और बलवन्त तथा उक्त तीन स्त्रियों को साथ ले पुलिस-इन्स्पेक्टर थाने को चल दिया। धर्मात्मा हवालात की शोभा-वृद्धि करने लगे।

कई स्त्रियों के गायब होने की रिपोर्ट पुलिस में प्रथम ही पहुंची हुई थी। पुलिस ने स्त्रियों से पूछकर उनके वारिसों को बुला लिया और सब सबूत तैयार होने पर मैजिस्ट्रेट के सामने मुकदमा दायर किया गया।

मैजिस्ट्रेट के सामने पहुंचकर डाक्टर साहब ने गम्भीर धर्म-भाव धारण कर लिया। 'धरमपुत्री' जी बड़ी सीधी गऊ बन गईं। गजपति ने रोनी सूरत बना ली। तीनों स्त्रियां लज्जा से सिकुड़ी खड़ी थीं। आखिर औरतों को उड़ाने, उन्हें बेचने और ज़बर्दस्ती बन्द कर रखने का मुकदमा चला।

मैजिस्ट्रेट ने बारी-बारी से तीनों स्त्रियों के बयान लिए।

एक ने कहा, 'मेरा नाम रामकली है। मैं हैदराबाद, दक्खिन से आई हूं। पर मेरा असली वतन कानपुर है। जात की ब्राह्मण हूं। मेरा पति हैदराबाद में नौकर था, वह वहीं मर गया। तब एक पड़ौस के भले घर में मैं मिहनत-मजदूरी करके गुज़र करने लगी। उस घर के मालिक की मेरे ऊपर बुरी नज़र पड़ी, उन्होंने मुझे तंग करना शुरू कर दिया। अन्त में उन्होंने मेरा धर्म भ्रष्ट कर दिया। उन्होंने बड़े-बड़े सब्ज़ बाग दिखलाए थे। पर थोड़े ही दिनों में उनका बर्ताव बदल गया। उन्होंने मुझे पढ़ने की सलाह दी, मुझे वह पसन्द आ गई। उन्होंने कहा कि हम तुझे दिल्ली-आश्रम में भेज देते हैं, वहां बहुत अच्छा बन्दोबस्त है। मैंने स्वीकार किया। वे मुझे मन्त्री आर्यसमाज के पास ले गए। उन्होंने मुझे लिखा-पढ़ी करके यहां पहुंचा दिया। यहां इन लोगों के रंग-ढंग देखकर मैं घबरा गई। मन्त्री जी ने कहा था कि वहां आर्यदेवियां रहती हैं—विद्या पढ़ाई जाती है, और सन्ध्या, हवन, नित्यकर्म होते हैं। पर यहां देखा तो कुट्टनखाना है, गुण्डों का राज्य है। वे भले घर की बहन-बेटियों को फुसलाकर लाते हैं और दस-पांच दिन खिला-पिलाकर बेच देते हैं। मेरा भी सौदा होने लगा। दो-तीन आदमी भी बुलाए गए। रुपये भी वसूल कर लिए, पर मैं मर्दों की दुष्टता को जान चुकी हूं। मैं इनपर विश्वास नहीं करती, न उनकी दासी बनना चाहती हूं। फिर मेरी किस्मत में जो होना था, हो गया। मैं विद्या पढ़कर कहीं अध्यापिका की नौकरी करना चाहती थी, जिससे गुज़र हो जाती। परन्तु ये लोग तो बेचने को पागल हो रहे थे। मुझे बहुत डराया-धमकाया, पर जब मैं राज़ी न हुई, तब बन्द कर दिया। मैं सात दिन बन्द रही। दो बार मुझे पीटा भी गया। एक बार यह गजपति ज़बर्दस्ती करने को मेरी कोठरी में घुस आया था, उससे बड़ी कठिनाई से जान बचाई। मैंने उसकी बांह में काट खाया, उसका निशान अवश्य होगा। यह अधिष्ठात्री देवी कहाती हैं, पर पूरी चुड़ैल हैं। ये उसका ज़ुल्म आंखों देखतीं और खिलखिलाकर हंसती थीं। नित्य ही यहां ऐसा होता है। उस दिन से मुझे खाना भी नहीं दिया गया था और मार

डालने की धमकी दी जाती थी।'

मैजिस्ट्रेट ने पूछा—तुम्हारी उम्र क्या है?

रामकली—बाईस वर्ष हुजूर।

मैजिस्ट्रेट—तुम्हारे पास कुछ गहना और दूसरा सामान भी था, जब तुम आई थीं?

रामकली—जी हां हुजूर, दो अदद सोने तथा चार अदद चांदी के गहने थे, सबकी कीमत दो सौ रुपया होगी। वे सब इन्होंने छीन लिए। वहां कोष में जमा होंगे।

मैजिस्ट्रेट—और कपड़े वगैरह?

रामकली—वह सब छीन लिया।

मैजिस्ट्रेट—अच्छा तुम इधर बैठो। दूसरी लड़की को लाओ।

दूसरी लड़की ने आकर बयान किया :

'मेरा नाम चम्पा है। उम्र अठारह वर्ष की है। जाति की वैश्य हूं। मेरे पिता बरेली में पुलिस-इन्स्पेक्टर थे। मैं सात-आठ वर्ष की थी, तब कुछ लड़कियों के साथ खेल रही थी। इतने में एक आदमी आया, वह फुसलाकर हमें तमाशा दिखाने के बहाने थोड़ी दूर ले गया। हम तीन लड़कियां चलीं। थोड़ी दूर पर उसने एक तांगा रोककर कहा—लो इसपर बैठकर चलो, जल्दी पहुंच जाएंगे।—हम लोग तांगे पर बैठ गए। उसने एक मकान में हमें छोड़ दिया, वह बहुत बड़ा मकान था और उसमें बहुत-सी लड़कियां थीं। हम कुछ दिन घर की याद में रो-पीटकर वहां रहने लगीं। बहुत दिन बीत गए और हम घर को भूल गईं। एक बार एक पंजाबी-सा मोटा-ताजा आदमी मेरे पास लाया गया। वह मुझे घूर-घूरकर देखने लगा। पीछे पता लगा कि इससे मेरी शादी होगी। मैं डर गई। उस आश्रम में एक कहार का लड़का नौकर था, उसने कहा कि मेरे साथ शादी करो तो मैं तुझे यहां से निकाल दूं। मैं राजी हो गई और वह वहां से एक दिन शाम को मुझे निकालकर, रेल में बैठाकर मथुरा ले आया। हम लोग धर्मशाला में ठहर गए। न जाने कैसे पुलिस ने भांप लिया कि यह भगाकर ले आया है। पुलिस उसके पीछे पड़ी। वह भाग गया, मैं अकेली रह गई। कहां जाऊं, यह कुछ न बता सकी। पिता का स्मरण भी न था। कहां हैं, कौन हैं। लाचार कुछ लोगों ने मुझे वहां के विधवाश्राम में भेज दिया। फिर वहां रहने लगी।

'पर यहां के हालात बड़े गन्दे थे। खुला व्यभिचार होता था। पुलिस वाले आते और उन्हें लड़कियां रातभर को सौंप दी जाती थीं। एक बार पुलिस-इन्स-पेक्टर को मेरे कमरे में भेज दिया। मैं भय से थर-थर कांपने लगी। पेशाब का बहाना कर छत पर से कूदकर भागी। कुछ देर तो जमुना किनारे घाट पर छिपी रही, पीछे स्टेशन पर आई। वहां यह आदमी गजपति मुझे मिला। इसने मेरी सब कहानी सुनकर कहा कि तेरे बाप को मैं जानता हूं। चल मैं तुझे वहां पहुंचा दूं। यह मुझे दिल्ली ले आया और यहां आश्रम में रख दिया।

'यहां भी वही हाल देखा। पर इस बार मैं अपने को न बचा सकी। इस गज-पति ने मेरा धर्म बिगाड़ दिया। यह रात-दिन वहीं रहता है और बिना इसकी इच्छा पूरी किए कोई लड़की अपनी इच्छानुसार काम नहीं कर सकती। यह बड़ा निठुर नर-पशु है, नित्य ही दो-चार शिकार पकड़ लाता है। डाक्टर बूढ़ा घाघ है, बेटी-बेटी करके ही सब कुकर्म करता है। उस दिन मुझसे कहा कि मेरे यहां रोटी पकाने के लिए आ जाना। जब गई तो बुरी-बुरी बातें कहने लगा। मैं वहां से अकेली ही भाग आई। अधिष्ठात्री देवी उनकी पुरानी चुड़ैल हैं। उन्होंने सब्ज़ बाग दिखाकर मुझे शादी करने को लाचार कर लिया। मैं राज़ी हो गई। गहने, कपड़े, रुपये, मिलने की आशा थी। वह आदमी मेरठ के पास के किसी देहात का बनिया था। लोहे का काम करता था। उसकी औरत मर चुकी थी और उसे गर्मी की बीमारी हो गई थी। मुझे उससे बड़ी घृणा थी। पर वह मेरी बड़ी आवभगत करता था। यह बात तय हो गई थी कि गजपति अमुक दिन वहां जाएगा और मौका पाकर उड़ा लाएगा। यही हुआ, और मैं फिर यहां लाई गई। वह भी आया, झगड़ा हुआ तो उसे डरा दिया कि तुमने लड़की को मार डालने की कोशिश की है, तुमपर फौजदारी चलेगी। बेचारा भाग गया।

'फिर दूसरी जगह मेरा ब्याह कर दिया गया। और वहां से भी उसी भांति भगा लाई गई। पर इस बार जिससे ब्याह हुआ था, वह आदमी मुझे पसन्द था; पर ये लोग ज़बरदस्ती ले आए। मैंने अपने गहने, कपड़े, रुपये मांगे और पति के पास जाना चाहा तो इन्होंने मुझे मारा और बन्द कर दिया। छह दिन से मैं बन्द हूं। गजपति रोज़ रात को मेरा धर्म नष्ट करता है, उससे मेरी पार नहीं बसाती।'

मैजिस्ट्रेट ने पूछा—तुम्हारे गहने, कपड़े रुपये कहां हैं?

चम्पा—हज़ूर इन्हींके पास हैं।

मैजिस्ट्रेट—डाक्टर को मालूम है ?

चम्पा—हुजूर उसीके हुक्म से वे छीने गए हैं।

मैजिस्ट्रेट—अच्छा हटाओ, तीसरी को बुलाओ।

तीसरे ने आकर बयान दिया :

'मेरा नाम गोमती है। आयु पच्चीस वर्ष, जात वैश्य, रहने वाली जिला अलीगढ़ की हूं। मेरे पति हैं, ससुर हैं और परिवार के लोग हैं। मैं राजघाट स्नान करने आई थी, वहां साथ वालियों से भटक गई। यह गजपति मुझे माता-माता कहकर साथ ले आया। कहा—हम स्वयं सेवक हैं। चलो घर पहुंचा दें।—इसके साथ दो औरतें और थीं। कहा—इन्हें पहुंचाकर तब तुम्हें पहुंचाएंगे।—मैं क्या करती, चुप हो रही। यह मुझे दिल्ली ले आया। यहां रख दिया। यहां का हाल देख-देखकर मैं रोती और तकदीर को ठोकती थी। पर डाक्टर ने कहा—देखो, हमने तुम्हारे पति को तार दिया कि इसे ले जाओ, तो जवाब आया है कि वह अब हमारे काम की नहीं रही। कहो, अब क्या कहती हो।—मैं खूब रोई और मरने पर तैयार हो गई। तब इन्होंने धीरज दिया और एक महीने बाद मुझे मजबूर करके ब्याह कर दिया। मैंने समझा, तकदीर में जो होना लिखा था, वही हुआ। मैं चली गई। पीछे यहां से एक आदमी दौड़ा गया और बुलाकर फिर ले आया। यहां आने पर पता लगा कि मेरे पति को पता लग गया था और वे पुलिस लेकर यहां आए थे, पर लौट गए। ये मुझसे एक लिखे हुए कागज पर दस्तखत कराना चाहते हैं, पर मैं नहीं करती। मैं वहां भी नहीं जाना चाहती, जहां इन्होंने मेरा ब्याह किया था। मैं अपने घर जाना चाहती हूं। इसलिए इन्होंने मुझे बन्द कर रखा है। मुझे बन्द किए दस दिन हो गए। मैं खिड़की से नित्य राह चलतों को इशारे करती थी कि कोई छुड़ाए। आखिरकार पुलिस ने आकर हमें छुड़ाया।'

मैजिस्ट्रेट ने पूछा—तुम्हारे साथ भी कुछ गहना आदि था ?

गोमती—जी हुजूर, मेरे पास दो हजार के लगभग गहना था, वह सब इन्होंने जमा करने के बहाने ले लिया।

'अच्छी बात है।' मैजिस्ट्रेट ने उसे बैठाकर कहा, 'अब गवाहों को बुलाओ।'

पुलिस-इन्स्पेक्टर ने गवाही दी :

'मैं अमुक थाने में इन्स्पेक्टर हूं। अमुक नम्बर के कान्स्टेबिल के कहने से मैंने आश्रम के मकान पर धावा मारा। ये लड़कियां ताले में बन्द मिलीं। तलाशी में